Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कक्षा
12

समाजशास्त्र

कक्षा 12
समाजशास्त्र

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समाजशास्त्र

भारतीय समाज में परिवर्तन और चुनौतियाँ

कक्षा – 12

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक : समाजशास्त्र

कक्षा – 12

संयोजक :– **प्रो. सुरेश चन्द्र राजोरा**
सेवानिवृत्त आचार्य समाजशास्त्र, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

लेखकगण :–

1. **डॉ. अरविन्द कुमार महला,** व्याख्याता, समाजशास्त्र
   राजकीय कल्याण महाविद्यालय, सीकर

2. **डॉ. ऋतु सारस्वत,** व्याख्याता, समाजशास्त्र
   राजकीय महाविद्यालय, पुष्कर

3. **संजय कुमार राय,** व्याख्याता, समाजशास्त्र
   राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, नोखा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पाठ्यक्रम समिति

पुस्तक : समाजशास्त्र

कक्षा – 12

संयोजक :– **प्रो. सुरेश चन्द्र राजोरा**
सेवानिवृत्त आचार्य समाजशास्त्र, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

लेखकगण :–

1. **डॉ. अरूण चतुर्वेदी** , व्याख्याता
राजकीय महाविद्यालय, नसीराबाद, अजमेर

2. **डॉ. लीलाधर सोनी,** व्याख्याता,
एस.पी.सी. राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

दो शब्द

विद्‌यार्थी के लिए पाठ्‌यपुस्तक क्रमबद्ध अध्ययन, पुष्टीकरण, समीक्षा और आगामी अध्ययन का आधार होती है। विषय-वस्तु और शिक्षण-विधि की दृष्टि से विद्‌यालयी पाठ्‌यपुस्तक का स्तर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो जाता है। पाठ्‌यपुस्तकों को कभी जड़ या महिमामण्डित करने वाली नहीं बनने दी जानी चाहिए। पाठ्‌यपुस्तक आज भी शिक्षण-अधिगम-प्रक्रिया का एक अनिवार्य उपकरण बनी हुई है, जिसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते।

पिछले कुछ वर्षों में माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के पाठ्‌यक्रम में राजस्थान की भाषागत एवं सांस्कृतिक स्थितियों के प्रतिनिधित्व का अभाव महसूस किया जा रहा था, इसे दृष्टिगत रखते हुए राज्य सरकार द्वारा कक्षा-9 से 12 के विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान द्वारा अपना पाठ्‌यक्रम लागू करने का निर्णय लिया गया है। इसी के अनुरूप बोर्ड द्वारा शिक्षण सत्र 2016-17 से कक्षा-9 व 11 तथा सत्र 2017-18 से कक्षा-10 व 12 की पाठ्‌यपुस्तकें बोर्ड के निर्धारित पाठ्‌यक्रम के आधार पर ही तैयार कराई गई हैं। आशा है कि ये पुस्तकें विद्‌यार्थियों में मौलिक सोच, चिंतन एवं अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करेंगी।

प्रो. बी.एल. चौधरी
अध्यक्ष
माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भूमिका

भारतीय समाज में परिवर्तन एवं चुनौतियाँ, कक्षा XII के विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी पाठ्यपुस्तक प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता है। पुस्तक लेखन के समय हमारे केंद्र में प्रमुख रूप से वे विद्यार्थी थे जो समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समाज की विभिन्न प्रघटनाओं के बारे में अवधारणात्मक समझ को विकसित करने हेतु अध्ययन कर रहे हैं।

यह एक तथ्यात्मक बात है कि संरचना के आधार पर भारतीय समाज अपनी विशिष्टताओं के कारण विश्व के अन्य समाजों से अलग पहचान बनाए हुए है। देश में सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं राजनैतिक पहलुओं को हम विविधता में एकता के रूप में समझते हैं। यह भी सर्वविदित तथ्य है कि देश के सामाजिक ढाँचे को निरंतर चुनौतियों का सामना करना पड़ा। अनेक चुनौतियों के साथ विभिन्न कारकों एवं प्रक्रियाओं ने सामाजिक परिवर्तन की निरंतरता को बनाए रखा। इससे यह प्रमाणित होता है कि परिवर्तन की प्रक्रिया सार्वभौमिक है, लेकिन भारतीय समाज के सन्दर्भ में नगरीय एवं ग्रामीण समुदाय की विशेषताओं के अनुरूप ही संरचनात्मक बदलाव आते रहे हैं। पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण, संस्कृतीकरण एवं धर्मनिरपेक्षीकरण को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं के रूप में अध्ययन किया गया तथा पंचायती राज, राजनैतिक दल एवं दबाव समूह को सामाजिक परिवर्तन के उपकरण के रूप में देखा गया।

सामाजिक असमानता भी एक समाजशास्त्रीय विमर्श का स्वरूप है। भारतीय समाज में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, महिला एवं बालश्रम से सम्बंधित समस्याएँ भी चुनौती के रूप में हैं। इनसे जुड़े विभिन्न पहलुओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण भी इस पुस्तक का एक उल्लेखनीय भाग है। सामाजिक आन्दोलन की भूमिका सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है। अत: राजस्थान में जो आन्दोलन हुए उनमें से किसान, जनजाति एवं पर्यावरण आन्दोलन का राष्ट्रीय महत्त्व है। इन आन्दोलनों के प्रमुख मुद्दे, उद्देश्य, सम्बंधित घटनाक्रम एवं प्रभाव को भी प्रासंगिकता की दृष्टि से प्रस्तुत किया है।

अपेक्षा है कि विद्यार्थियों एवं शिक्षकों की प्रतिक्रियाएँ और सुझाव पुस्तक को और अधिक रोचक तथा उपयोगी बनाने में सहायक होंगे।

संयोजक एवं लेखकगण

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कक्षा : 12

विषय : समाजशास्त्र

भारतीय समाज में परिवर्तन एवं चुनौतियाँ

समय : .... .पूर्णांक : 80

क्र.सं.	अधिगम क्षेत्र	अंकभार
1.	भारतीय समाज की संरचना, संस्कृति के पक्षों को समझना	20
2.	भारतीय ग्रामीण एवं नगरीय संरचना का समझकर विकास की चुनौतियों के बारे में जानकारी प्राप्त करना	25
3.	महिला, बालिका शिक्षा एवं बालश्रम की दशा को समझना एवं निराकरण के उपाय जानना	25
4.	सामाजिक आन्दोलनों के बारे में जानना तथा उनके प्रभावों को समझना	10

क्र.सं.	पाठ्यवस्तु	कालांश	अंकभार
1.	भारतीय समाज के संरचनात्मक, सांस्कृतिक पहलू एवं विविधता की चुनौतियां, धार्मिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, एवं राजनैतिक, विभिन्नता में एकता	30	08
2.	जनसांख्यिकीय संरचना एवं भारतीय समाज ग्रामीण – नगरीय संलग्नता और विभाजन	25	08
3.	सामाजिक असामनता एवं अपवर्जन के प्रतिरूप जाति पूर्वाग्रह, अनुसूचित जातियाँ, राजस्थान की 30 जनजातियाँ एवं अन्य पिछड़े वर्ग, महिला समानता का संघर्ष धार्मिक अल्पसख्यकों को संरक्षण, निःशक्तजनों की देखभाल	30	08
4.	भारत में संरचनात्मक परिवर्तन परम्परा एवं आधुनिकता, औद्योगीकरण, नगरीकरण	30	08
5.	सांस्कृतिक परिवर्तन पाश्चात्करण, संस्कृतिकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण	25	08

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

6.	ग्रामीण समाज के परिवर्तन के उपकरण पंचायती राज, राजनैतिक दल एवं दबाव समूह	25	08
7.	नगरीय समाज में परिवर्तन विकास एवं चुनौतियाँ, आधारभूत संरचना, आवर्जन, नियोजन, आवास	25	08
8.	महिला एवं बाल श्रम के विविध आयाम राजस्थान में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक चेतना राजस्थान में बालिका शिक्षा, बाल श्रम की समस्या एवं निराकरण	20	08
9.	जनसम्पर्क संचार एवं सामाजिक परिवर्तन सामाजिक आन्दोलन राजस्थान के किसान आन्दोलन (बिजोलिया) राजस्थान में जनजातियाँ आन्दोलन (भगत) राजस्थान में पर्यावरण आन्दोलन (खेजड़ली) एवं अन्य समाज सुधारक आन्दोलन	20	08

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अनुक्रमणिका

अध्याय 1	भारतीय समाज के संरचनात्मक, सांस्कृतिक पहलू एवं विविधता की चुनौतियाँ, धार्मिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं राजनैतिक विभिन्नता में एकता	1–19
अध्याय 2	जनसांख्यिकीय संरचना एवं भारतीय समाज, ग्रामीण–नगरीय संलग्नता और विभाजन	20–32
अध्याय 3	सामाजिक असमानता एवं अपवर्जन के प्रतिरूप, जाति पूर्वाग्रह, अनुसूचित जातियाँ, राजस्थान की अनुसूचित जनजातियाँ एवं अन्य पिछड़े वर्ग, महिला समानता का संघर्ष, धार्मिक अल्पसंख्यकों को संरक्षण, नि:शक्तजनों की देखभाल	33–51
अध्याय 4	भारत में संरचनात्मक परिवर्तन–परम्परा एवं आधुनिकता, औद्योगीकरण, नगरीकरण	52–60
अध्याय 5	सांस्कृतिक परिवर्तन, पश्चिमीकरण, संस्कृतीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण	61–71
अध्याय 6	ग्रामीण समाज में परिवर्तन के उपकरण–पंचायतीराज, राजनैतिक दल, दबाव समूह	72–87
अध्याय 7	नगरीय समाज में परिवर्तन, विकास एवं चुनौतियाँ, आधारभूत संरचना, आव्रजन, नियोजन, आवास	88–103
अध्याय 8	महिला एवं बाल श्रम के विविध आयाम, राजस्थान में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक चेतना, राजस्थान में बालिका शिक्षा, बालश्रम की समस्या एवं निराकरण	104–120
अध्याय 9	जनसंचार, सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक आन्दोलन, राजस्थान के किसान आन्दोलन (बिजौलिया), राजस्थान में जनजातीय आन्दोलन (भगत), राजस्थान में पर्यावरण आन्दोलन (खेजड़ली) एवं अन्य समाज सुधार आन्दोलन	121–131

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 1

भारतीय समाज के संरचनात्मक, सांस्कृतिक पहलू एवं विविधता की चुनौतियाँ, धार्मिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं राजनैतिक विभिन्नता में एकता

अध्ययन बिन्दु–

- भारतीय समाज के संरचनात्मक पहलू
- भारतीय समाज के सांस्कृतिक पहलू
- भारतीय समाज में विविधता की चुनौतियाँ
- भारतीय समाज में विभिन्नता में एकता

प्रस्तुत अध्याय में समाज को परिभाषित करते हुए भारतीय समाज की संरचना एवं संस्कृति को स्पष्ट किया गया है। साथ ही भारतीय समाज में विविधता एवं एकता के तत्त्वों की विवेचना की गई है।

इस अध्याय के माध्यम से विद्यार्थी समझ पाएँगे कि–

- समाज क्या है?
- एक समाज के उदाहरण के रूप में भारतीय समाज क्या है?
- भारतीय समाज की संरचना के घटक कौनसे हैं?
- भारतीय समाज के सांस्कृतिक घटक कौनसे हैं?
- विविधतापूर्ण भारतीय समाज की चुनौतियाँ क्या हैं?
- विविधता में एकता किस प्रकार सम्भव हुई है?

इस अध्याय के माध्यम से हम भारतीय समाज की संरचना एवं संस्कृति को समझते हुए इसकी विविधता एवं एकता के तत्त्वों को स्पष्ट करने में सक्षम होंगे।

समाजशास्त्र की मूलभूत अवधारणा है, समाज। समाज के शास्त्र अथवा समाज के वैज्ञानिक अध्ययन के विज्ञान को समाजशास्त्र कहा जाता है। मूल प्रश्न यह है कि 'समाज' क्या है? 'समाज' नामक अवधारणा से हमारा परिचय जीवनारम्भ में ही हो जाता है। जैसे-जैसे जीवन यात्रा में मानव आगे बढ़ता है, उसका परिचय विस्तार एवं परिष्कार पाता रहता है। हजारों वर्षों से लोगों ने इन समूहों एवं समाजों का अवलोकन एवं उनके बारे में चिन्तन किया है, जिनमें वे रहते चले आ रहे हैं। चाहे कौटिल्य (चाणक्य) का 'अर्थशास्त्र' हो अथवा अरस्तू की 'पॉलिटिक्स' हो, चाहे शुद्रक का 'मृच्छकटिकम्' हो या फिर वैदिक साहित्य हो, सभी का मूल विषय मानव सहजीवन तथा तात्कालिक स्थितियाँ रही हैं।

इस सबके पीछे मूल कारण यह है कि मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो संगठन एवं समूह का निर्माण तथा पुनर्निर्माण करता है। वह एकाकी नहीं रह सकता। सामूहिकता मानव जीवन का आधार तथा सार है। वह समूह से नियंत्रित एवं निर्देशित भी होता रहता है।

समाज– सामान्य अर्थ में समाज को व्यक्तियों का एकत्रीकरण माना जाता है। समाजशास्त्रीय पहलू (परिप्रेक्ष्य) से देखा जाये तो समाज केवल मात्र व्यक्तियों का एकत्रीकरण न होकर इससे कहीं अधिक है। यह व्यक्तियों का ऐसा संकलन है जिसमें इनके (व्यक्तियों) मध्य सामाजिक सम्बन्ध हों चाहे वह स्नेह, अपनापन, घृणा, द्वेष, प्रतिस्पर्धा, सहयोग, संघर्ष, व्यवस्थापन आदि में से कोई भी प्रकार के हों। समाज एक ऐसा संगठन है जो मनुष्य की क्रियाओं को स्वतंत्र एवं सीमित, नियमित एवं निर्देशित करता है। जीवन के प्रत्येक पहलू से इसका जुड़ाव होता है। जीवन की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति के लिये समाज अपरिहार्य है। समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।

सम्बन्धों के जाल के सन्दर्भ में कहा जाये तो सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं।

एक सामाजिक सम्बन्ध तथा दूसरा भौतिक सम्बन्ध। जैसे कम्प्यूटर एवं मेज का सम्बन्ध, सड़क एवं मोटर गाड़ी का सम्बन्ध, पृथ्वी एवं सूर्य, नदी एवं समुद्र, आग एवं धुएँ आदि का सम्बन्ध। इसी प्रकार धुएँ एवं आँसू, श्वास, मोबाइल एवं व्यक्ति आदि के मध्य के सम्बन्ध, इनमें से प्रत्येक एक दूसरे के अस्तित्व पर प्रभाव डालता है। परन्तु यहाँ पर परस्परअ र्थपूर्णताक ाअ भावप ायाज ाताह ै ाय े स भीए क–दूसरेस े अर्थपूर्ण रूप से परिचित नहीं होते हैं। इनमें पारस्परिक आनुभाविकता का अभाव पाया जाता है, जिसके कारण इनके मध्य के सम्बन्ध, सामाजिक सम्बन्ध नहीं बन पाते हैं। मैकाइवर एवं पेज के अनुसार ''समाज का अस्तित्व वहीं सम्भव है, जहाँ सामाजिक प्राणी एक दूसरे के साथ इस प्रकार से व्यवहार करते हैं जो उनके पारस्परिक ज्ञान से निर्धारित होते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इस प्रकार निर्धारित सभी सम्बन्धों को हम मोटे तौर पर सामाजिक कह सकते हैं।''

सामाजिक शब्द व्यापक है। इसके अन्तर्गत आर्थिक, राजनैतिक, वैयक्तिक, अवैयक्तिक, मित्रतापूर्ण, विरोधपूर्ण, संघर्ष, सहयोग, द्वेष, धार्मिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक सभी पहलू सम्मिलित हैं। संघर्ष अथवा युद्ध के समय दो देशों की सेनाओं के मध्य के सम्बन्ध जो कि घोर विद्वेष अथवा संघर्ष के होते हैं, 'सामाजिक' हैं। परन्तु अधिकांश सामाजिक सम्बन्धों में सामुदायिकता या परस्पर सम्बन्ध होने की भावना विद्यमान होती है।

समाज मात्र मनुष्य तक ही सीमित नहीं है अपितु जैसा कि हम भली-भाँति जानते हैं कि चींटियों एवं मधुमक्खियों में सुव्यवस्थित सामाजिक संगठन विद्यमान होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहाँ जीवन है वहाँ समाज है। विभिन्न जातियों के पशुओं के मध्य भी समाज देखने को मिलता है। मनुष्य एवं कुत्ते, गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, भेड़, बकरी आदि के बीच में एक दूसरे की उपस्थिति का ज्ञान अर्थात् पारस्परिकता का भाव देखने को मिलता है, जिससे समाज की उपस्थिति मानी जा सकती है।

हमारा उद्देश्य मात्र मनुष्य जाति में उपस्थित समाज में परिवर्तन का अध्ययन करने से है, जिसे हम 'मानव समाज' कहते हैं। 'मानव समाज' में समानता एवं भिन्नता दोनों होती हैं। भिन्नता के विद्यमान होने से ही विभेदीकरण एवं श्रम विभाजन के फलस्वरूप सामाजिक सम्बन्ध जटिल एवं विस्तृत हुए हैं, अन्यथा ये भी चींटियों, मधुमक्खियों, बंदरों आदि की भांति सीमितता लिये होते। परन्तु ये भिन्नता, समानता के अधीन होती है। पहले सहयोग बाद में विभाजन होता है और ये विभाजन भी एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति में सहयोग करता है। इसका प्रमुख कारण है जैसे कि अरस्तू ने कहा है ''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है'' तथा मैकाइवर एवं पेज कहते हैं कि 'मनुष्य को अपनी सुरक्षा, सुविधा, पालन-पोषण, शिक्षा, साज-सज्जा, अवसर और समाज द्वारा दी जाने वाले अन्य अनेक सेवाओं के लिए ; (यहाँ तक कि शरीर और मस्तिष्क की अनेक बाधाओं के लिए ; भी समाज पर आश्रित रहना पड़ता है। समाज में जन्म लेना ही उसके लिये स्वयं समाज की पूर्ण आवश्यकता उत्पन्न कर देता है।''

भारतीय समाज–'समाज' एवं 'एक समाज' दो अवधारणाएँ हैं। 'समाज' एक व्यापक अवधारणा है, जिसका विश्लेषण हम कर चुके हैं। 'एक समाज' तुलनात्मक रूप से सीमितता लिए हुए हैं। 'एक समाज' किसी एक सामाजिक इकाई, जैसे 'एक जनजाति' अथवा 'एक देश' को इंगित करते है। इस इकाई की अपनी राजनीतिक, आर्थिक, पारिवारिक तथा अन्य संस्थाएँ होती हैं जो अन्य एक समाजों से अपेक्षाकृत स्वतंत्र एवं विशिष्ट होती हैं। अत: 'भारतीय समाज' 'एक समाज' का उदाहरण है।

भारतीय समाज के संरचनात्मक पहलू

संरचना : संरचना शब्द की व्युत्पत्ति सम् (उपसर्ग) + रच् (धातु), + मुच् (प्रत्यय) = संरचना हुई है। रच् धातु का अभिप्राय प्रतियत्न अर्थात् गुणाधान पूर्वक प्रयत्न करने से है। इस प्रकार संरचना का अभिप्राय व्यवस्था, तैयारी, विन्यास, निर्माण, सृजन, निष्पति आदि से है। हम यहाँ संरचना का अर्थ विशिष्ट पद्धति से किसी इकाई की निष्पति से लेते हैं। अर्थात् गुणाधानपूर्वक परिष्कृत सृजन अथवा निर्माण। जैसे जल को उबालने से उसमें से सभी अशुद्धियाँ बाहर हो जाती है, उसी प्रकार परिष्कृत निर्माण को संरचना कहा जाता है।

भारतीय समाज की सामाजिक संरचना का विश्लेषण करने से पहले आवश्यकता है कि सामाजिक संरचना क्या है? को स्पष्ट किया जाए। मॉरिस गिन्सबर्ग अपने लेख 'दि स्कोप एण्ड मेथड ऑफ सोशियोलॉजी (1939)' में लिखते हैं कि ''समाज के संघटक प्रधान समूहों तथा संस्थाओं के जटिल सम्पूर्णता को सामाजिक संरचना कहा जाता है।'' एस.एफ. नैडल ने 'दि थ्योरी ऑफ सोश्यल स्ट्रक्चर' में लिखा है कि ''हम मूर्त जनसंख्या और उसके व्यवहार से एक दूसरे से सम्बद्ध भूमिकाओं का निर्वाह करने वाले कर्त्ताओं के बीच विद्यमान सम्बन्धों के जाल(अथवा० यवस्था)य ाप्र्तिरूपक ेध ारणाब नाकरस माजक ी संरचना तक पहुँच सकते हैं।'' इसी प्रकार एच. गर्थ व सी. राइट मिल्स ने 'कैरेक्टर एण्ड सोश्यल स्ट्रक्चर' में लिखा है 'भूमिका की अवधारणा संस्थाओं की हमारी परिभाषा में आधार पद है। भूमिका वह इकाई है जिसके आधार पर हम सामाजिक संरचना के विचार का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार संस्था वह इकाई है, जिसके आधार पर हम सामाजिक संरचना की अवधारणा का निर्माण करते हैं।' टी.बी. वोटोमोर ने 'समाजशास्त्र : समस्याओं एवं साहित्य की संदर्शिका' (अनु. हरिश्चन्द्र उप्रेती) में स्पष्ट किया है कि ''समाज की प्रधान संस्थाओं व समूहों की जटिल सम्पूर्णता को सामाजिक संरचना माना जाना चाहिए।''

संक्षेप एवं सार रूप में सामाजिक संरचना को स्पष्ट किया जाए तो कहा जा सकता है कि यह किसी समूह के आंतरिक संगठन के स्थाई प्रतिमान अर्थात् समूह के सदस्यों के बीच पाए जाने वाले सामाजिक संबन्धों का सम्पूर्ण ताना-बाना होता है इन सम्बन्धों में सामाजिक क्रियाएँ, भूमिकाएँ, प्रस्थितियाँ, संचार व्यवस्था, श्रम विभाजन तथा आदर्शात्मक व्यवस्था को सम्मिलित किया जाता है। सामाजिक संरचना को 'स्वरूप' के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। 'संरचना' किसी व्यवस्था के स्थिर पक्ष

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

को प्रतिबिम्बित करती है।

भारतीय समाज की संरचना में गाँव, कस्बा, नगर, जनजातियाँ, कमजोर वर्ग, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक आदि अंगभूत घटक हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नानुसार है–

गाँव– भारतीय गाँव, भारतीय समाज की संरचना का आधारभूत अंग है। बिना गाँव के भारतीय समाज की परिकल्पना संभव नहीं होती। भारत कृषि प्रधान गाँवों का देश है। यहाँ गाँवों की कुल संख्या 6,40,867 (भारत की जनगणना 2011) है। भारत की कुल जनसंख्या 1,21,08,54,977 (2011) है जिसमें से 68.84 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में तथा 31.16 प्रतिशत नगरीय क्षेत्र में निवास करती है।

गाँव अथवा ग्रामीण समुदाय वह क्षेत्र है, जहाँ कृषि की प्रधानता, प्रकृति से समीपता, प्राथमिक सम्बन्धों की बहुतायत, कम आबादी, एकरुपता, स्थिरता, विभिन्न मसलों पर सामान्यत: सहमति, आदि विशेषताएँ होती हैं। भारत गाँवों का देश है यद्यपि विगत दशक (2001–2011) में नगरीय आबादी बढ़ी है। भारतीय गाँव एक इकाई है। प्रत्येक गाँव लोगों का एक समूह है, जो एक निश्चत भू–क्षेत्र में बसा होता है और जोक् छद् ूरीप रब सेए`सेग ाँवस`ि भन्नह ोताह" ाग ाँवक ाप्ृथकता, यातायात की कमी, अधिकतर आबादी की कृषि पर निर्भरता, लोगों की परस्पर निर्भरता, समुदाय के साझा अनुभव एवं परम्पराएँ, ग्राामीण उत्सव एवं त्यौहारों का अलग महत्व, गाँव का एक ग्राम देवता आदि विशेषताएँ गाँव की एकता को स्वाभाविक बनाती हैं। भारत में राजस्व, प्रशासन, राजनीति, पोस्टऑफिस की दृष्टि से प्रत्येक गाँव एक इकाई है। अधिकाँश गाँव बहुजातीय है, इनमें जातीय स्तरीकरण पाया जाता है। स्तरीकरण में प्रत्येक जाति अपने स्तर को दूसरी जाति की तुलना में स्वीकार करती है। इस सम्बन्ध में सामान्यत: कोई विवाद नहीं होता है। प्रत्येक गाँव में कोई न कोई प्रभु जाति अवश्य होती है जो ग्रामीण व्यवस्था पर नियंत्रण रखती है। गाँवों में जजमानी प्रथा पायी जाती है, जिससे विभिन्न जातियाँ एक–दूसरे की सेवा प्राप्त करती हैं और गाँव को आत्मनिर्भर बनाती हैं। यद्यपि नगरीकरण के प्रभाव से अब गाँवों में भी सेवा के बदले सेवा (सेवाविनिमय) के स्थान पर मुद्रा के बदले सेवा का प्रचलन प्रारम्भ होने लगा है। फिर भी गाँव में अभी भी उदग्र (लम्बवत) एकता देखने को मिलती है।

डी. एन. मजूमदार गाँव को जीवन विधि व एक अवधारणा के रूप में परिभाषित करते हैं। इस कारण गाँव के सभी निवासियों की एक संगठित जीवन–निधि, विचार, साझा अनुभव तथा संस्कृति होती है। प्रत्येक गाँव का अपना एक इतिहास होता है जो प्राय: उसके नाम के साथ जुड़ा होता है। गाँव के नातेदारी सम्बन्ध आस–पास के गाँवों में होते हैं। गाँव की बेटियों का विवाह दूसरे गाँवों में होता है, जबकि बहुएँ दूसरे गाँवों से आती हैं। परिवार की परम्पराएँ और मूल्य उनके साथ जुड़े होते हैं। सभी गाँव एक–दूसरे से जुड़े होते हैं। गाँव में समानताओं के अधीन विभिन्नताएँ भी विद्यमान होती हैं। गाँव में जातियों एवं उपजातियों के आधार पर मोहल्ले बने होते हैं। उच्च एवं निम्न जातियों के व्यवहार, आय, जीवनशैली, आवास, आपसी सम्बन्ध, बोली, स्वच्छता, विचार, विश्वास में पर्याप्त विभेदप ायेज ातेह" ाव र्तमानस मयम`ग ाँव,उ च्चए वंि नम्नज ातियाँ परिवर्तन के दौर में हैं, जिससे ये विभेद सिमटते दिखाई दे रहे हैं। सभी प्रकार की विभेदकारी विभिन्नताओं के होते हुए भी दीर्घकालीन सहजीवन के कारण तथा एक–दूसरे पर आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक अन्तर्निर्भरता के चलते सहयोग एवं आदान–प्रदान से गाँव एक संगठित इकाई के रूप में दिखाई देता है।

भारतीय गाँवों की सामाजिक संरचना का अध्ययन अनेक विद्वानों ने किया है, जिनमें श्यामाचरण दुबे, एम.एन. श्रीनिवास, मैक्किम मैरियट, मिल्टन सिंगर, रॉबर्ट रेडफील्ड, डी. एन. मजूमदार, बी.आर. चौहान आदि मुख्य हैं। भारत में प्रादेशिक आधार पर गाँव की सामाजिक संरचना में भी भिन्नता देखने को मिलती है। उत्तर भारत के गाँव, मध्य एवं दक्षिण भारत के गाँव से कई अर्थों में भिन्नता लिए हुए हैं। इन सबके होते हुए भी भारत के सभी गाँव में कुछ सामान्य विशेषताएँ समान रूप से विद्यमान है।

कस्बा– जनसंख्या आकार, घनत्व आदि के आधार पर नगरीय बस्तियों को कई भागों में विभक्त किया गया है, उनमें से एक कस्बा (Town) है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार कस्बे की परिभाषा–(क) नगरपालिका, नगर निगम, छावनी बोर्ड या अधिसूचित नगर क्षेत्र समिति आदि सहित सभी सांविधिक स्थान।

(ख) ऐसा क्षेत्र जो एक साथ निम्नलिखित तीनों शर्तों को पूरा करता हो–

(i) कम से कम 5,000 की जनसंख्या कार्यरत

(ii) कम से कम 75 प्रतिशत कार्यरत पुरुष गैर–कृषि कार्यकलापों में लगे हों; और

(iii) जनसंख्या का घनत्व कम से कम 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर (1000 प्रति वर्ग मील हो)

जनगणना 2011 के अनुसार भारत में 7,935 कस्बे हैं जिनकी संख्या 2001 में 5,161 थी।

नगर– कस्बा भी नगरीय क्षेत्र ही है, किन्तु वह नगर की तुलना में छोटा होता है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार नगरीय क्षेत्र के अन्तर्गत अधिसूचित कस्बे, जनगणना कस्बे तथा बाह्य विकास (Out Growth) को सम्मिलित किया जाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2011 की जनगणना के अनुसार 'भारत में नगरीय क्षेत्र'

क्र.सं.	कस्बा/नगरीय समूह/ बाह्य विकास	संख्या	
		2011 की जनगणना	2001 की जनगणना
1.	अधिसूचित कस्बे (Statutory Towns)	4,041	3,799
2.	जगणना कस्बे (Census Towns)	3,984	1,362
3.	नगरीय समूह (Urban Agglomerations)	475	384
4.	बाह्य विकास (Out Growth)	981	962

भारतीय नगर, गाँवों से अलग जीवन जीने का एक विशिष्ट ढंग और विशिष्ट संस्कृति का सूचक है। यहाँ जनसंख्या एवं जनघनत्व अधिक पाया जाता है। व्यवसायों, उपभोगवाद, दिखावा, व्यस्तता, जटिल सामाजिक संरचना, गतिशीलता के साथ बेकारी, अपराध, नशाखोरी, भिक्षावृत्ति, वैश्यावृत्ति, गँदगी, प्रदूषण, भीड़-भाड़, अनियंत्रित यातायात आदिस मस्याएँभ िभ ारतीयन गरोंक िप हचानम ेंस म्मिलितह ैं ।य हाँ परिवार, पड़ौस एवं नातेदारी का अधिक महत्व नहीं रह गया है।

जाति

भारतीय सामाजिक संरचना में जाति नाम की संस्था सम्पूर्ण विश्व में एक अनूठी एवं विशिष्ट संस्था है जो भारत से बाहर इस रूप में कही भी देखने को नहीं मिलती है।

जाति नामक अवधारणा की व्युत्पत्ति संस्कृत की जनी धातु तथा क्तिन् प्रत्यय के संयोग से हुई है। जनी धातु, जन् धातु में परिवर्तित हुई तथा क्तिन् प्रत्यय ति प्रत्यय में बदला। जन्+ति में ति के रहते हुए न्, आ में बदल जाता है इस प्रकार जाति शब्द की व्युत्पत्ति हुई। जनी अथवा जन् का अभिप्राय जन्म लेना, निकलना, प्रकट होना, प्रादुर्भाव होना, अस्तित्व में आना तथा ति प्रत्यय भाव में है। इसका अर्थ क्रिया के सम्बन्ध में है। अर्थात् जाति शब्द का अभिप्राय अस्तित्व में आने के सम्बन्ध में है।

डॉ. गोविन्द सदाशिव घुर्ये ने 'कास्ट, क्लास ऐण्ड ऑक्युपेशन' में जाति की छः विशेषताएँ बताई हैं–

1. समाज का खण्डात्मक विभाजन 2. संस्तरण

3. भोजन तथा सामाजिक संसर्ग पर प्रतिबन्ध

4. विभिन्न जातियों की सामाजिक एवं धार्मिक निर्योग्यताएँ तथा विशेषाधिकार

5. पेशों के अप्रतिबन्धित चुनाव का अभाव

6. विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध।

जाति अन्तर्विवाह को वेस्टरमार्क ने 'जाति प्रणाली का सार तत्व' कहा है।

भारत में वर्तमान में 3000 जातियाँ तथा 25,000 उपजातियाँ हैं। जातियाँ केवल हिन्दु धर्म तक ही सीमित नहीं है अपितु भारतीय मुस्लिम तथा ईसाई धर्म में भी अस्तित्व में हैं।

कमजोर वर्ग

सामाजिक-आर्थिक मापदण्डों के आधार पर अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्गों, लघु एवं सीमांत कृषकों, भूमिहीन मजदूरों, बंधुआ मजदूरों एवं परम्परागत कारीगरों को कमजोर वर्ग के अन्तर्गत माना गया है। इस दृष्टि से देश की लगभग आधी आबादी इस श्रेणी में सम्मिलित है।

जनजाति

जाति की भांति ही जनजाति भारतीय सामाजिक संरचना का महत्वपूर्ण घटक है। **डी.एन. मजूमदार** ईस्टर्न एन्थ्रोपॉलोजिस्ट, सितम्बर 1958 में लिखते हैं कि "जनजाति एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसका एक भौगोलिक क्षेत्र होता है, जो अन्तर्विवाही है, जिसमें कार्यों का विशेषीकरण नहीं होता जो जनजातीय अधिकारियों द्वारा शासित होता है, जिसकी एक भाषा या बोली होती है, जो अन्य जनजातियों या जातियों से सामाजिक दूरी स्वीकार करता है, जो अपनी जनजातीय परम्पराओं, विश्वासों और प्रथाओं को मानता है और जो जातीय और क्षेत्रीय एकीकरण की एकरुपता के प्रति जागरुक होता है।"

भारतीय संविधान में संविधान (अजजा) आदेश, 1950 में अनुसूचित जनजातियों की संख्या 744 बताई गई है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 1,21,05,69,573 है जिसमें जनजातीय आबादी 10,42,81,034 है। जो कि कुल आबादी का 8.61 प्रतिशत है।

21 राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों के 90 जिलों में जनजातीय आबादी कुल आबादी के 50 प्रतिशत से अधिक है तथा 25 प्रतिशत से अधिक एवं 50 प्रतिशत से कम जनजातीय आबादी वालों जिलों की संख्या 62 है। (जनगणना 2011)

अनुसूचित जातियाँ– 'अनुसूचित जाति' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1935 में साइमन कमीशन द्वारा किया गया था। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार आदिकालीन भारत में इन्हें 'भग्न पुरुष (Brokenmen)' या 'बाह्य जाति (OutCaste)' माना जाता था। ब्रिटिश लोगों द्वारा उन्हें दलित वर्ग (Depressed class) कहा जाता था। 1931 की जनगणना में उन्हें 'बाहरी जाति' (Exterior Caste) के रूप में सम्बोधित किया गया। महात्मा गांधी ने उन्हें 'हरिजन' के नाम

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

से पुकारा। सन् 1935 के विधान में इन वंचित दलित लोगों को कुछ विशेष सुविधाएँ प्रदान करने के लिए एक अनुसूची निर्मित की गई। इसी अनसूची के आधार पर वैधानिक परिप्रेक्ष्य से इनके लिए 'अनुसूचित जाति' (Scheduled Caste) अवधारणा को काम में लिया जाने लगा।

संविधान के अनुच्छेद 341 में यह प्रावधान है कि राष्ट्रपति, किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र के सम्बन्ध में उन जातियों, मूल वंशों या जनजातियों अथवा जातियों, मूलवंशों या जनजातियों के भागों या उनके समूहों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिये यथास्थिति उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में अनुसूचित जातियाँ समझा जाएगा। इसी प्रकार अनुच्छेद 342 में यह प्रावधान है कि किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में उन जनजातियों या जनजाति समुदायों अथवा जनजातियों या जनजाति समुदायों के भागों या उनके समूहों को विर्निदिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए यथास्थिति उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में अनुसूचित जनजातियाँ समझा जाएगा। इन प्रावधानों के अनुसरण में अनुसूचित जातियों और/या अनुसूचित जनजातियों की सूची को प्रत्येक राज्य और संघ राज्य क्षेत्र के लिए अधिसूचित किया गया है और यह केवल सम्बन्धित राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के क्षेत्राधिकार में ही मान्य है, उससे बाहर नहीं।

भारत के संविधान की धारा 341 के तहत भारत सरकार द्वारा प्रत्येक राज्य एवं संघ राज्य के लिए अनुसूचित जातियों को अधिसूचित किया गया है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का 16.6प्रतिशत अनुसूचित जातियों की आबादी है। संविधान (अनुसूचित जाति) आदेश, 1950 में कुल 1108 अनुसूचित जातियाँ थीं, जो कुल 29 राज्यों (केन्द्रशासित प्रदेशों सहित) में निवास कर रही थीं।

अन्य पिछड़े वर्ग

आदिवासी समूहों, अनुसूचित जनजातियों तथा अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त भी कुछ जातियाँ भारतीय सामाजिक संरचना में ऐसी हैं, जिनकी सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक प्रस्थिति समाज के सम्पन्न वर्गों की तुलना में कमजोर तथा निम्नतर है, उन्हें 'अन्य पिछड़े वर्ग' के नाम से संबोधित किया जाता है। भारतीय संविधान के भाग 16 तथा अन्य कुछ प्रावधानों में पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जातियों और जनजातियों के साथ 'अन्य पिछड़े वर्गों' शब्द का प्रयोग किया गया है।

सन् 1977 में मण्डल आयोग का गठन किया गया, जिसने 30 अप्रैल 1982 को अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को प्रस्तुत की। इस हेतु आयोग ने पिछड़ेपन के तीन आधार (सूचक) माने हैं- सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक। आयोग ने 3,743 जातियों को पिछड़ी जातियाँ घोषित किया जिनकी जनसंख्या देश की आबादी की 52 प्रतिशत थी। इसी अनुपात में 52 प्रतिशत स्थान इन जातियों हेतु आरक्षित करने की बात कही परन्तु संविधान की धारा 15(4) और 16(4) के अनुसार, 50 प्रतिशत से अधिक स्थान आरक्षित नहीं किये जा सकते और अनुसूचित जातियों (15 प्रतिशत) तथा अनुसूचित जनजातियों (7.5 प्रतिशत) के लिए पहले से ही 22.5 प्रतिशत स्थान आरक्षित है, अत: संविधान के प्रावधानों के कारण पिछड़ी जातियों के लिए नौकरियों एवं शिक्षण संस्थाओं में 27 प्रतिशत स्थान ही आरक्षित करने की सिफारिश की। 7 अगस्त 1990 को तत्कालीन जनता दल सरकार ने इसे लागू करने की अधिसूचना जारी की। अक्टूबर, 1990 को न्यायालय द्वारा इस पर स्थगन आदेश जारी हुआ तत्पश्चात् 16नवम्बर, 1992 को सर्वोच्य न्यायालय ने इसे चिकनी परत के प्रावधान के साथ उचित करार दिया। केन्द्र सरकार ने इसकी पालना में 8 सितम्बर

भारतीय समाज की धार्मिक संरचना 1951 से 2011 तक (प्रतिशत में)

धार्मिक समूह	सन् 1951	1961	1971	1981	1991	2001	2011
हिन्दू	84.1	83.45	82.73	82.30	81.53	80.46	79.80
मुस्लिम	9.8	10.69	11.21	11.75	12.61	13.43	14.23
ईसाई	2.3	2.44	2.60	2.44	2.32	2.34	2.30
सिक्ख	1.79	1.79	1.89	1.92	1.94	1.87	1.72
बौद्ध	0.74	0.74	0.70	0.70	0.77	0.77	0.70
जैन	0.46	0.46	0.48	0.47	0.40	0.41	0.37
पारसी	0.13	0.09	0.09	0.09	0.08	0.06	N/A
अन्य/कोई धर्म नहीं	0.43	0.43	0.41	0.42	0.44	0.72	0.9

2011 की जनगणना में 28लाख 70 हजार लोगों ने कोई धर्म नहीं (कुल का .24 फीसदी) का विकल्प चुना।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1993 से 27 प्रतिशत आरक्षण लागू कर दिया। राजस्थान में 'अन्य पिछड़े वर्ग' के लिए 21 फीसदी आरक्षण की व्यवस्था है।

भारतीय परिवार– डॉ. श्यामा चरण दुबे 'मानव और संस्कृति' में अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि ''यदि कई मूल परिवार एक साथ रहते हों और इनमें निकट का नाता हो, यदि वे एक ही स्थान पर भोजन करते हों और एक ही आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करते हों, तो उन्हें उनके सम्मिलित रूप को संयुक्त परिवार कहा जा सकता है। संयुक्त परिवार में पति-पत्नी, उनके बच्चे, दादा-दादी, चाचा-चाची, चचेरे भाई-बहिन, चचेरे भाइयों की पत्नियाँ और बच्चे, विधवा बहिनें आदि सम्मिलित होते हैं।''

भारतीय समाज में सम्बन्धों के आधार पर दो प्रकार के परिवार पाए जाते हैं।

1. विवाह सम्बन्धी परिवार और 2. जन्म सम्बन्धी परिवार

1. विवाह सम्बन्धी परिवार– इस परिवार को दाम्पत्यमूलक परिवार भी कहा जाता है। इसके केन्द्र में पति-पत्नी और उनके अविवाहित बच्चे होते हैं, साथ ही विवाह के आधार पर बने कुछ अन्य रिश्तेदार भी ऐसे परिवार के सदस्य होते हैं। ऐसे परिवार भारतीय समाज में सब जगह पाये जाते हैं। विशेषकर अनेक जनजातियों में इस प्रकार के परिवार पाये जाते हैं, जैसे खरिया जनजाति में।

2. जन्म (रक्त) सम्बन्धी परिवार– ऐसे परिवार जिसमें व्यक्ति जन्म से परिवार का सदस्य होता है। ऐसे परिवारों को रक्त सम्बन्धी परिवार भी कहते हैं। ऐसे परिवार में भाई-बहिन, चाचा, ताऊ, दादा-दादी, माता-पिता, पुत्र-पुत्रियाँ आदि निवास करते हैं। भारतीय समाज के अधिकांश परिवार इसी श्रेणी में सम्मिलित होते हैं।

भारतीय समाज के साँस्कृतिक पहलू

धर्म– भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता उसकी साँस्कृतिक विविधता है। भारतीय समाज में विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, भाषाओं के लोग निवास करते हैं। हिन्दू धर्म (सनातन धर्म) को मानने वाल लोग यहाँ बहुसंख्यक हैं जबकि मुस्लिम, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि अल्पसंख्यक हैं। सन् 1957 में सर्वोच्च न्यायालय ने केरल के शिक्षक विधेयक के सन्दर्भ में अल्पसंख्यक समूह उस समूह को माना जिनकी संख्या राज्य में 50 प्रतिशत से कम है।भारतीय समाज में एकल या नाभिकीय परिवारों की स्थिति एवं संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर अग्रसरता पर भी संक्षेप में चर्चा अपेक्षित है।

विवाह

विवाह परिवार की आधारशिला है। विवाह के माध्यम से ही व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है, सन्तानोत्पत्ति एवं बालकों का पालन-पोषण करता है तथा उन्हें समाज का उपयोगी सदस्य बनाता है। भारतीय समाज एवं संस्कृति को भारतीय विवाह ने विश्व में अनूठी संस्कृति बनाया है। सात जन्मों के साथ/जन्म जन्मान्तर के बन्धन की अवधारणा ने विवाह को एक संस्कार के रूप में मान्यता प्रदान की है। मनु ने कहा है कि जैसे सब प्राणी प्राण वायु के सहारे जीवित रहते हैं, वैसे ही सम्पूर्ण समाज गृहस्थाश्रम से जीवन प्राप्त करता है। विवाह के माध्यम से ही व्यक्ति चार पुरुषार्थों-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करता है। विवाह (भारतीय) एक धार्मिक संस्कार के रूप में जीवन को स्थायित्व प्रदान करता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि पत्नी निश्चित रूप से पति का अर्द्धांश है, अत: जब तक पुरुष पत्नी प्राप्त नहीं करता एवं संतान उत्पन्न नहीं करता, तब तक वह पूर्ण नहीं होता। भारतीय समाज व संस्कृति में विवाह प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक आवश्यक संस्कार माना गया है। इसलिए वेद आदेश देते हैं कि पुरूष को अपनी पत्नी के साथ ही धार्मिक कार्य सम्पन्न करने चाहिए।

विवाह के अन्तर्गत वे सभी समारोह एवं कर्मकाण्ड सम्मिलित होते हैं, जिनके माध्यम से लड़का-लड़की समाज द्वारा स्वीकृत पति-पत्नी के सम्बन्धों में बंधते हैं और एक-दूसरे के प्रति कुछ कर्तव्यों एवं अधिकारों को निभाते हैं। मेघातिथ के अनुसार 'विवाह कन्या को पत्नी बनाने के लिए एक निश्चित क्रम से की जाने वाली अनेक विधियों, से सम्पन्न होने वाला पाणिग्रहण संस्कार है, जिसकी अंतिम विधि सप्तर्षि दर्शन है।' इस प्रकार समाज द्वारा स्वीकृत विधि विधान के माध्यम से पति-पत्नी के सम्बन्धों में बंधने को ही विवाह कहा जाता है। भारतीय समाज में धर्म तथा प्रजा का माध्यम है विवाह। हिन्दू विवाह अधिनियम के द्वारा भी एक विवाह को ही स्वीकृति दी गई है। भारतीय समाज में व्यक्ति के लिए पाँच प्रकार के ऋणों की परिकल्पना की गई है, जिनसे उऋण होना ही व्यक्ति का लक्ष्य होता है, ये पाँच ऋण देव, ऋषि, पितृ, अतिथि तथा भूत ऋण है जिनसे उऋण होने के लिए परिवार का निर्माण करना एक आवश्यक शर्त है जो कि विवाह के द्वारा ही संभव है। इसी के माध्यम से व्यक्ति चार पुरुषार्थों की पूर्ति करता है। धर्म के बिना संस्कृति की कल्पना कठिन है तथा विवाह के बिना भारतीय समाज में धर्मानुसार आचरण संभव नहीं माना गया है। कालिदास ने 'कुमारसंभव' में उल्लेख किया है कि कामदेव को जीतने वाले शिवजी ने जब सप्तर्षि और अरुंधति को अपने सामने देखा तो अरुंधति से विवाह की उनकी इच्छा हुई कारण कि धर्मसम्बन्धी कार्यों को सम्पादित करने के लिए पतिव्रता स्त्री की आवश्यकता होती है। पत्नी को धार्मिक कार्यों में इसी महत्ता के कारण 'धर्म-पत्नी' कहा जाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भारतीय संस्कृति में यज्ञों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है, ये कर्तव्यों के रूप में समाज में विद्यमान रहे हैं। इन यज्ञों के सम्पादन हेतु पत्नी का होना अनिवार्य होता है। पंच महायज्ञों की अवधारणा भारतीय संस्कृति में रही है–ब्रह्म यज्ञ, देवयज्ञ, पितृ यज्ञ, भूत यज्ञ तथा अतिथि यज्ञ। पत्नी के अभाव में अविवाहित व्यक्ति ये यज्ञ नहीं कर सकता।

भारत में सातवीं शताब्दी में इस्लाम का आगमन हुआ और इस्लाम वर्तमान में भारत का दूसरा सबसे बड़ा धर्म (14.23 प्रतिशत) है। इस्लाम में विवाह को 'निकाह' कहते हैं। मुस्लिम कानून के अनुसार विवाह एक सामाजिक या बिना शर्त का दीवानी समझौता है, जिसका उद्देश्य घर बसाना, संतानोत्पत्ति और उन्हें वैधता प्रदान करना है।

मुस्लिम विवाह के चार प्रमुख प्रकार हैं–

(i) निकाह (ii) मुताह (iii) फासिद तथा (iv) बातिल विवाह। इनमें से 'निकाह' को सही विवाह कहा जाता है।

वर्तमान में भारत में तीसरा बड़ा धार्मिक समूह ईसाई (2.3 प्रतिशत) है। ईसाई विवाह भी एक समझौता है। क्रिश्चियन बुलेटिन के अनुसार ''विवाह समाज में एक पुरुष और स्त्री के बीच एक समझौता है, जो साधारणत: सम्पूर्ण जीवनभर के लिए होता है और इसका उद्देश्य पारस्परिकस हयोगअ ौरप रिवारक ेस् थापनाक रनाह ै।'इ ्साइयोंम ें विवाह एक स्थायी समझौता माना जाता है, इस्लाम की तरह अस्थायी नहीं।

नातेदारी

सामाजिकरू पस ेम ान्यताप्र ाप्तअ थवास ्वीकृतए ेसेस म्बन्ध नातेदारी कहलाते हैं जो रक्त, विवाह एवं दत्तकता पर आधारित होते हैं। भारत की नातेदारी व्यवस्था का विस्तृत उल्लेख श्रीमती इरावती कर्वे ने अपनी पुस्तक 'भारत में बन्धुत्व संगठन' में भौगोलिक तथा भाषायी संदर्भ में विस्तारपूर्वक किया है।

1. भौगोलिक आधार–इरावती कर्वे ने इस आधार पर सम्पूर्ण भारत की नातेदारी व्यवस्था को चार भागों में बाँटा है।

(अ) उत्तरी क्षेत्र–हिमालय से विन्ध्याचल तक सिन्ध, पंजाब, कश्मीर, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, बंगाल, असम, नेपाल।

(ब) मध्य क्षेत्र–राजस्थान, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र

(स) दक्षिणी क्षेत्र–कर्नाटक, मालाबार, तेलंगाना, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु, केरल, पश्चिमी उड़ीसा व दक्षिणी बिहार

(द) पूर्वी क्षेत्र–बर्मा, तिब्बत, असम एवं पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र

2. भाषायी आधार–श्रीमती कर्वे ने इस आधार पर नातेदारी व्यवस्था को तीन भागों में बाँटा है–

(अ) भारोपीय परिवार–पंजाबी, सिन्धी, बिहारी, हिन्दी, बंगाली, असमी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, उड़िया एवं कोंकणी।

(ब) द्रविड़ परिवार–तेलुगू, कन्नड़, तमिल, मलयालम, तूलू, टोडा, कोडागू, कोलामी, गोण्डी।

(स) आग्नेय एशियाटिक परिवार–मुण्डी, सओरा, संथाली, खासी गड़बा, भूमिया, ज्वांग बोंडो आदि

श्रीमती इरावती कर्वे के अतिरिक्त भारत में नातेदारी व्यवस्था पर ए. सी. नय्यर, मदान, ई. के. गॅफ, मैकोमेक, लुई ड्यूमा आदि ने अध्ययन किए हैं। श्रीमती लीला दुबे ने 'सोश्योलॉजी ऑफ किनशिप' शीर्षक से एक पुस्तक की रचना की है, जिसमें भारत में नातेदारी सम्बन्धों सम्बन्धित विभिन्न अध्ययनों की चर्चा की है।

नातेदारी व्यवस्था ही समाज में विवाह एवं परिवार के स्वरूप, वंश, उत्तराधिकार एवं पदाधिकार का निर्धारण, आर्थिक हितों की सुरक्षा, सामाजिक दायित्वों का निर्वहन सम्बन्धी व्यवस्था का निर्धारण एवं सृजन करती है।

परम्पराएँ

हमारे पूर्वजों द्वारा बनाए गए रीति-रिवाजों, विश्वासों व कार्य करने के तरीकों को जो हमें विरासत में मिले हैं, परम्परा के अन्तर्गत सम्मिलित होते हैं। योगेन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक 'मॉडर्नाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडीशन्स' में भारत के सन्दर्भ में परम्परा की अवधारणा का निर्माण निम्न विशेषताओं के आधार पर किया है–

1. सामूहिक सम्पूर्णता
2. संस्तरण
3. परलोकवादी
4. निरंतरता

1. सामूहिक सम्पूर्णता– इसव िशेषताम ेंव ्यक्तिग ौणत था समूह प्रमुख होता है। भारतीय समाज की प्रमुख संस्थाओं जैसे-जाति, परिवार, ग्राम, नातेदारी आदि व्यवस्थाओं में प्रधानत: परिलक्षित होने वाला परमार्थ का भाव अथवा मैं नहीं हम या आप का चिन्तन इसी विशेषता से अनुप्राणित होता है। संयुक्त परिवार की व्यवस्था में परिवार के प्रति उत्तरदायित्व को अधिक बल दिया जाता है न कि व्यक्ति के स्वातन्त्र्य को। इसी प्रकार की भावना जाति, गाँव एवं नातेदारी (स्वजन) के सम्बन्ध में रहती है।

2. संस्तरण– स्तरीकरण भारतीय समाज में प्रधानत: कर्म एवं गुण दोनों क्षेत्रों में परिलक्षित होता है। कर्म के आधार पर वर्णों की रचना

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हुई जो कालान्तर में स्थाई होकर जाति में रुपान्तरित हो गई। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र का विभाजन वैदिककाल से कर्मों के आधार पर संस्तरणात्मक रूप में रहा है। कर्म अर्जित प्रस्थिति थी जबकि जाति एक प्रदत्त प्रस्थिति (हैसियत) के रूप में विद्यमान है। जाति व्यक्ति को समाज में एक प्रस्थिति (हैसियत) प्रदान करती है जो अन्य की तुलना में उच्च अथवा निम्न हो सकती है। भारत में विभिन्न जातियों का जन्म तथा नयी जातियों का उद्‌भव एक सतत् प्रक्रिया है। शैक्षणिक उपनिवेशवाद से प्रभावित हमारे भारतीय समाजशास्त्री इस क्षेत्र में अध्ययन से कतराते रहे हैं।

गुणों के आधार पर संस्तरण के लिए त्रिस्तरीय व्यवस्था रही है। भारतीय परम्परा में तीन प्रकार के गुण माने गए हैं–सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण। इनमें से तीन भाव अथवा प्रवृत्तियां विकसित होती हैं–सात्विक, राजसिक, तामसिक। भारतीय परम्परा में जीवन के लक्ष्य निर्धारित किये गये हैं ये हैं–धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। काम, भौतिक व इन्द्रियपरक सुखों की पूर्ति का लक्ष्य तथा सन्तानोत्पत्ति के माध्यम से समाज की निरंतरता को बनाए रखने का लक्ष्य। अर्थ, आर्थिक उपयोगितावादी लक्ष्य, जीवन को चलाने के लिए आवश्यक साधनों की आपूर्ति का माध्यम। धर्म, सामाजिक जीवन को सुचारू रूप से चलाने का नैतिक आधार है जिसके आधार पर समाज एवं संस्कृति दीर्घकालिक जीवन पाती है। मोक्ष, मुक्ति की प्राप्ति का परम लक्ष्य है जिसके माध्यम से व्यक्ति जीवन चक्र (जन्म–मृत्यु) के बन्धन से मुक्त हो जाता है। संस्तरण के क्रम में मोक्ष, धर्म, अर्थ एवं काम इस तरह नियोजित रहते हैं।

चार लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आश्रम व्यवस्था का सृजन किया गया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम सम्पूर्ण जीवन अवधि को चार भागों में विभक्त कर चार लक्ष्यों की प्राप्ति का संस्थात्मक तथा मानदण्डात्मक आधार प्रस्तुत करते हैं।

3. परलोकवादी– भारतीय तत्व ज्ञान का सार रूप है परलोकवाद अथवा पारलौकिकता की अवधारणा। इस भौतिक एवं नश्वर संसार के अतिरिक्त एक दूसरे लोक की परिकल्पना भारतीय मेधा के द्वारा की गई है जिसकी सदस्यता व्यक्ति के लिये मृत्यु उपरान्त मिलती है तथा उसका आधार जीवित रहते किये गये कर्म होते हैं। मानव जीवन को संयमित, नियंत्रित एवं निर्देशित करने के लिये यह विलक्षण अवधारणा है। मोक्ष का लक्ष्य व सन्यास आश्रम, परलोकवाद का संस्थात्मक सांस्कृतिक स्वरूप है।

4. निरन्तरता– निरन्तरता, परम्परा का मूलभूत आधार है। लौकिक एवं पारलौकिक व्यवहार, विचार तथा मूल्यों की निरन्तरता ने ही भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को विश्व की प्राचीनतम अस्तित्ववान सभ्यता, संस्कृति के रूप में ख्याति प्रदान की है। परम्पराओं की निरन्तरता तीन स्रोतों तथा स्वरूपों के रूप में हमें दिखाई देती है–

(अ) प्राचीन सभ्यताएँ

(ब) शास्त्रीय परम्पराएँ

(स) लोक परम्पराएँ

(अ) प्राचीन सभ्यताएँ– सिन्धुघ ाटीक ीस भ्यता,ि मस्रक ी सभ्यता, इराक–ईरान की सभ्यता। इन सभ्यताओं के अवशेषों से हम तत्कालीन सामाजिक स्थितियों का अनुमान लगा सकते हैं।

(ब) शास्त्रीय परम्पराएँ– सर्वाधिक प्रमाणिक स्रोत है यह परम्पराओं का। प्राचीन साहित्य जैसे वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, पतज लि का महाभाष्य, लोकायत, कालिदास का साहित्य, वात्स्यायन का साहित्य, जातक साहित्य तथा पाणिनि, चरक, नागार्जुन आदि की साहित्य रचना जिसे हम वृहद् परम्परा कह सकते हैं, से हमें उस समय की सामाजिक संरचना तथा निरन्तरता की जानकारी प्राप्त होती है।

(स) लोक परम्पराएँ– ये शास्त्रीय परम्पराओं की भाँति लिखित न होकर मौखिक होती हैं। जहाँ शास्त्रीय परम्पराओं के रचनाकार संभ्रांत वर्ग के लोग होते थे वहीं लोक परम्पराओं के उद्‌गम स्रोत एवं वाहक स्थानीय गाँव, ढाणी, कबीले के लोग होते हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक सीमित क्षेत्र में मौखिक रूप से हस्तान्तरित होती रहती है। लोक जीवन (ग्राम्य जीवन) में संयम, सुरक्षा तथा स्थायित्व के लिए देशज लोगों ने लोक देवता, लोक कथा, लोकोक्तियों, कविताएँ तथा हिसाब–किताब की अपनी विधियों विकसित कर रखी हैं। ये सब उनके लोक चातुर्य का परिणाम है। भारतीय समाज में समृद्ध लोक परम्परा का इतिहास रहा है। विविधतापूर्ण समाज की निरन्तरता में लोक परम्पराओं जिनको लघु परम्पराएँ कहा जाता है ने महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाहित की है।

इन्द्रदेव का मानना है हमें भारत की लोक परम्परा में निहित चिंतन तथा दर्शन को समझने की सर्वाधिक आवश्यकता है।

परम्पराएँ, परिवर्तन की विरोधी नहीं है जैसा कि इन्हें समझा जाता है। इनमें निरन्तर बदलाव समय एवं परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार होता रहता है। अपने मूल स्वरूप को बरकरार रखते हुए परम्पराएँ 'सुधार के लिए संघर्षरत' रहती हैं।

कर्म तथा पुनर्जन्म– शास्त्रीय परम्पराओं (वृहत् परम्पराओं) तथा लोक परम्पराओं (लघु परम्पराओं) दोनों में ही यह बताया गया है कि सत्कर्म (अच्छे कर्म) का परिणाम अच्छा और कुकर्म (बुरे कर्म) का फल बुरा होता है। मानव के जन्म का निर्धारण ही उसके पिछले जन्म में किए गए कर्म के आधार पर होता है। सभी भारतीय शिक्षित, साक्षर, निरक्षर यह

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जानते हैं तथा मानते हैं कि शरीर नश्वर (नाशवान) है, परन्तु आत्मा अमर है। शरीर पर धारण किए (पहने) जाने वाले वस्त्रों की भांति ही मृत्यु उपरान्त आत्मा भी नया शरीर धारण करती है। कर्म तथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतीय समाज में व्यक्ति को नई दिशा प्रदान करता है, उसे समाज द्वारा निर्धारित दायित्व के निर्वाह के लिए प्रेरित करता है। भारतीय समाज को सामाजिक संगठन की निरन्तरता, स्थिरता तथा नियंत्रण की समस्या से मुक्त रखने में कर्म एवं पुर्नजन्म की अवधारणा ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है।

'कर्म' शब्द की व्युत्पति 'कृ' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'करना', 'व्यापार' अथवा 'हलचल', 'गतिविधि'। अर्थात् मनुष्य जो कुछ भी करता है वह कर्म है। कर्म का सम्बन्ध संस्कृत भाषा के शब्द 'कर्मन' से है जिसका अर्थ कर्तव्य, कार्य, क्रिया, कृत्य या दैव से है। इस संदर्भ में कर्म का अभिप्राय उन सभी क्रियाओं से है जो मनुष्य अपनी भूमिकाओं के निर्वहन में करता है। गीता के अनुसार व्यक्ति तीन प्रकार से क्रियाएँ करता है। मन से (मनसा), वाणी से (वाचा) और शरीर से (कर्मण)। ये तीनों ही कर्म है।

भारतीय समाज में तीन प्रकार के कर्म बताए गए हैं–

1. संचित कर्म 2. प्रारब्ध कर्म और 3. क्रियमान अथवा संचीयमान कर्म।

1. संचित कर्म– वे क्रम जो व्यक्ति द्वारा पिछले जन्म में किए गए हैं।

2. प्रारब्ध कर्म– पूर्व जन्म में किये गये कर्मों का फल जो व्यक्ति वर्तमान जन्म में भुगत रहा है, प्रारब्ध कर्म है।

3. क्रियमान कर्म– व्यक्ति द्वारा वर्तमान जन्म में जो कर्म किए जा रहा हैं जिनका संचय वह अब कर रहा है ये उसके 'क्रियमान अथवा संचीयमान कर्म' है। व्यक्ति का अगला जन्म अर्थात् पुनर्जन्म इन्हीं संचित या क्रियामान कर्मों पर निर्भर करता है। वेदों में स्पष्ट किया गया है कि आत्मा अमर है शरीर नाशवान है। मानव का उस समय तक पुनर्जन्म होता रहता है जब तक कि वह अमरत्व प्राप्त नहीं कर ले अर्थात् स्वयं को ब्रह्म में विलीन नहीं कर लेता। जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा प्राप्त करने के लिये सद्कर्मों पर जोर दिया गया है। कर्म एक जागरुक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से मानव विभिन्न पुरुषार्थों को पूरा करता है। मानव के कर्म ही सर्वोच्च पुरुषार्थ मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है तथा कर्म ही व्यक्ति के जन्म-मरण के चक्र (पुनर्जन्म) में फंसे रहने का कारण माने गये हैं।

कर्म तथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त इसकी भी व्याख्या करता है कि कुछ व्यक्तियों का वर्तमान जीवन उनके सद्कर्मों को देखते हुए सफल और सुखी होना चाहिए था परन्तु असफलता तथा कष्टों से भरपूर हैं, जबकि इसके विपरीत कुछ अशुभ एवं कुकर्म करने वाले व्यक्तियों को जीवन में सफलता तथा वैभव प्राप्त है। इसका कारण उनके पिछले जन्मों के कर्म हैं। महाभारत में विद्वान ब्रहस्पति ने युधिष्ठिर को कहा था कि मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति के शुभ और अशुभ कर्म ही उसके साथ जाते हैं और ये कर्म ही उसके पुनर्जन्म में भाग्य का निर्धरण करते हैं। अत: व्यक्ति को सत्कर्म करने चाहिए। उसे धर्म के मार्ग पर चलना चाहिए।

पुरुषार्थ

पुरुषार्थ का अभिप्राय उद्यम अथवा प्रयत्न करने से है। 'पुरुषैरर्थ्यते पुरुषार्थ' अर्थात् अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए उद्यम करना पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ जीवन के लक्ष्य हैं। अन्तिम लक्ष्य अथवा सर्वोच्च अभीष्ट जीवन का, मोक्ष प्राप्त करना है। इसकी प्राप्ति के लिये धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ माध्यम हैं। उपनिषदों, गीता तथा स्मृतियों में भारतीय समाज में व्यक्ति के चार मूलभूत कर्तव्यों (दायित्वों) का उल्लेख मिलता है।

1. धर्म– धर्म व्यक्ति को कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ने और अपने दायित्वों का निर्वहन करने की प्रेरणा देता है, यहाँ धर्म का अभिप्राय 'धारयते इति धर्म:' से है, अर्थात् जीवन में जिसे धारण किया जा सके वह धर्म है। धर्म का तात्पर्य अन्धविश्वास, रूढ़ि या भाग्य से नहीं है। धर्म, आचरण पर जोर देता है। धर्म आचरण संहिता के रूप में व्यक्ति को सन्मार्ग पर आगे बढ़ाता है। आत्मसंयम, संतोष, दया, सहानुभूति, उदारता, क्षमा, अहिंसा, अक्रोध तथा कर्तव्य पालन आदि गुणों को ग्रहण करने की प्रेरणा धर्म प्रदान करता है। व्यक्ति के साथ समाज को उन्नति में योगदान देने वाले सभी गुणों एवं कर्तव्यों के पालन को प्रोत्साहन देता है धर्म। धर्म आदेश देता है कि व्यक्ति दैनिक जीवन में पंच महायज्ञ करे जिससे वह पंच महाऋणों से उऋण हो सके। प्रत्येक मनुष्य पर माता-पिता, देवी-देवता, ऋषि-मुनियों, अतिथियों तथा प्राणी मात्र का ऋण है। उसका यह दायित्व है कि वह जीवन काल में इन सभी ऋणों से उऋण हो। इस प्रकार धर्म व्यक्ति को त्यागमय उपभोग की दिशा में आगे बढ़ाता है।

पाण्डुरंगव ामन(पी.वी.)क ाणेके अ नुसारध र्मक ास म्बन्ध किसी विशेष ईश्वरीय मत से नहीं है अपितु यह तो आचरण की संहिता है जो मनुष्य के क्रिया-कलापों पर नियंत्रण करती है। इसका लक्ष्य मनुष्य को इस योग्य बनाना है कि वह अपने अस्तित्व के लक्ष्य को प्राप्त कर ले। धर्म, मात्र इहलोक से सम्बन्धित नहीं है अपितु परलोक को उन्नत करने से भी सम्बन्ध रखता है। अर्थात् वह कार्य जिसको सम्पादित करने से इस लोक में उन्नत तथा परलोक के संदर्भ में कल्याण हो वही धर्म है। भारतीय समाज में 'धर्म' को एक पुरुषार्थ मानकर धर्मानुसार आचरण पर बल दिया गया है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. अर्थ– 'अर्थ' के अन्तर्गत वे साधन, सम्पत्ति अथवा धन हैं जिनके माध्यम से हम अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए अपने अस्तित्व को बनाए रखने में सक्षम हो पाते हैं। भारतीय समाज परम्परा में अर्थ जीवन को चलाने का एक साधन है, साध्य नहीं। बी. जी. गोखले अपनी पुस्तक 'इण्डियन थॉट थ्रू द एजेज' में लिखते हैं कि 'अर्थ' के अन्तर्गत वे सभी वस्तुएँ (भौतिक) आती हैं जो परिवार को बसाने, गृहस्थी को चलाने एवं विभिन्न धार्मिक दायित्वों का निर्वहन करने के लिए आवश्यक है। इसमें पशु, भोजन, मकान तथा धन-धान्य आदि को सम्मिलित किया गया है।

धन के अभाव में मनुष्य धार्मिक कार्यों को उचित ढंग से सम्पादन नहीं कर सकता। पंच महायज्ञों को सम्पन्न कर पंच महाऋणों से मुक्त नहीं हो सकता। कौटिल्य निर्धनता को एक पाप पूर्ण स्थिति मानते हैं। इसी प्रकार पंचतन्त्र में बताया गया है कि दरिद्रता एक अभिशाप है। डॉ. राधाकृष्णन का मानना है कि अर्थ एवं सुख की प्राप्ति मनुष्य की उचित इच्छा है, परन्तु यदि वह मोक्ष प्राप्त करने का इच्छुक है तो उसे उचित तरीके से ही अर्थ की प्राप्ति करनी चाहिए।

मनुष्य सद्उपायों से अर्थार्जन करे तथा उसे सत्कर्मों में ही खर्च करे। इसीलिए भारतीय सनातन परम्परा में अर्थ को धर्म के अधीन रखा गया है तथा गृहस्थाश्रम में ही इसे अर्जित करने की अनुमति प्रदान की गई है। शेष आश्रमों ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास में इस सम्बन्ध में निषेध है। इसका कारण है कि गृहस्थाश्रम पर ही शेष आश्रम आश्रित हैं इसलिए उद्यम द्वारा गृहस्थ को अर्थ अर्जित करने के लिए आदेशित किया गया है।

3. काम– काम का अभिप्राय सभी प्रकार की इच्छाओं अथवा कामनाओं से है। इसके माध्यम से समाज की निरन्तरता को बनाये रखना सम्भव होता है। यह मानव की मानसिक, शारीरिक तथा भावनात्मक सन्तुष्टि के लिये महत्वपूर्ण होता है। काम का धार्मिक दृष्टि से यह महत्त्व है कि व्यक्ति अपनी सभी प्रकार की इच्छाओं को पूर्ण कर विरक्ति की ओर आगे बढ़ता है तथा मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होता है।

4. मोक्ष– बौद्ध इसे 'निर्वाण' तथा जैन इसे 'कैवल्य' के नाम से सम्बोधित करते हैं। यह जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा अन्तिम पुरुषार्थ है। भारतीय मनीषियों का मानना था कि सांसारिक सुख प्राप्ति के साथ ही आध्यात्मिक उन्नति आवश्यक है। मोक्ष का तात्पर्य है हृदय की अज्ञानता का नाश। मीमांसा में स्वर्ग प्राप्ति को ही मोक्ष माना गया है। 'बौद्ध दर्शन' में मोक्ष को जीवन-मुक्ति और विदेह-मुक्ति के रूप में माना गया है। जीवन मुक्ति अर्थात् संसार में रहते हुए संसार के कष्टों से छुटकारा पाना तथा तत्व ज्ञान को प्राप्त करना। विदेह मुक्ति का अभिप्राय है जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त होना।

मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में तीन मार्ग बतलाए गए हैं-(अ) कर्म मार्ग (ब) ज्ञान मार्ग तथा (स) भक्ति मार्ग।

(अ) कर्म मार्ग–गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सम्बोधित कर कहा है कि जो व्यक्ति बिना फल की इच्छा किए धर्मानुसार आचरण करता है कर्म करता है। वही मोक्ष का अधिकारी होता है। अर्थात् जो व्यक्ति अपने निर्धारित कर्मों का पालन तथा धर्म के अनुसार आचरण करता है, वही मोक्ष प्राप्त करता है।

(ब) ज्ञान मार्ग–व्यक्ति ईश्वर के अव्यक्त स्वरूप को अपने मन में, विचारों में धारण कर लेता है। वह सभी प्राणियों के प्रति समभाव रखता है तथा सुख-दु:ख, हानि-लाभ, जन्म-मृत्यु आदि से अप्रभावित रहते हुए समस्थिति में रहता है।

(स) भक्ति मार्ग–ईश्वर को साकार मानकर उसकी पूजा आराधना करता है, स्वयं को ईश्वर को समर्पित कर देता है। जब व्यक्ति स्वधर्म का पालन करते हुए भगवान की शरण में चला जाता है और अपने को पूर्णत: समर्पित कर देता है तो वह मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

संस्कार

संस्कार की व्युत्पति 'कृअ' धातु में 'घ' प्रत्यय के योग से हुई है। जिसका अभिप्राय शुद्धता अथवा पवित्रता है। संस्कार व्यक्ति के शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक और धार्मिक परिष्कार के निमित्त की जाने वाली क्रिया है। भारतीय समाज में मानव जीवन का पूर्ण नियोजन है। सामाजिक जीवन पूर्णत: संतुलित, संयमित तथा व्यवस्थित हो इसलिए मनुष्य के जीवन को अवस्थानुसार नियोजित किया गया है। स्त्री-पुरुष सभी का सम्पूर्ण जीवन संस्कारों की छाया से परिपूर्ण रहा है। व्यक्ति के जीवन के परिष्कार के उद्देश्य से तथा धर्मानूकुल आचरण के लिए संस्कार आवश्यक माने गए हैं। संस्कारों की संख्या को लेकर यद्यपि एकमतता नहीं है परन्तु अधिकांश विद्वान 16 संस्कार मानते हैं–

1. गर्भाधान– यह प्रथम संस्कार है माता के गर्भ में जीवन आरम्भ हेतु यह संस्कार संपादित किया जाता है। इसके लिए दम्पति को उचित काल और आवश्यक धार्मिक क्रियाओं का उल्लेख किया गया है।

2. पुंसवन– गर्भस्थ शिशु की रक्षा तथा संतान प्राप्ति हेतु यह संस्कार किया जाता है। गर्भाधान के तीसरे, पांचवें और छठवें मास में देवताओं की संतति प्राप्ति हेतु स्तुति तथा आयुर्वेदिक औषधियों का गर्भ रक्षा हेतु प्रयोग किया जाता है।

3. सीमन्तोन्नयन– गर्भवती स्त्री को अमंगलकारी शक्तियों से बचाने के लिए तीसरे एवं आठवें मास के बीच विधि-विधान से माता बनने वाली स्त्री के केशों को संवारा जाता है, उन्हें उठाकर जूड़ा आदि बनाया जाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4.ज ातकर्म– पुत्र उत्पन्न होते ही तुरन्त पश्चात पिता द्वारा मक्खन, शहद एवं दही शिशु की जीभ पर लगाया जाता है।

5. नामकरण– जन्म के दसवें अथवा बारहवें दिन नामकरण किया जाता है।

6. निष्क्रमण– जन्म के चौथे माह में बालक को घर से बाहर निकालकर दिन में सूर्य दर्शन करवाया जाता है तथा रात्रि में चन्द्र दर्शन करवाया जाता है। सूर्य ज्ञान, तेज व ओज का अधिष्ठाता है जबकि चन्द्र शीतलता, धैर्य का।

7. अन्नप्राशन– जन्म के छठे मास में बालक को ठोस आहार दिया जाता है।

8. चूड़ाकर्म– जन्म के पहले अथवा तीसरे वर्ष में मुण्डन करने का जिसमें शिखा (चोटी) छोड़ी जाती है।

9. कर्णबेध– तीसरे या पांचवें वर्ष में कान छेदे जाते हैं। शिशु को निरोग रखने तथा उसके सौन्दर्य में वर्धन करने के लिए किसी अच्छे वैद्य से पहले दाहिना तत्पश्चात् बायां कान बेधा जाता है।

10. विद्यारम्भ– देवताओं की स्तुति के साथ अक्षर ज्ञान प्रारम्भ करवाना।

11. उपनयन– 'उप' का अभिप्राय है 'समीप' एवं 'नयन' का अभिप्राय है 'ले जाना'। इसमें बालक को शिक्षा के लिए गुरु के समीप ले जाया जाता है। इसे 'यज्ञोपवीत' भी कहा जाता है। इसमें बालक को आठवें से बारहवें वर्ष से गुरु के पास विद्या प्राप्ति हेतु भेजा जाता था। इसमें गुरु अपने शिष्य को समीप बैठाकर उसे गायत्री मन्त्र की दीक्षा देता तथा कहता कि 'तुम ब्रह्मचारी हो, जल का पालन करो, काम करो, दिन में शयन मत करो, आचार्य के नियंत्रण में वेदों का अध्ययन करो'।

12. वेदारम्भ– वेदों के अध्ययन को प्रारम्भ करने के लिए यह संस्कार किया जाता था।

13. केशान्त– सोलह वर्ष की आयु में ब्रह्मचारी का मुण्डन किया जाता था। इसे गोदान भी कहा जाता है। कारण कि इस अवसर पर ब्रह्मचारी के परिवार द्वारा आचार्य को गाय दान देने की परम्परा थी।

14. समावर्तन– वेदाध्ययनके प श्चात्ब्रह्मचारीग ुरुद क्षिणा देकर स्नान कर अपने घर लौटता था स्नान के बाद ही उसे 'स्नातक' कहा जाता था। इसे दीक्षान्त संस्कार भी कहा जाता है।

15. विवाह– समाज एवं संसार की निरन्तरता के लिए सबसे आवश्यक संस्कार। इस संस्कार के माध्यम से ब्रह्मचारी का गृहस्थाश्रम प्रवेश होता है। अविवाहित स्त्री–पुरुष को यज्ञ का अधिकार नहीं होता है। इसलिए यह वैयक्तिक, सामाजिक तथा धार्मिक विकास के लिए आवश्यक संस्कार है।

16. अन्त्येष्टि–जीवन–मरण से मुक्ति, आत्मा के भटकाव से मुक्ति हेतु विधि विधान से अन्त्येष्टि संस्कार।

मानव के व्यक्तित्व विकास, सामाजिक जीवन के सफल एवं नियंत्रित संचालन हेतु संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संस्कार मानव के सम्मुख उसके सम्पूर्ण जीवन की योजना प्रस्तुत करते हैं। समकालीन समय में संस्कारों की विधि, दर्शन, समय तथा संख्या में व्यापक बदलाव आया है। परन्तु बदलावों के साथ भी आज भी जीवन में इनकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। चाहे इनके रूप में बहुत बदलाव आ गया हो।

भारतीय समाज में विविधता की चुनौतियाँ

भारत में भौगोलिक स्थिति, जलवायु, जनसंख्या, प्रजाति, धर्म, भाषा आदि की दृष्टि से अनेक विषमताएँ विद्यमान हैं। भारत के उत्तर में हिमालय, दक्षिण में पठार एवं समुद्र तट, पश्चिम में थार का मरुस्थल, पूर्व में पहाड़ी भाग एवं मध्य में मैदानी क्षेत्र के निवासियों के खान–पान, पहनावे, भाषा–बोली, रहन–सहन, प्रथाओं, त्यौहारों आदि में विभिन्नताएँ पाई जाती हैं।

1. भौगोलिक विविधता–

पारिस्थितिकी एवं भूगोल सामाजिक संगठन को प्रभावित करते हैं। भारतीय राष्ट्र–राज्य सामाजिक, साँस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से विश्व के सर्वाधिक विविधतापूर्ण देशों में से एक है। भौगोलिक दृष्टि से भारत के पाँच प्राकृतिक भाग हैं–

I. उत्तर का पर्वतीय प्रदेश– उत्तर में कश्मीर से नेफा तक 1600 मील लम्बी एवं 150 से 200 मील चौड़ी हिमालय पर्वतमाला फैली हुई है। इसमें अनेक दर्रे, चोटियाँ एवं घाटियाँ हैं। अत्यधिक ऊँचाई के कारण इस क्षेत्र में बर्फ जमी रहती है, जिससे यह क्षेत्र वर्षभर बहने वाली नदियों का उद्गम स्थल है। गंगा, यमुना, सरयु, ब्रह्मपुत्र और सिन्धु यहीं से निकलती हैं। बद्रीनाथ, केदारनाथ और ऋषिकेश जैसे पवित्र स्थान इसी क्षेत्र में है। अलमोड़ा, नैनीताल, कश्मीर, मसूरी, दार्जिलिंग जैसे अनेक पर्यटन स्थल यहाँ हैं। इस क्षेत्र में नागा, अका, गारो, मिकिर, अबोट आदि अनेक जनजातियाँ भी निवासी करती हैं। यहाँ स्थित दर्रों से भारत का विदेश व्यापार होता है। इसलिए ये दर्रे भारत का प्रवेश द्वार कहलाते हैं।

II. गंगा–सिन्धु का मैदान– हिमालय से लेकर दक्षिणी पठार के बीच का मैदानी भाग उत्तर का बड़ा मैदान कहलाता है। यह गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र तथा सतलज नदियों के कारण अत्यधिक उपजाऊ है। देश की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या इस क्षेत्र में निवास करती है। यहाँ उच्च जनघनत्व है। हरिद्वार, प्रयाग और वाराणसी जैसे पवित्र स्थल इसमें

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

स्थित हैं। कृषि प्रधान यह क्षेत्र भारत की संस्कृति एवं सभ्यता का उद्‌गम स्थल रहा है।

III. दक्षिण का पठार– तीन ओर समुद्र से घिरा भारत का दक्षिण भाग पठारी है तथा प्रायद्वीप है। इसको गंगा-सिन्धु के मैदान से विन्ध्य एवं सतपुड़ा की पर्वत श्रेणियाँ अलग करती हैं। यह त्रिभुजाकार क्षेत्र घने जंगल एवं बहुमूल्य खनिजों से परिपूर्ण है। यहाँ द्रविड़ संस्कृति पाई जाती है। विश्व की प्राचीनतम जनजातियाँ जैसे ईरुला, कादर, चेंचू, मालान्पान्त्रम के साथ-साथ बहुपति विवाही कोटा व टोडा एव मातृसत्तात्मक नायर इसी क्षेत्र में निवास करते हैं।

IV. थार का मरुस्थल– गंगा की घाटी के पश्चिम की ओर शुष्क एवं रेतीला भूभाग जो थार का मरुस्थल (राजस्थान) कहलाता है। सोमनाथ से वापसी के समय महमूद गजनवी की सेना इसी क्षेत्र में पानी के अभाव तथा भीषण गर्मी व रेतीली आँधी के कारण लगभग लुप्त हो गयी थी। यहाँ की जलवायु में अत्यधिक विषमता पायी जाती है।

V. समुद्र तटीय मैदान– दक्षिण के पठारी प्रदेश में पूर्व एवं पश्चिम का क्षेत्र समुद्र के किनारे का भूभाग समुद्र तटीय मैदान कहलाता है। पश्चिम के तट को कोंकण एवं मालाबार कहते हैं। पूर्वी तट को तमिलनाडु तथा आन्ध्र-उड़ीसा तट कहते हैं। पूर्व एवं पश्चिम तट पर भारत के अनेक बन्दरगाह जैसे मुम्बई, सूरत, कालीकट, कोचीन, गोआ, विशाखापट्टनम, चेन्नई आदि स्थित हैं। दक्षिण के पठार का ढाल पूर्व की ओर होने से दक्षिण की नदियां पूर्वी समुद्र तट से होकर समुद्र में गिरती हैं। रामेश्वरम् यहाँ का पवित्र स्थल है। इस प्रकार भारत की भौगोलिक रचना विविधता लिये हुये है। प्रत्येक भौगोलिक भाग की भाषा, वेश-भूषा, रहन-सहन, संस्कृति आदि में विशिष्टता है।

2. प्रजातीय विविधता– बी.एस. गुहा ने भारत में छ: प्रजातियों का उल्लेख किया है–

(i) **नीग्रिटो**–अण्डमान निकोबार द्वीप समूह, त्रावनकोर तथा कोचीन के कादर एवं पलियन-आदिवासी, आसाम के अंगामी नागा, पूर्वी बिहार की राजमहल पहाड़ियों में बसने वाले बांगड़ी समूह तथा ईरुला।

(ii) प्रोटो-आस्ट्रेलायड–मध्य भारत की अधिकतर जनजातियाँ इसी प्रजाति की हैं। भील तथा चेंचू लोग प्रोटो-आस्ट्रेलायड माने जाते हैं।

(iii) मंगोलायड–आसाम के सीमान्त प्रान्तों चटगाँव, बर्मा, सिक्किम और भूटान के अलावा पश्चिम बंगाल, मणिपुर, त्रिपुरा आदि के लोग।

इन तीनों प्रजातियों को भारत की प्राचीनतम प्रजातियाँ माना जाता है।

(iv) भूमध्यसागरीय– इसकी तीन शाखाएँ हैं–(अ) अल्पाइन (ब) डिनारिक (स) आर्मिनायड।

अल्पाइन एवं डिनारिक प्रजाति के लोग उत्तर एवं पश्चिम भारत में निवास करते हैं। जबकि पारसी जो मुख्य रूप से मुम्बई में निवास करते हैं, आर्मिनायड प्रजाति के हैं।

(v) पश्चिमी चौड़े सिर वाले

(vi) नार्डिक (इण्डो-आर्य)–पंजाब, कश्मीर, हिन्दुकुश पर्वत के दक्षिण, राजस्थान आदि।

3. धार्मिक विविधता–

भारत भूमि का प्राचीनतम धर्म सनातन धर्म रहा है। कालान्तर में स्थितियों में बदलाव तथा बाह्य आक्रमणकारियों के प्रभाव से स्थानीय धार्मिक संरचना में बदलाव हुआ। सनातन धर्म से बौद्ध, जैन तथा सिख धर्म निकले तथा विदेशी आक्रान्ताओं ने अपने अनुकूल स्थितियों के सृजन के लिए एवं देशी लोगों को विभाजित करने के हेतु बड़े पैमाने पर शासकीय बल एवं संरक्षण से धर्मान्तरण कर इस्लाम एवं ईसाई धर्म के अनुयायी बनाए। बाहर से यहूदी एवं पारसी भी आए। इस प्रकार भारत एक बहुधर्मी राष्ट्र बन गया।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में 79.80 प्रतिशत सनातन धर्म के लोग निवास करते हैं। इस्लाम 14.23 प्रतिशत तथा ईसाई 2.30 प्रतिशत हैं। विस्तृत आँकड़ों के लिए पृष्ठ 15 की सारणी देखें।

आजादी के पश्चात् भारत एक धर्म निरपेक्ष देश बना। कोई भी धर्म राजधर्म के रूप में स्वीकार नहीं किया गया है इसलिये सभी धर्मों को फलने-फूलने, प्रचार-प्रसार एवं विकास की पूरी छूट है।

विविधता के सभी पहलुओं में धार्मिक विविधता का पहलू सर्वाधिक विवादस्पद है। इसे हमेशा धर्मनिरपेक्षता बनाम साम्प्रदायिकता तथा बहुसंख्यक बनाम अल्पसंख्यक विवाद से जोड़ा जाता रहा है। अल्पसंख्यक शब्द का समाजशास्त्रीय अभिप्राय गिडिंस के अनुसार 'अल्पसंख्यक वर्ग के सदस्य एक सामूहिकता का निर्माण करते हैं, यानी उनमें अपने समूह के प्रति एकात्मकता, एकजुटता और उससे संबंधित होने का प्रबल भाव होता है। यह भाव हानि अथवा असुविधा से जुड़ा होता है, क्योंकि पूर्वाग्रह और भेदभाव का शिकार होने के अनुभव आमतौर पर अपने ही समूह के प्रति निष्ठा और दिलचस्पी की भावनाओं को बढ़ावा देता है।' इसलिए जो समूह सांख्यिकीय दृष्टि से अल्पसंख्यक हों जैसे बायें हाथ से लिखने, खेलने, खाने वाले लोग, 29 फरवरी को जन्मे लोग। समाजशास्त्रीय अर्थ में अल्पसंख्यक नहीं होते, कारण कि

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इनमें सामूहिकता के भाव नहीं होते।

अल्पसंख्यकों के संदर्भ में हानि एवं असुविधा का अभिप्राय, केवल आर्थिक पक्ष से ही जुड़ा हुआ नहीं है अपितु सांस्कृतिक पक्ष से भी जुड़ा है जैसे पारसी एवं सिक्ख आर्थिक रूप से सम्पन्न होते हुए भी धार्मिक अल्पसंख्यक हैं। लोकतन्त्र में अल्पसंख्यक वर्ग राजनैतिक दृष्टि से भी कमजोर होता है।

धार्मिक विविधता, भारत की एकता एवं अखण्डता के लिए इतिहास में विघटनकारी रही है। सन 1947 में धर्म के आधार पर ही भारत दो भागों में भारत एवं पाकिस्तान में (वर्तमान पाकिस्तान तथा बांग्लादेश) विभक्त हो चुका है।

4. भाषाई विविधता–

भारत एक बहुभाषाई एवं बोलियों वाला राष्ट्र-राज्य है। यहाँ सवा अरब से ज्यादा की जनसंख्या कुल मिलाकर लगभग 1,632 भिन्न-भिन्न भाषाएँ और बोलियाँ बोलते हैं। इन भाषाओं में से बाईस भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान देकर आधिकारिक मान्यता प्रदान की गई है। अनुच्छेद 341(1) एवं 351 के अनुसार ये बाईस भाषाएँ निम्न प्रकार हैं–

1. असमी
2. बांग्ला
3. बोडो
4. डोगरी
5. गुजराती
6. हिन्दी
7. कन्नड़
8. कश्मीरी
9. कोंकणी
10. मैथिली
11. मलयालम
12. मणिपुरी
13. मराठी
14. नेपाली
15. उड़िया
16. पंजाबी
17. संस्कृत
18. संथाली
19. सिंधी
20. तमिल
21. तेलगू
22. उर्दू

पूर्व में 18भाषाएँ इस अनुसूची में थीं, अंतिम संशोधन के रूप में चार भाषाओं बोडो, डोगरी, मैथिली तथा संथाली को इस अनुसूची में और स्थान दिया गया है।

भारत की सभी भाषाओं को प्रमुखत: तीन भाषाई परिवारों में विभक्त किया गया है–

(i) इण्डो आर्यन भाषा परिवार–इसमेंं हिन्दी,उ र्दू,ब ंगला, असमिया, उड़िया, सिन्धी, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, बिहारी, हिमालयी आदि भाषाएँ सम्मिलित की जाती है।

(ii) द्रविड़ भाषा परिवार–इसके अन्तर्गत तेलगू, कन्नड़, मलयालम, गोण्डी, तमिल आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(iii) आस्ट्रिक भाषा परिवार–इसके अन्तर्गत मुण्डारी, संथाली, खासी, हो, खड़िया, बिरहोर, भूमिज, कोरवा, कोरकू, जुआंग आदि भाषाएँ आती हैं।

भाषाई विविधता ने भारतीय राष्ट्र-राज्य के समक्ष अनेक चुनौतियाँ उत्पन्न की हैं। भाषाई विविधता ने पृथकतावाद को भी हवा दी है। 1953 के राज्य पुनर्गठन आयोग ने भाषा के आधार पर राज्यों के गठन का सुझाव दिया था, जिसके आधार पर राज्य बने। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने का दक्षिण के राज्यों ने विरोध किया था। इधर हिन्दी भाषी उत्तर के राज्यों ने अंग्रेजी का विरोध किया।

लॉर्ड मैकाले की चाल जिसने ब्रिटिश हितों की पूर्ति करने वाले बाबू वर्ग को उत्पन्न करने के लिए अंग्रेजी को राजकाज की भाषा बनाना, आजादी के सत्तर वर्ष बाद भी भारी पड़ रही है।

5. जलवायु सम्बन्धी विविधता– भारत के पाँच भौगोलिक क्षेत्रों में एक-दूसरे से जलवायु सम्बन्धी पर्याप्त विभिन्नता है। कहीं वर्षभर में बमुश्किल दो-चार इंच वर्षा होती है तो कहीं वर्षा से हर वर्ष बाढ़ आती है। कहीं पर वर्ष भर मौसम एक सा रहता है (समुद्रतटीय क्षेत्र), तो कहीं पर भीषण गर्मी (राजस्थान) एवं कहीं पर भीषण सर्दी (पहाड़ी क्षेत्र)। इसी भिन्नता के कारण फसलों में वनस्पतियों में अन्तर आता है तथा लोगों का रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान भी बदल जाता है। इस प्रकार सांस्कृतिक विविधता का एक बड़ा कारण जलवायु सम्बन्धी विविधता भी है।

6. जनांकिकीय विविधता– भारतीय समाज जनांकिकीय दृष्टिकोण से भी काफी विविधतापूर्ण है। जनघनत्व, लिंगानुपात, जन्म दर, मृत्युदर, जीवन प्रत्याशा तथा साक्षरता के संदर्भ में राज्य दर राज्य पर्याप्त भिन्नता है। इसके साथ शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में भी भिन्नताएँ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विद्यमान हैं। 2011 की भारत की जनगणना अनुसार भारत की कुल जनसंख्या एक अरब इक्कीस करोड़ पाँच लाख उन्नहत्तर हजार पांच सौ तिहत्तर है। 2011 की भारत की जनगणना के अनुसार भारत में जनघनत्व 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी है। राज्यों में बिहार में सर्वाधिक 1102 व्यक्ति/किमी^{2}। इसके पश्चात् पश्चिम बंगाल में 1029 व्यक्ति/किमी.^{2} है। राजस्थान में 201 व्यक्ति/किमी.^{2} तथा न्यूनतम अरुणाचल प्रदेश में 17 व्यक्ति/किमी.^{2} ि नवासक रतेह ैं ाव हीं र ाष्ट्रीयर ाजधानीक्ष ेत्रि दल्लीम ें 11,297 व्यक्ति/किमी.^{2} निवास कर रहे हैं। लिंगानुपात के संदर्भ में चर्चा की जाये तो 2011 में भारत में लिंगानुपात 1000 पुरुषों पर 943 महिलाएँ था, जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में 949 तथा शहरी क्षेत्र में यह 929 महिलाओं का था। हरियाणा में जहाँ यह आँकड़ा 879 कुल तथा ग्रामीण 882 एवं शहरी 873 था, वहीं राजस्थान में कुल 928, ग्रामीण 933 तथा शहरी 914 था। केरल में लिंगानुपात महिलाओं के पक्ष में रहा कुल 1084, ग्रामीण 1078 तथा शहरी 1091, इसी प्रकार केन्द्र शासित प्रदेशों में दमनदीव सबसे न्यूनतम 618 कुल, ग्रामीण 864 तथा शहरी 551 रहा तो पुडुच्चेरी सर्वाधिक कुल 1037, ग्रामीण 1028एवं शहरी 1042 महिलाएँ प्रति एक हजार पुरुष रहा। 0–6 आयु समूह में पूरे भारत वर्ष में कहीं भी लिंगानुपात लड़कियों के पक्ष में नहीं रहा। केरल एवं पुडुच्चेरी जिनमें कुल लिंगानुपात जो महिलाओं के पक्ष में था, वहाँ भी इस आयु समूह में क्रमश: कुल 964 ग्रामीण 965 तथा शहरी 963 (केरल) एवं कुल 967, ग्रामीण 953 तथा शहरी 975 (पुडुच्चेरी) रहा।

जीवन प्रत्याशा के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र प्रतिवेदन 2015 स्पष्ट करता है कि धीरे–धीरे भारत में जीवन प्रत्याशा वैश्विक स्तर 71.4 वर्ष की तरफ बढ़ रही है। 2015 में भारत में औसत जीवन प्रत्याशा 68.3 वर्ष जबकि पुरुषों की यह 66.9 वर्ष तथा महिलाओं की 69.9 वर्ष रही है, जिसमें क्षेत्रीय विषमताएँ विद्यमान हैं। जनसंख्या वितरण के दृष्टिकोण से देखा जाए तो 2011 की जनगणना स्पष्ट करती है कि भारत की जनसंख्या का 68.8 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में तथा 31.2 फीसदी शहरी क्षेत्र में निवास करती है। शहरीकरण तेज गति से बढ़ रहा है अर्थात गाँवों से नगरों की तरफ पलायन बढ़ा है इसमें भी क्षेत्रीय विभिन्नता है। जहाँ उत्तर प्रदेश में दशकीय परिवर्तन देखा जाए तो ग्रामीण क्षेत्र का 18 प्रतिशत जबकि शहरी क्षेत्र में 28.8 प्रतिशत रहा। वहीं सिक्किम में ग्रामीण क्षेत्र –5 फीसदी (नकारात्मक) तथा शहरी क्षेत्र में 156.5 प्रतिशत रहा। इसी प्रकार लक्षद्वीप में ग्रामीण क्षेत्र में जनसंख्या में बदलाव –58 प्रतिशत जबकि शहरी क्षेत्र में 86.6 प्रतिशत देखने को मिला। साक्षरता के परिप्रेक्ष्य में भी बहुत अधिक क्षेत्रीय असमानता व्याप्त है। साक्षरता का राष्ट्रीय औसत (2011) 74.04 प्रतिशत था। पुरुष साक्षरता 82.14 प्रतिशत तथा स्त्री साक्षरता 65.46 प्रतिशत था।

साक्षरता दर (2011)

	कुल (प्रतिशत में)	पुरुष (प्रतिशत में)	महिलास ाक्षरता (7 वर्ष एवं अधिक आयु)
भारत	74.04	82.14	65.46
केरल	93.91	96.02	91.98
लक्षद्वीप	92.28	96.11	88.25
मिजोरम	91.58	93.72	89.40
राजस्थान	67.06	80.51	52.66
अरुणाचल प्रदेश	66.95	73.69	59.57
बिहार	63.82	73.39	53.33

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि केरल का कुल साक्षरता प्रतिशत 93.91 है जो भारत में सर्वाधिक है। बिहार में न्यूनतम 63.82 प्रतिशत है। पुरुष साक्षरता में लक्षद्वीप 96.11 प्रतिशत के साथ शिखर पर है, तो बिहार 73.39 प्रतिशत के साथ सबसे निचले पायदान पर है। महिला साक्षरताके स न्दर्भम ेंके रल9 1.98प्र तिशतस ाथशि खरप रह ैत ो राजस्थान 52.66 प्रतिशत के साथ सबसे निचले पायदान पर है। जनसंख्यास म्बन्धीय ेंि वशेषताएँभ ारतीयस माजक ोअ लग–अलग स्तरों में विभक्त करती हैं।

7. साँस्कृतिक विविधता– भारत में वेष–भूषा, रहन–सहन, खान–पान, कला, संगीत, नृत्य, प्रथा, त्यौहार, उत्सव आदि संदर्भ में बहुत अधिक विविधता पायी जाती है। उत्तर तथा दक्षिण भारत तथा ग्रामीण एवं नगरीय स्त्री–पुरुषों के पहनावे में बहुत अधिक अन्तर देखने को मिलता है। पंजाब में सलवार, कुर्ता, पगड़ी, राजस्थान में धोती, कुर्ता, साफा, बंगाल में धोती कुर्ता दक्षिण में लुंगी और कुर्ता इसी प्रकार महिलाओं के पहनावे में भी बहुत अन्तर देखने को मिलता है। पंजाब, हरियाणा में गेहूँ, राजस्थान में बाजरा, ज्वार, मक्का, बंगाल, बिहार में चावल तथा बंगाल में चावल, मछली लोगों का मुख्य भोजन है। पंजाब में भंगड़ा, राजस्थान में घूमर, डांडिया, गुजरात में गरबा तो दक्षिण भारत में भरतनाट्यम (तमिलनाडु एवं कर्नाटक में) उत्तर प्रदेश में कथक (उत्तर भारत में), केरल में कथकली, आन्ध्रप्रदेश में कुच्चीपुड़ी, मोहिनी अट्टम केरल में, उड़ीसा में ओडिसी नृत्य प्रचलित हैं। इसी प्रकार त्योहार एवं उत्सवों में भी भिन्नता देखने को मिलती है। राजस्थान के गणगौर एवं तीज, पंजाब की लोहड़ी, महाराष्ट्र की गणपति पूजा, बिहार की छठ पूजा, केरल का ओणम, गुजरात, महाराष्ट्र की विजयादशमी, पश्चिम बंगाल की दुर्गा पूजा, मथुरा (उत्तर प्रदेश) की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कृष्ण जन्माष्टमी, पंजाब का गुरु पर्व, असम का बिहु, तमिलनाडु का पोंगल, केरल का बिशु अपनी-अपनी विशिष्टताएँ लिये हुए हैं। इसी प्रकार कला एवं संगीत के क्षेत्र में विविधताएँ निहित हैं। विवाह एवं परिवार के मामले में भी यहाँ एक विवाह, बहुपति विवाह, बहु पत्नी विवाह विद्यमान हैं जबकि मातृ सत्तात्मक एवं पितृ सत्तात्मक दोनों प्रकार के परिवार यहाँ पाये जाते हैं। मन्दिर, मस्जिद, चर्च, स्तूप आदि के निर्माण की शैली में पर्याप्त विभिन्नता मौजूद है।

8. जातीय एवं जनजातीय विविधता– भारतीय समाज अनेक जातियों एवं जनजातियों में विभक्त है। प्रत्येक जाति एवं जनजाति के अपने खान-पान, रहन-सहन, विवाह तथा सामाजिक संबंधों को स्थापित करने के नियम हैं। भारत में लगभग 3000 जातियाँ तथा 25000 से ज्यादा उपजातियाँ हैं। इनमें ऊँच-नीच का संस्तरण है। व्यवसायों की भिन्नता है। इनके निवास के क्षेत्रों में भिन्नता है। यही विशेषताएँ जनजातियों में भी देखने को मिलती है।

विगत विवेचन से परिलक्षित होता है कि भारतीय समाज काफी विविधतापूर्ण है।

विभिन्नता में एकता–

भारतीय समाज में विविधताओं की अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं, जिनका वर्णन, विश्लेषण हमने इसी अध्याय के विगत कुछ पृष्ठों में किया है। हम जानते हैं कि इन सभी विविधताओं के होते हुए भी भारत एक है, भारतीय समाज एक है। भारत के सभी भागों, धर्मों, संस्कृतियों में अन्योन्याश्रितता की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। जिस प्रकार शरीर के अनेक अंग एक-दूसरे से पर्याप्त भिन्नता लिये हुये होते हैं, लेकिन सभी का अस्तित्व अर्थपूर्ण तभी होता है जब सब साथ मिले रहते हैं। यही सम्बन्ध भारतीय समाज के अंगों का है।

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि ''भारत का सिंहावलोकन करने वाले भारत की अनेकता और विभिन्नता से बहुत अधिक प्रभावित हो जाते हैं। वे भारत की एकता को साधारणत: नहीं देख पाते, यद्यपि युगों-युगों से भारत की मौलिक एकता ही उसका महान् एवं मौलिक तत्त्व रहा है। पाँच या छह हजार वर्ष हुए कि सिन्धु घाटी की सभ्यता उत्तर में फली-फूली और कदाचित् दक्षिण भारत तक फैल गयी। इतिहास के उस प्रभाव से अनगिनत जातियाँ, विजेता, तीर्थ यात्री एवं छात्र एशिया की ऊँची-ऊँची भूमि से भारत के मैदान में आये जिन्होंने भारतीय जीवन, संस्कृति और कला को प्रभावित किया, किन्तु इसी देश में विलीन हो गये। इन सम्पर्कों से भारत में परिवर्तन हुआ, किन्तु उसकी आत्मा मौलिक रूप से पुरानी रही है। यह तभी सम्भव हुआ होगा जब मौलिक एकता की भावना की जड़ें गहराई तक हों, जब उन्हें नवागन्तुकों ने स्वीकार किया हो'' अर्थात् भारत में विभिन्नता में एकता प्राचीन काल से ही विद्यमान रही है–

1. धार्मिक विभिन्नता में एकता– भारत विभिन्न धर्मों की जन्म तथा आश्रयस्थली रहा है। यहाँ सनातन धर्म से जैन, बौद्ध तथा सिक्ख धर्मों का जन्म हुआ। कहने को तो ईसाई एवं इस्लाम धर्म विदेशी हैं, लेकिन भारतीय ईसाई एवं भारतीय इस्लाम धर्म के अनुयायियों के पूर्वज सनातनी ही थे। बाहरी आक्रमण तथा सत्ता एवं शासन के संरक्षण ने इन्हें ईसाई अथवा इस्लाम स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया गया है। एक प्रधान कारण है कि भारतीय धर्मों में सभी में एक मूलभूत एकता व्याप्त है।

भारत में जितने भी धर्मावलम्बी हैं, इनके पूर्वज कभी न कभी एक ही मत के रहे हैं इस कारण धर्म ने भारत में एकता स्थापित की है। प्रो. एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार ''एकता की अवधारणा हिन्दू धर्म में अन्तर्निहित है। भारत के कोने-कोने में हिन्दुओं के पवित्र तीर्थ स्थान हैं। पूरे देश के हर भाग में शास्त्रीय संस्कृति के कुछ विशिष्ट स्थान दृष्टिगोचर होते हैं। भारत न केवल हिन्दुओं के लिए ही पवित्र भूमि है, यह सिक्ख, जैन और बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए भी पवित्र स्थल है। मुसलमानों और ईसाइयों के भारत में अनेक तीर्थ स्थान हैं, विभिन्न धार्मिक समूहों में जाति प्रथा पायी जाती है इससे इन सबमें एक समान सामाजिक युक्ति दिखाई देती है।''

एक ही स्थान पर निवास करने वाले विभिन्न धार्मिक समूहों के लोगों में परस्पर अन्तर्निभरता पायी जाती है। आर्थिक एवं राजनैतिक कारणों से भी यह अन्तर्निभरता बढ़ी है। एक धर्म के अनुयायी अथवा अनुयायियों ने यदि किसी क्षेत्र में विशेषज्ञता अर्जित की है तो दूसरे धर्म के अनुयायी उसके उपभोक्ता बन जाते हैं। लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति के पास समान मताधिकार है। सत्ता पाने के लिए चुनाव जीतना आवश्यक है और इसके लिए सभी धर्मों एवं जातियों के मानने वालों के मत चाहिए होते हैं। इसी प्रकार एक ही व्यवसाय में अनेक धर्मों के धर्मावलम्बी साथ-साथ काम करते हैं। विभिन्न त्योहारों और उत्सवों जैसे दीपावली, होली, ईद, दशहरा, नववर्ष के अवसर पर सभी धर्मावलम्बी एक-दूसरे के हर्षोल्लास में सहभागी बनते हैं।

भारत में धार्मिक सहिष्णुता एवं समन्वय के तत्व विद्यमान हैं। जब भी कोई प्राकृतिक आपदा आती है अथवा राष्ट्र की सम्प्रभुता पर कोई संकट आता है, सभी भारतीय एकजुट होकर सफलतापूर्वक उसका मुकाबला करते हैं। सभी धर्मों के अनुयायी सार्वजनिक जीवन में एक-दूसरे के साथ मिलकर समाज एवं राष्ट्र की उन्नति के लिए कार्य करते हैं। इस अन्त:क्रिया के कारण इन्होंने एक-दूसरे की धार्मिक विशेषताओं को

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भी ग्रहण किया है। प्रो. एम.एन. श्रीनिवास ने संस्कृतीकरण की प्रक्रिया का उल्लेख किया है। संत कबीरदास जी ने भी समन्वयी परम्परा को प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि–

'मोको कहां ढूंढे रे बंदे,
मैं तो तेरे पास में
ना तीरथ में, ना मूरत में
ना एकांत निवास में
ना मंदिर में, ना मस्जिद में
ना काबे कैलास में
मैं तो तेरे पास में बंदे
मैं तो तेरे पास में...'

इन पंक्तियों में कबीरदास जी सनातनी तथा मुसलमान दोनों का आह्वान करते हुए कहते हैं कि पूजा पद्धति में भेद होते हुए भी दोनों को तलाश एक ही सर्वोच्च सत्ता की है जो कि हर मानव के अन्दर ही है।

विभिन्न धर्मों में दिखाई देने वाली विभिन्नता बाहरी है, सतही है, मूल में सभी भारतीय धर्मों में एकरूपता है। सभी धर्म, आध्यात्म ईश्वर, ईमानदारी, सच्चाई, अहिंसा, नैतिकता, दया, परोपरकार आदि में विश्वास करते हैं। दूरस्थ गाँव का व्यक्ति भी स्नान करते समय स्नान के जल में गंगा, यमुना, कावेरी, सिन्धु, सरस्वती आदि सभी नदियों के जल को प्रवेश करने की प्रार्थना करता है।

भारत में विभिन्न धार्मिक समूहों के निवास करने के उपरान्त भी सभी की पहचान एक भारतीय के रूप में ही है।

2. सांस्कृतिक विभिन्नता में एकता– भारत के अलग-अलग भू-भागों में निवास करने वाले लोगों में परिवार, विवाह, रीति-रिवाजों, पहनावे, भाषा-बोली, खान-पान आदि को लेकर पर्याप्त विभिन्नता विद्यमान है। इन सबके उपरान्त भी सम्पूर्ण भारतीय, समाज में एकता के तत्व दिखाई पड़ते हैं। जाति व्यवस्था पूरे भारत के सभी क्षेत्रों, धर्मों में समान रूप से मान्यता प्राप्त है। संयुक्त परिवार प्रथा, कर्म एवं पुनर्जन्म में आस्था, विवाह की एक स्वीकृत प्रणाली, तीर्थाटन की परम्परा, उपवास, त्योहार, लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली में आस्था, एक संविधान, बड़ों के सम्मान के मानदण्ड, आध्यात्मिक दर्शन, योग, दान एवं पुण्य की अवधारणा, ऋणों से उऋण होने के प्रयासों में विश्वास, गृहस्थ धर्म का पालन, साधु-संन्यासियों का सम्मान, राष्ट्रीय उत्सव एवं प्रतीक जैसे-भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण, हनुमान, माता दुर्गा, सीता, लक्ष्मी, सरस्वती की पूजा एवं आराधना, स्वर्ग-नरक की अवधारणा में विश्वास, सभी भाषाओं में व्याकरण सम्बन्धी एकता, ज्ञान का सम्मान, पवित्रता की अवधारणा, आचरण सम्बन्धी शुद्धता के नियम, कमजोर के प्रति दया भावना, वनस्पतियों, नदियों पहाड़ों, सूर्य अर्थात् प्रकृति की उपासना, कण-कण में सर्वोच्च सत्ता के वास की धारणा सम्पूर्ण भारत में समानता के साथ विद्यमान है। पद्धति में भिन्नता हो सकती है, लेकिन प्रवृत्ति एवं भावनाओं की तीव्रता में साम्यता विद्यमान है जो भारत की सांस्कृतिक एकता का द्योतक है। इसलिए कहा जाता है कि परिवर्तन संस्कृति के अन्दर हुए है न कि संस्कृति का। संस्कृति का मूल रूप आज भी अपरिवर्तित है।

3. भौगोलिक विभिन्नता में एकता– भौगोलिक दृष्टि से हमने भारत को पाँच भागों में विभक्त किया है। इनमें एक-दूसरे में वर्षा, जलवायु, उपजाऊपन, खनिज संसाधन, वन एवं संरचना को लेकर बहुत विषमता है। यहाँ तक कि संचार एवं यातायात के आधुनिकतम साधनों के अभाव में इन क्षेत्रों में आपसी सम्पर्क एवं आवागमन ही एक दुष्कर कार्य है।

इन सबके उपरान्त भी भारत एक भौगोलिक इकाई है। प्रकृति ने भारत की प्राकृतिक सीमाएँ बनाई हैं जो शेष विश्व से भारत को अलग कर एक देश के रूप में पृथक एवं एक इकाई के रूप में स्थापित करती है। उत्तर में हिमालय तथा तीन दिशाओं में समुद्र भारत देश के प्राकृतिक पहरेदार तथा सृजनहार है। इससे देश के निवासियों में एक देश के नागरिक होने के भाव जागृत हुए हैं। इसी प्रकार देश के अन्दर आदिशंकराचार्य द्वारा स्थापित चारों दिशाओं में चार मठों यथा उत्तर में बद्रीनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम्, पूर्व में पुरी और पश्चिम में द्वारिका ने समस्त भारतीयों को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य किया है। इन्होंने भारतीयों में मातृभूमि के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम का संचार किया है।

भारत के प्राचीन ग्रन्थों, षड्दर्शन आदि ने तथा ऋषियों एवं मुनियों ने भारत की एकता के लिए अभूतपूर्व कार्य किया है। उनके विचार एवं व्यवहार से भारत भूमि एक है, की प्रेरणा मिलती है। हमारे ग्रन्थों में 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि'। जन्म भूमि स्वर्ग से भी प्यारी है तथा 'माता भूमि: पुत्रो अहं पृथिव्या' (पृथ्वी मेरी मां है और मैं उसका पुत्र हूँ) जैसे अनेक मातृभूमि से सम्बन्धित बलिदान एवं त्याग की भावना से ओतप्रोत कर देने वाले उदाहरण है। इस देश में निवास करने वाले नागरिक भारत भूमि को भारत माता कहकर सम्बोधित करते हैं इसलिए सभी क्षेत्रों के निवासी एक-दूसरे से भावनात्मक रूप से भी जुड़े हुए हैं।

4. राजनैतिक विभिन्नता में एकता– भारत सांस्कृतिक रूप से एक इकाई रहा है, राजनैतिक एकता का प्राय: इतिहास में अभाव ही रहा है। सम्पूर्ण भारत अनेक राजा-महाराजाओं के नियन्त्रण में बंटा हुआ रहा है। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व अशोक महान् तथा अकबर के समय जरूर एक राजनैतिक इकाई हम रहे हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् सम्पूर्ण भारत में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

एक लोकतान्त्रिक शासन की स्थापना हुई। विभिन्न प्रान्तों में प्रान्तीय सरकारों का गठन हुआ। प्रान्तों ने मिलकर भारत संघ का निर्माण किया। प्रान्तीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो राजनैतिक विविधता दिखाई देती है। परन्तु चीन एवं पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध में सभी जातियों, धर्मों, राजनैतिक दलों ने एकजुट होकर युद्धों का सामना किया। स्वतन्त्र भारत में पहली बार इस तरह राजनैतिक एकता दिखाई दी। एम. एन. श्रीनिवास के अनुसार पंचवर्षीय योजनाएं, एक केन्द्रीय सरकार, एक कानून, भारत की एकता का पर्याप्त प्रमाण है। पूरे देश का एक संविधान, विधि का शासन, बिना किसी भेदभाव के सभी के समान अधिकार एवं दायित्व, विशेषाधिकारों की समाप्ति, विषमतामूलक व्यवस्था की समाप्ति, समतामूलक कानूनों का निर्माण, सभी को समान एवं पर्याप्त प्रतिनिधित्व, अवसरों की समानता, कमजोर एवं पिछड़ों को आगे बढ़ाने के लिए संवैधानिक संरक्षण, छुआछूत एवं दमनकारी व्यवहारों का अन्त, धर्म, भाषा, क्षेत्र, जाति के आधार पर राज्य द्वारा कोई भेदभाव नहीं आदि भारत की राजनैतिक एकता का परिचायक है। एक सेना, एक सरकार, एक संविधान, एक झण्डा, एक संसद, एक मानचित्र, सभी के लिए समान राष्ट्रीय प्रतीक, समान राष्ट्रीय पर्व, राष्ट्रीय पशु, राष्ट्रीय पक्षी, एक राष्ट्रगीत, एक राष्ट्रगान ये सभी भारत की राजनैतिक एकता के परिचायक हैं।

हिन्दू शब्द सिन्धु से बना है। भारतीय सभ्यता को सिन्धु सभ्यता माना जाता है इसलिए इस देश का नाम हिन्दुस्तान पड़ा और यहाँ रहने वालों को हिन्दू कहा गया। अत: हिन्दू धर्म न होकर एक संस्कृति है, जीवनशैली, विचार है जिसका प्रतिनिधित्व सभी हिन्दुस्तानी नागरिकों द्वारा माना जा सकता हैं। भारतीय धर्म के संदर्भ में धर्म ग्रन्थों में सनातन शब्द का प्रयोग किया गया है। इसलिए इस अध्याय में भी सनातन शब्द का ही प्रयोग किया है। विष्णु सहस्त्रनाम नामक ग्रन्थ में परमात्मा के पर्याय के लिए सनातन का शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ त्रैकालिक अस्तित्व से सम्बन्धित है। यह शब्द सना अव्यय पूर्व ल्युट् प्रत्यय से व्याकरण द्वारा निष्पन्न है अर्थात् सना + तन = सनातन।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- भारतीय समाज 'एक समाज' का उदाहरण है।
- संरचना का अर्थ विशिष्ट पद्धति से किसी इकाई की निष्पत्ति से है। परिष्कृत निर्माण को संरचना कहा जाता है।
- गाँव अथवा ग्रामीण समुदाय वह क्षेत्र है जहाँ कृषि की प्रधानता, प्रकृति से समीपता, प्राथमिक सम्बन्धों की बहुलता, कम आबादी, एकरूपता, स्थिरता, विभिन्न मुद्दों पर सामान्यत: सहमति आदि विशेषताएँ होती हैं।
- कस्बा एवं नगर, गाँवों से अलग जीवन जीने के विशिष्ट ढंग और विशिष्ट संस्कृति के सूचक हैं।
- भारतीय सामाजिक संरचना में जाति नाम की संस्था सम्पूर्ण विश्व में एक अनूठी एवं विशिष्ट संस्था है।
- भारत की जनगणना 2011 के अनुसार कुल जनसंख्या में जनजातीय आबादी 8.61 प्रतिशत है।
- अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 'साइमन कमीशन' द्वारा 1935 में किया गया।
- भारत की जनगणना 2011 के अनुसार कुल जनसंख्या में अनुसूचित जातियों की आबादी 16.6 प्रतिशत है।
- मण्डल आयोग ने अपने प्रतिवेदन में 3,743 जातियों को पिछड़ी जातियाँ घोषित किया।
- भारतीय परिवारों की भावना आज भी संयुक्त परिवार की तरफ है।
- सन् 1957 में सर्वोच्च न्यायालय ने केरल के शिक्षक विधेयक के सन्दर्भ में अल्पसंख्यक समूह उस समूह को माना जिनकी संख्या राज्य में 50 प्रतिशत से कम है।
- धर्म सम्बन्धित कार्यों को सम्पादित करने के लिए पतिव्रता स्त्री की आवश्यकता होती है। पत्नी की धार्मिक कार्यों में महत्ता के कारण उसे 'धर्म-पत्नी' कहा जाता है।
- इस्लाम में विवाह को 'निकाह' कहा जाता है।
- हिन्दू विवाह एक संस्कार है जबकि इस्लाम एवं ईसाई विवाह एक समझौता है। ईसाई विवाह एक स्थायी समझौता है।
- परम्पराएँ परिवर्तन की विरोधी नहीं हैं, जैसा कि इन्हें समझा जाता है। अपने मूल स्वरूप को बरकरार रखते हुए परम्पराएँ 'सुधार के लिए संघर्षरत' रहती हैं।
- मानव के कर्म ही सर्वोच्च पुरुषार्थ 'मोक्ष' प्राप्ति का मार्ग हैं।
- अपने अभीष्ट (अन्तिम/सर्वोच्च लक्ष्य) को प्राप्त करने के लिए उद्यम करना पुरुषार्थ है।
- सनातन धर्म में 16संस्कार माने गये हैं।
- भारत में भौगोलिक स्थिति, जलवायु, जनसंख्या, प्रजाति, धर्म, भाषा आदि की दृष्टि से अनेक विषमताएँ विद्यमान हैं।
- संविधान की आठवीं अनुसूची में बाईस भाषाएँ सम्मिलित की गई हैं।
- सम्पूर्ण भारत में अनेक प्रकार की विभिन्नताओं के होते हुए भी एकता के लक्षण महत्त्वपूर्ण हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अभ्यासार्थ प्रश्न–

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।" कहा है–
   (अ) अरस्तू (ब) मैकाइवर
   (स) प्लेटो (द) दुबे
2. 'भारतीय समाज' उदाहरण है–
   (अ) एक समाज का (ब) समाज का
   (स) समुदाय का (द) संस्था का
3. भारत की जनगणना 2011 के अनुसार भारत में ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत है–
   (अ) 31.16 (ब) 70.00
   (स) 68.84 (द) 68.48
4. गाँव को 'जीवन विधि' के रूप में किसने परिभाषित किया है?
   (अ) टी.एन. मदान (ब) डी.एन. मजुमदार
   (स) एस.सी. दुबे (द) एम.एन. श्रीनिवास
5. 'कास्ट, क्लास एण्ड ऑक्यूपेशन' पुस्तक किसने लिखी है?
   (अ) मैकिम मैरियट (ब) मिल्टन सिंगर
   (स) बी.आर. चौहान (द) जी.एस. घुर्ये
6. डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार आदिकालीन भारत में अनुसूचित जातियों को क्या कहा जाता था?
   (अ) भग्न पुरुष (ब) बाह्य जाति
   (स) ये दोनों (द) इनमें से कोई नहीं
7. 1931 की जनगणना में अनुसूचित जातियों को क्या कहा गया?
   (अ) दलित वर्ग (ब) बाहरी जाति
   (स) अनुसूचित जाति (द) कोई नहीं
8. अनुसूचित जाति से सम्बन्धित कौनसा अनुच्छेद भारतीय संविधान में है?
   (अ) 339 (ब) 341
   (स) 340 (द) 342
9. अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित कौनसा अनुच्छेद भारतीय संविधान में है?
   (अ) 338 (ब) 342
   (स) 344 (द) 372
10. भारतीय समाज में एक मानव के लिए 'ऋण' निर्धारित हैं–
    (अ) 4 (ब) 7
    (स) 5 (द) 9
11. मुस्लिम विवाह में सही विवाह किसको माना गया है?
    (अ) निकाह (ब) मुताह
    (स) फासिद (द) बातिल
12. भारतीय परम्परा में गुण कितने प्रकार के माने गए हैं?
    (अ) एक (ब) पाँच
    (स) सात (द) तीन
13. भारतीय सनातन परम्परा में जीवन का अन्तिम तथा सर्वोच्च लक्ष्य क्या माना गया है?
    (अ) धर्म (ब) काम
    (स) मोक्ष (द) अर्थ
14. "धर्म का सम्बन्ध किसी विशेष ईश्वरीय मत से नहीं है अपितु यह आचरण की संहिता है, जो मनुष्य के क्रियाकलापों पर नियंत्रण करती है।" कहा है–
    (अ) पाण्डुरंग वामन काणे
    (ब) श्रीनिवास
    (स) योगेन्द्र सिंह
    (द) मजुमदार।
15. संविधान की आठवीं सूची में कितनी भाषाएँ सम्मिलित हैं?
    (अ) 18 (ब) 20
    (स) 22 (द) 23
16. 2011 की जनगणनानुसार भारत में जन घनत्व है–
    (अ) 282 (ब) 382
    (स) 482 (द) 182
17. 2011 की जनगणनानुसार भारत में लिंगानुपात कितना है?
    (अ) 943 (ब) 942
    (स) 939 (द) 843
18. भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार साक्षरता का राष्ट्रीय औसत क्या है?
    (अ) 73.04 (ब) 72.04
    (स) 71.04 (द) 74.04

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. भारत की जनगणना 2011 के अनुसार कुल जनसंख्या में नगरीय आबादी का प्रतिशत कितना है?
2. भारत में (2011) कुल नगरीय क्षेत्रों की संख्या कितनी है?
3. जाति अन्तर्विवाह 'जाति प्रणाली का सारतत्त्व' है, किसने कहा है?
4. महात्मा गांधी ने 'अनुसूचित जाति' को किस नाम से पुकारा?
5. मण्डल आयोग का गठन कब किया गया था?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

6. सम्बन्धों के आधार पर परिवार कितने प्रकार के पाये जाते हैं?
7. सनातन धर्म में विवाह को कितने जन्मों का साथ माना गया है?
8. 'मुताह विवाह' किस धर्म का उदाहरण है?
9. विवाह एक 'स्थायी समझौता' है, किस धर्म की मान्यता है?
10. 'मॉडर्नाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडीशन्स' पुस्तक के लेखक का नाम बताइए।
11. परम्पराओं का सर्वाधिक प्रामाणिक स्रोत कौनसी परम्पराएँ हैं?
12. ''भारत की लोक परम्परा में निहित चिन्तन तथा दर्शन को समझने की सर्वाधिक आवश्यकता है।'' किसने कहा है?
13. 'मोक्ष' को बौद्ध क्या कहते हैं?
14. देश की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या किस क्षेत्र में निवास करती है?
15. 'थार का मरुस्थल' किस राज्य में स्थित है?
16. राजस्थान में 2011 की जनगणनानुसार लिंगानुपात कितना है?
17. घूमर किस राज्य का नृत्य है?
18. 'द्वारिका' भारत में किस दिशा में स्थित है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न—

1. संरचना को परिभाषित कीजिए।
2. सामाजिक संरचना क्या है? स्पष्ट कीजिए।
3. गाँव की विशेषताएँ बताइए।
4. कस्बे को परिभाषित कीजिए।
5. गोविन्द सदाशिव घुर्ये के अनुसार जाति की विशेषताएँ लिखिए।
6. अन्य पिछड़े वर्ग पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
7. कर्म कितने प्रकार के होते हैं? लिखिए।
8. पुरुषार्थ पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
9. संस्कार कितने माने गए हैं? संक्षेप में बताइए।
10. मुस्लिम विवाह के प्रकार बताइए।
11. भौगोलिक दृष्टि से भारत के कितने भाग हैं? लिखिए।
12. भारत में जनांकिकीय विविधता को स्पष्ट कीजिए।
13. धार्मिक विभिन्नता में एकता को संक्षेप में समझाइए।
14. नगर किसे कहते हैं? स्पष्ट कीजिए।
15. जनजाति को परिभाषित कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न—

1. भारतीय समाज के संरचनात्मक पहलुओं को स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय समाज के सांस्कृतिक पहलू कौन-कौन से हैं? विवेचना कीजिए।
3. भारतीय समाज के समक्ष विविधताओं की चुनौतियों का वर्णन कीजिए।
4. भारतीय समाज में विभिन्नता में एकता को स्पष्ट कीजिए।

उत्तरमाला

1. (अ)	2. (अ)	3. (स)	4. (ब)	5. (द)
6. (स)	7. (ब)	8. (स)	9. (ब)	10. (स)
11. (अ)	12. (द)	13. (स)	14. (अ)	15. (स)
16. (ब)	17. (अ)	18. (द)		

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 2

जनसांख्यिकीय संरचना एवं भारतीय समाज, ग्रामीण-नगरीय संलग्नता और विभाजन

अध्ययन बिन्दु–

- जन सांख्यिकी के सन्दर्भ में प्रचलित सिद्धान्त
- जनांकिकी से सम्बन्धित अवधारणाएँ
- भारत की जनसंख्या संरचना
- ग्रामीण नगरीय विभाजन
- ग्रामीण नगरीय संलग्नता

प्रस्तुत अध्याय में भारतीय समाज की जनांकिकीय संरचना का विश्लेषण करते हुए ग्राम नगर विभाजन तथा दोनों में संलग्नता की विवेचना की गई है।

इस अध्याय के माध्यम से विद्यार्थी समझ पाएँगे कि

- जनांकिकी क्या है?
- भारतीय समाज की जनसांख्यिकीय संरचना किस प्रकार की है?
- जनांकिकी से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाओं का आशय क्या है?
- ग्रामीण-नगरीय संलग्नता किस प्रकार है?
- भारतीय समाज में ग्राम-नगर विभाजन का स्वरूप क्या है?

इस अध्याय के माध्यम से हम भारतीय समाज के जनांकिकीय स्वरूप को समझते हुए गाँवों तथा शहरों के मध्य के आपसी आदान-प्रदान तथा अन्तरों को स्पष्ट करने में सक्षम होंगे।

"आज समाज-विज्ञानों में जनसंख्या का अध्ययन करना इसलिए महत्वपूर्ण होता जा रहा है कि जनसंख्या का सम्बन्ध केवल इसके घनत्व, जन्म-दर, मृत्यु-दर अथवा आयु और लिंग के अनुपात से ही नहीं है वरन् इसका सामाजिक व्यवस्था से भी घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। हम जनसंख्या को जिन विशेषताओं के आधार पर परिभाषित करते हैं, उनका निर्धारण प्रमुखतः सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक संगठन की प्रकृति के अनुसार होता है।"

–किंग्सले डेविस

किसी देश की जनसंख्या का अध्ययन इसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था, संरचना तथा प्रक्रिया को समझने, प्राकृतिक दशाओं को जानने एवं भूत, वर्तमान तथा भावी तस्वीर स्पष्ट करने के लिए अपरिहार्य है। देश में परिवर्तन की दशा एवं दिशा का अनुमान जनांकिकीय संरचना के माध्यम से आसानी से लगाया जा सकता है। जनसांख्यिकीय आँकड़े, राज्य की नीतियों, विशेष कर आर्थिक विकास और सामान्य जन कल्याण सम्बन्धी नीतियाँ बनाने और क्रियान्वित करने के लिए महत्वपूर्ण होते हैं।

जनसंख्या का आकार, प्रकृति, वृद्धि दर तथा जैविकीय एवं क्षेत्रीय विशेषताओं के आधार पर भारत में काफी विविधताएँ दृष्टिगत होती हैं। भारतीय समाज को जानने-समझने के लिए इसकी जनांकिकीय विशेषताओं तथा अभी तक इसमें होने वाले बदलाव को जानना परमावश्यक है। भारत में सर्वप्रथम औपनिवेशिक (ब्रिटिश पराधीनता) काल में 1872 में जनगणना हुई थी। तब से लेकर अब तक कुल 8 जनगणना गुलामी के काल में तथा 7 जनगणना आजाद भारत में (आधुनिक 2011) हो चुकी है।

स्वतंत्र भारत में जनगणना अधिनियम 1948 के आधार पर जनगणना की जाती है। भारत की जनगणना को शांतिकाल में किए जाने वाला विश्व का सबसे बड़ा और जटिल प्रशासनिक कार्य मना जाता है।

जनसांख्यिकी के सन्दर्भ में प्रचलित सिद्धान्त

माल्थस का गुणोत्तर वृद्धि का सिद्धांत– ब्रिटिश इतिहासवेत्ता तथा राजनीतिक अर्थशास्त्री थॉमस रोबर्ट माल्थस (1766-1834) ने अपनी पुस्तक 'एन ऐस्से ऑन दी प्रिंसिपल ऑफ पापुलेशन' (1798) में जनसंख्या वृद्धि के गुणोत्तर सिद्धान्त को स्पष्ट किया। उनके अनुसार जनसंख्या में वृद्धि ज्यामितीय अथवा गुणोत्तर रूप से (2, 4, 8, 16, 32, 64....) होती है जबकि कृषि उत्पादन में वृद्धि गणितीय अथवा समांतर रूप में (2, 4, 6, 8,10, 12...) होती है। इस प्रकार जनसंख्या में तीव्र वृद्धि तथा खाद्यान्नों में तुलनात्मक रूप से धीमी वृद्धि गरीबी का मूल कारण है। समृद्धि बढ़ाने के लिए माल्थस ने कृत्रिम उपाय (बड़ी उम्र में विवाह, ब्रह्मचर्य, सीमित संख्या में बच्चे पैदा करना, युद्ध) तथा प्राकृतिक निरोध (महामारी, बीमारी, घातक रोग, प्लेग, विनाशकारी अकाल) बताये हैं। माल्थस के अनुसार यदि कृत्रिम निरोधों के उपरान्त जनसंख्या नियंत्रित नहीं होती है, तब प्रकृति स्वयं नियंत्रण का कोई न कोई कारगर उपाय अवश्य करती है।

उदारवादी तथा मार्क्सवादी विद्वानों ने माल्थस के जनसंख्या वृद्धि

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सम्बन्धी विचारों का खण्डन किया तथा गरीबी एवं भुखमरी जैसी समस्याओं के लिए संसाधनों के असमान वितरण को प्रमुख कारण बताया।

जनसांख्यिकीय संक्रमण का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास से जुड़ी हुई है। इसमें जनसंख्या वृद्धि की तीन चरण बताए गए हैं

प्रथम, समाज में जनसंख्या वृद्धि कम होती है इसका कारण है समाज अल्पविकसित और तकनीकी दृष्टि से पिछड़ा होता है। ऐसे में जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों ही ऊँची होती है। इसलिए दोनों के बीच शुद्ध अन्तर न्यून होता है। जैसा कि चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर ब्रिटिश शासन के प्रारम्भिक वर्षों तक भारतीय उप महाद्वीप की जनसंख्या लगभग 12 करोड़ पर स्थिर बनी रही। द्वितीय, जब समाज पिछड़ी से उन्नत अवस्था की तरफ विकास करता है तब मृत्यु दर तकनीकी एवं चिकित्सीय सुविधाओं की उपलब्धता के कारण नीची आ जाती है जबकि जन्म दर ऊँची बनी रहती है। जैसा भारत में 1961 से वर्तमान तक है। तृतीय, इस स्थिति में ऐसा विकसित समाज है (अमेरिका, रूस, ब्रिटेन आदि) जिनमें जन्म दर और मृत्यु दर दोनों काफी कम हो जाती है और इनके बीच का अन्तर अत्यन्त न्यून रह जाता है।

दूसरा चरण 'जनसंख्या विस्फोट' का होता है जिससे भारतीय उप महाद्वीप गुजर रहा है।

जनांकिकी से सम्बन्धित सामान्य अवधारणाएँ

साक्षरता– सात वर्ष और उससे अधिक आयु का व्यक्ति किसी भाषा को समझ सकता हो और उसे लिख तथा पढ़ सकता हो उसे साक्षर माना जाता है।

$$\text{साक्षरता दर} = \frac{\text{साक्षरों की संख्या}}{7 + \text{आयु वाली जनसंख्या}} \times 100$$

स्त्री पुरुष अनुपात (लिंगानुपात)– जनसंख्या में प्रति 1000 पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या स्त्री-पुरुष अनुपात (लिंगानुपात) कहलाती है।

$$\text{स्त्री पुरुष अनुपात} = \frac{\text{स्त्रियों की संख्या}}{\text{पुरुषों की संख्या}} \times 1000$$

जन्म दर– जनसंख्या में प्रति 1000 पर जीवित उत्पन्न हुए बच्चों की संख्या होती है।

$$\text{जन्म दर} = \frac{\text{जीवित जन्मे बच्चों की संख्या}}{\text{कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

मृत्यु दर– उपर्युक्तानुसार ही अर्थात्

$$\text{मृत्यु दर} = \frac{\text{कुल मृत्यु}}{\text{कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

शिशु मृत्यु दर– यह उन बच्चों की मृत्यु की संख्या दर्शाती है जो जीवित पैदा हुए 1000 बच्चों में से एक वर्ष की आयु प्राप्त होने से पहले ही मौत के मुंह में चले जाते हैं।

मातृ-मृत्यु दर– उन स्त्रियों की संख्या की सूचक है जो जीवित प्रसूति के 1000 मामलों में अपने बच्चे को जन्म देते समय मृत्यु को प्राप्त हो जाती है।

शिशु एवं मातृ-मृत्यु दर का ऊँचा होना पिछड़ेपन एवं गरीबी का सूचक होता है। जब समाज विकास की ओर अग्रसर होता है तब ये दोनों दर घटने लग जाती हैं इसका कारण है चिकित्सकीय सुविधाओं, शिक्षा, जागरूकता तथा पोषण स्तर में वृद्धि होने लग जाती है।

आयु प्रत्याशा– एक औसत व्यक्ति अनुमानत: कितने वर्षों तक जीवित रहेगा। इसकी गणना एक निश्चित अवधि के दौरान एक आयु विशेष में मृत्यु दर सम्बन्धी आँकड़ों के आधार पर की जाती है।

पराश्रितता (निर्भरता) अनुपात– 15 वर्ष से कम तथा 64 वर्ष से अधिक आयु वर्ग के लोगों की संख्या को कार्यशील जनसंख्या अर्थात् 15 से 64 वर्ष के बीच के लोगों की संख्या से भाग देने से प्राप्त संख्या।

बढ़ता पराश्रितता अनुपात चिंता का विषय होता है कारण कि कार्यशील जनसंख्या पर आश्रित लोगों का दबाव बढ़ जाता है। जबकि घटता पराश्रितता अनुपात आर्थिक संवृद्धि और समृद्धि का प्रतीक माना जा सकता है, कारण आश्रित लोगों की तुलना में काम करने वाले अधिक होते हैं। लेकिन ये अल्पकालीन स्थिति होती है इसका कारण है आज के युवा कल के वृद्ध होंगे।

जनघनत्व– प्रति वर्गकिलोमीटर में रहने वाली जनसंख्या, जनसंख्या घनत्व कहलाती है। कारण कि देश का क्षेत्रफल तो निश्चित रहता है अत: बढ़ता जनघनत्व देश/राज्यों के संसाधनों पर अतिरिक्त भारत होता है।

भारत की जनसंख्या संरचना

जनसंख्या की दृष्टि से भारत का चीन के पश्चात् विश्व में दूसरा स्थान है तथा भौगोलिक क्षेत्र के हिसाब से सातवां। संयुक्त राष्ट्र के ताजा अनुमान (2015) के अनुसार भारत 2022 में विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश बन जायेगा। पूर्व में यह अनुमान 2030 तक का था।

भारत में पहली जनगणना 1872 में हुई थी। इसके पश्चात् 1881 के उपरान्त प्रति दस वर्ष में देश की जनगणना होती रही है।

भारतीय समाज की प्रवृत्ति एवं प्रकृति को जानने के लिए हमें जनसंख्या वृद्धि दर, जन्म दर, मृत्यु दर जीवन प्रत्याशा, लिंग अनुपात, जन घनत्व, साक्षरता, ग्रामीण नगरीय जनसंख्या आदि को जानना आवश्यक है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

I. भारत की जनसंख्या का आकार और वृद्धि

भारत की जनगणना 2011 के अनुसार भारत की जनसंख्या 121 करोड़ है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले भारत की जनसंख्या वृद्धि दर बहुत ऊँची नहीं रही, परन्तु आजादी प्राप्त करने के पश्चात् में बड़ी तेजी से जनसंख्या बढ़ी है। आजादी से पहले 1911 से 1921 के दशक में तो जनसंख्या में कमी हुई थी। इसका कारण 1918-19 के दौरान इंफ्लुएंजा महामारी का प्रकोप रहा जिसके कारण तत्कालीन समय की 5 प्रतिशत जनसंख्या अर्थात 1.25 करोड़ की मौत हो गई। आजादी के बाद 1961-71 के दशक में सर्वाधिक वृद्धि दर 24.8(दशकीय) फीसदी अंकित की गई। (देखिए सारणी-1)

सारणी-1

वर्ष	भारत की कुल जनसंख्या (लाखों में)	जनसंख्या औसत वार्षिक (गुणात्मक/वृद्धि दर ज्यामितीय) वृद्धि दर (प्रतिशत में)	दर दशकीय (प्रतिशत में)
1901	238	-	-
1911	252	0.56	5.8
1921	251	-0.03	-0.03
1931	279	1.04	11.0
1941	319	1.33	14.2
1951	361	1.25	13.3
1961	439	1.96	21.5
1971	548	2.22	24.8
1981	683	2.20	24.7
1991	846	2.14	23.9
2001	1028	1.93	21.3
2011	1210	1.64	17.64

स्रोत–भारत की जनगणना के विभिन्न अंक

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि आजादी के बाद भारत में जनसंख्या तेज रफ्तार से बढ़ी है। लगभग सवा अरब की जनसंख्या उपलब्ध संसाधनों को प्रभावित कर रही है। जनसंख्या की यह वृद्धि रोजगार, महंगाई, शिक्षा, चिकित्सा, आवास, प्रशासन, स्वच्छता, यातायात, संसाधनों का वितरण आदि पर प्रभाव डालती है।

जनगणना 2011 के अनुसार राजस्थान की जनसंख्या 6.86 करोड़ है जिसमें दशकीय वृद्धि 21.31 फीसदी है। भारत की कुल जनसंख्या का 5.66 प्रतिशत लोग राजस्थान में निवास करते हैं। भारत में सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य उत्तर प्रदेश है जिसकी जनसंख्या 19.98 करोड़ है जो भारत की जनसंख्या का 16.50 प्रतिशत है। बिहार में देश की 8.60 फीसदी (10.41 करोड़), पश्चिम बंगाल में 7.54 प्रतिशत (9.13 करोड़), महाराष्ट्र में 9.28 प्रतिशत (11.2 करोड़) निवास करती है इस प्रकार इन पांच राज्यों में देश की कुल जनसंख्या का लगभग आधा भाग (47.58 प्रतिशत) निवास करता है।

II. भारत में जन्म दर एवं मृत्यु दर

जन्म-मृत्यु, स्वास्थ्य तथा औसत आयु से सम्बन्धी आँकड़ों को जन्म-मरण आंकड़े (Vital statistics) कहते हैं। भारत के सम्बन्ध में ये समंक अधिक विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते। कारण कि यहाँ पर जन्म एवं मृत्यु का अनिवार्यत: पज ीयन नहीं करवाया जाता है।

जन्म दर–भारत में ऊँची जन्म दर का इतिहास रहा है अभी भी विकसित देशों की तुलना में भारत में जन्म दर ऊँची है। विभिन्न दशकों में भारत में अनुमानित जन्म दर इस प्रकार थी।

सारणी-2

भारत में जन्म दर

दशक	जन्म दर (प्रति हजार)
1921-30	46.4
1931-40	45.2
1941-50	39.9
1951-60	41.7
1961-70	41.1
1971-80	36.0
1981-90	29.3
1991-90	26.1
2001-2010	21.8

स्रोत–सेम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम

भारत में 1980-81 में जन्म दर (36.0) चीन को छोड़कर विश्व के सभी देशों में सर्वाधिक थी। वर्तमान में यह दर 21.8है। इसमें भी ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में विषमता व्याप्त है। गाँवों में शहर की तुलना में जन्म दर ज्यादा है यह विषमता प्रान्तीय स्तर पर भी व्याप्त है।

मृत्यु दर– भारत में आजादी से पहले उच्च मृत्यु दर बनी हुई थी। 1930-31 में मृत्यु दर 36.3 प्रति हजार रही थी। वर्तमान में यह 2011 में 7.1 प्रति हजार है फिर भी विकसित देशों की तुलना में काफी है। भारत में अभी स्वास्थ्य का स्तर, जीवन स्तर, पौष्टिक आहार, चिकित्सा सुविधाएँ सभी की पहुँच में नहीं है। ग्रामीण क्षेत्र में स्थितियाँ ज्यादा खराब है। विशेषकर चिकित्सा सुविधाओं को लेकर। मृत्यु दर में भी ग्रामीण-शहरी तथा प्रान्तीय विषमता काफी मात्रा में विद्यमान है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सारणी-3

भारत में मृत्यु दर

दशक	मृत्यु दर (प्रति हजार)
1921-30	36.3
1931-40	31.2
1941-50	27.4
1951-60	22.8
1961-70	18.9
1971-80	14.8
1981-90	10.8
1991-90	8.7
2001-2010	7.1

किसी भी देश की जनसंख्या में वृद्धि और उसकी संरचना को प्रभावित करने में वहाँ की सामाजिक दशाओं, मृत्यु-दर, भ्रूण- हत्या, जन्म दर, बाँझपन, वैयक्तिक स्वतंत्रता, स्वास्थ्य की दशाएं, उत्पादन, विकास की गति, महत्वाकांक्षाएँ, शिक्षा का स्तर, तकनीक की अवस्था, चिकित्सा सुविधाएँ आदि का महत्पूर्ण योगदान रहता है। भारत में ऊँची जन्म दर के अनेक कारण हैं-गर्म जलवायु, बाल विवाह, विवाह की अनिवार्यता, भाग्यवादिता, ग्रामीण क्षेत्रों में भी चिकित्सा सुविधाओं की पहुँच, संयुक्त परिवार, पुत्र की कामना, दूरदराज के क्षेत्र में मनोरंजन के अन्य साधनों का अभाव, महिला शिक्षा का स्तर निम्न, जातीय एवं धार्मिक कारक, परम्परागत मान्यताएँ आदि।

पिछले दशकों (सारणी-2 एवं 3) में जनसंख्या वृद्धि धीरे-धीरे कम होती दृष्टिगत हो रही है। राजस्थान में अभी भी जन्म दर (26.2) तथा मृत्यु दर (6.7) के बीच का अन्तर राष्ट्रीय औसत से अधिक बना हुआ है।

III. भारतीय जनसंख्या की आयु संरचना तथा जीवन प्रत्याशा

भारत युवाओं का देश है तथा वर्तमान तक जीवन प्रत्याशा (औसत आयु) भी अधिकांश देशों की तुलना में कम है। सारणी-4 से स्पष्ट है कि 1971 में 15 वर्ष से कम आयु वर्ग का हिस्सा भारत में 42 प्रतिशत था जो 2011 में घटकर 29 प्रतिशत पर आ गया है। तथा 15 से 60 वर्ष आयु समूह का हिस्सा 53 प्रतिशत से बढ़कर 63 प्रतिशत तक पहुँच गया है। जबकि 60 वर्ष से अधिक आयु समूह का भाग जो 5 प्रतिशत या अब धीरे-धीरे बढ़ने की ओर अग्रसर है तथा 2011 में 8 प्रतिशत हो गया है। अगले डेढ़ दशक में भारत की जनसंख्या की आयु संरचना में बड़ा बदलाव आने की संभावना है तथा यह परिवर्तन अधिकांशतः आयु समूह के दोनों छोरों पर होगा। सारणी 4 से स्पष्ट है कि 2026 तक 0-14 वर्ष आयु समूह की सहभागिता 23 प्रतिशत तथा 60 से ऊपर आयु समूह की सहभागिता 12 प्रतिशत हो जायेगी।

सारणी-4

भारत की जनसंख्या की आयु संरचना, 1961-2026

वर्ष	आयु वर्ग			योग
	0-14 वर्ष	15-59 वर्ष	60 वर्ष से अधिक	
1961	41	53	6	100
1971	42	53	5	100
1981	40	54	6	100
1991	38	56	7	100*
2001	34	59	7	100
2011	29	63	8	100
2026	23	64	12	100*

स्रोत- भारत की जनगणना-जनसंख्या प्रक्षेपण भारत एवं राज्यों के लिए (2026तक)

* योग में 100 निकटतम अंशों को पूर्णांकों में बदलने के कारण नहीं हो पया है।

सारणी-5

भारत में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा (2001-2026)

वर्ष	जीवन प्रत्याशा (वर्ष में)
2001-05	66.1
2006-10	{8.1
2011-15	69.6
2016-20	71.1
2021-25	72.3

सारणी-4 एवं सारणी 5 का तुलनात्मक अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि भारत में भी आने वाले दशकों में 60 वर्ष से अधिक आयु समूह में विस्तार होने वाला है अर्थात् कार्यशील जनसंख्या पर बुजुर्गों का भार बढ़ने वाला है।

जीवन प्रत्याशा का बढ़ना अर्थात् औसत आयु का बढ़ना देश में चिकित्सा सुविधाओं, पोषण स्तर, शिक्षा एवं स्वास्थ्य के सन्दर्भ में जागरुकता, स्वच्छता व जीवन स्तर में सुधार की ओर सकारात्मक संकेत है।

IV भारत में प्रजनन दर

किसी भी देश की जनसंख्या के ढांचे के निर्धारण में जन्म, मृत्यु, जीवन प्रत्याशा के साथ-साथ प्रजनन दर भी महत्वपूर्ण होती है। प्रजनन दर समाज की प्रथाओं, परम्पराओं, महिलाओं में शिक्षा, शिशु मत्यु दर, जीवन प्रत्याशा, महिलाओं की निर्णय (प्रजनन सम्बन्धी) में सहभागिता, स्वास्थ्य सुविधाओं की स्थिति आदि के बारे में संकेत होती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सारणी-6
भारत में प्रजनन दर

वर्ष	कुल प्रजनन दर (प्रति महिला)
1971	5.2
1981	4.5
1991	3.6
2001	3.2
2011	2.4

स्रोत–भारत की जनगणना के आँकड़े

सारणी 6 से स्पष्ट है कि भारतीय महिला की अपने पूर्ण जीवन काल में बच्चों की औसत संख्या जो 1971 में 5.2 थी वह 2011 तक 2.4 आ गई है। यह अभी भी विकसित राष्ट्रों से ऊपर है।

V. भारत में जन घनत्व–

एक वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में जितने लोग निवास करते हैं, वह जनसंख्या घनत्व कहलाता है। भारत का जनसंख्या घनत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। जन घनत्व सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक प्रक्रियाओं, जीवन स्तर, प्रशासनिक एवं राजनैतिक स्थितियों, सामाजिक संगठन आदि को प्रभावित करता है। भारत में विश्व की 18 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, जबकि विश्व की 2.4 प्रतिशत भूमि ही भारत के पास है।

सारणी-7 का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि जहाँ 1951 में (आजादी के तुरन्त पश्चात् की प्रथम जनगणना के समय) भारत में प्रति वर्ग किलोमीटर 114 लोग निवास करते थे, वहीं 2011 में 3.35 गुना अधिक अर्थात् 382 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में निवास करते हैं। इसमें व्यापक क्षेत्रीय विभिन्नताएँ निहित हैं। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार बिहार (1102) सर्वाधिक जनघनत्व वाला राज्य है, इसके पश्चात् पश्चिम बंगाल (1029) है। राजस्थान में जनघनत्व 201 प्रति वर्ग किमी. है। सबसे कम जन घनत्व अरुणाचल प्रदेश (17) का है। वहीं राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में 11297 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर में निवास करते हैं।

सारणी-7
भारत में जन घनत्व

वर्ष	जन घनत्व (व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर)
1951	114
1961	139
1971	173
1981	216
1991	267
2001	325
2011	382

स्रोत–भारत की जनगणना 2011 (प्रोविजनल आंकड़े)

VII. भारत में साक्षरता

ज्ञान आधारित समाज एवं अर्थव्यवस्था में व्यक्ति का शिक्षित होना आवश्यक होता है। शिक्षित होने की प्राथमिक एवं अपरिहार्य शर्त साक्षर होना है। शिक्षित व्यक्ति के लिए आजीविका के कई विकल्प विद्यमान हो जाते हैं। इसके साथ ही वह जीवन की श्रेष्ठ दशाओं यथा–उत्तम स्वास्थ्य, स्वच्छता, कम जनसंख्या, पोषण स्तर, चिकित्सकीय परामर्श, उत्तम जीवन स्तर, खान–पान, रहन–सहन, यातायात, सुशासन, जनसंचार आदि के प्रति जागरूक हो जाता है।

आजादी के पश्चात् भारत में साक्षरता की दर तेज गति से बढ़ी है। फिर भी आज भी भारत में बढ़ती जनसंख्या के कारण बड़ी संख्या में निरक्षर लोग मौजूद हैं। सारणी-8का अवलोकन करने पर स्पष्ट होता है कि महिलाओं में साक्षरता की दर पुरुषों में साक्षरता की दर से लगभग 17 प्रतिशत कम है। यद्यपि स्त्रियों में साक्षरता दर में वृद्धि पुरुषों की तुलना में अधिक है। इसका कारण स्त्रियों में साक्षरता का बहुत निचले स्तर से आगे बढ़ना है। इसके अतिरिक्त साक्षरता के सन्दर्भ में क्षेत्रीय एवं विभिन्न सामाजिक समूहों में काफी अन्तर देखने को मिलता है। 2011 की जनगणना के अनुसार सात राज्य उत्तर प्रदेश (69.72), जम्मू एवं कश्मीर (68.74), आन्ध्र प्रदेश (67.66), झारखण्ड (67.63), राजस्थान (67.06), अरुणाचल प्रदेश (66.95), बिहार (63.82), भारतीय औसत (74.04) से नीचे है। इसके अतिरिक्त अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों में भी साक्षरता दर निम्न है। इन समुदायों में स्त्रियों की साक्षरता दर और भी ज्यादा निम्न है। एक तरफ केरल जैसा उच्च साक्षरता दर वाला राज्य है तो दूसरी तरफ बिहार जैसा कम साक्षरता वाला राज्य है।

साक्षरता दर में व्याप्त असमानताएँ पीढ़ियों में असमानताएँ उत्पन्न करती हैं। निरक्षर माता–पिता के लिए अपनी सन्तानों को अच्छी शिक्षा दिलवाना प्राय: सम्भव नहीं होता है। इसलिए ये असमानताएँ आगे भी निरन्तर बनी रहती है।

सारणी-8
भारत में साक्षरता दर

वर्ष	व्यक्ति	पुरुष	स्त्रियाँ	स्त्री–पुरुष अन्तर
1951	18.3	27.2	8.9	18.3
1961	28.3	40.4	15.4	25.1
1971	34.5	46.0	22.0	24.0
1981	43.6	56.4	29.8	26.6
1991	52.2	64.1	39.3	24.8
2001	65.4	75.9	54.2	21.7
2011	74.04	82.14	64.46	16.68

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(7 वर्ष और उससे अधिक आयु वाली जनसंख्या का प्रतिशत)

स्रोत–भारत की जनगणना

VIII. भारत में स्त्री–पुरुष अनुपात (लिंगानुपात)

स्त्री–पुरुष अनुपात किसी देश की जनसंख्या में लैंगिक संतुलन अथवा असंतुलन का महत्वपूर्ण संकेतक होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से स्त्री–पुरुष अनुपात स्त्रियों के पक्ष में रहा है यानी प्रति 1000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या आमतौर पर 1000 से कुछ ऊपर ही रहती आयी है। लेकिन भारत में स्त्री–पुरुष अनुपात विगत एक शताब्दी से भी अधिक समय से गिरता जा रहा है। सारणी–9 से स्पष्ट है कि 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ 1901 में भारत में प्रति 1000 पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या 972 थी जो 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ 2001 में घटकर 933 हो गई। 2011 की जनगणनानुसार यह अनुपात 7 अंक बढ़कर 940 हो गया है।

लिंगानुपात के संदर्भ में अधिक चिंतनीय एवं भयावह तस्वीर प्रस्तुतक िह ैब ालि लंगानुपातन े।1 961स े(0–6)अ ायुस मूहक ा लिंगानुपात का लेखा–जोखा रखना प्रारम्भ किया गया जो उस समय समग्र लिंगानुपात से काफी ऊपर 976था। यह परम्परा गिरावट के साथ किन्तु 1991 (945) तक जारी रही। भारत की जनगणना के इतिहास में पहली बार 2001 में बाल लिंगानुपात (927), समग्र लिंगानुपात (933) से नीचे आ गया। 2011 की जनगणना के आंकड़े और भी अधिक भयावह तस्वीर भविष्य के संदर्भ में प्रस्तुत कर रहे हैं। 2011 में बाल लिंगानुपात घटकर 914 जो कि अब तक न्यूनतम है तथा समग्र लिंगानुपात 940 से काफी नीचे चला गया है।

किसीस माजक ाs त्री–पुरुषअ नुपातउ सस माजक ीप रिवार, विवाह तथा नातेदारी जैसी संस्थाओं का स्वरूप एवं उनमें सम्बन्धों की प्रकृति निर्धारित करता है। एक विवाह, बहु पत्नी विवाह, बहुपति विवाह जैसी प्रथाओं के साथ ही सामाजिक समस्याओं अपहरण, व्यभिचार एवं वेश्यावृत्ति के पीछे भी लिंगानुपात का असंतुलन उत्तरदायी होता है।

सारणी–9

भारत में समग्र तथा बाल (0–6वर्ष) लिंगानुपात

वर्ष	स्त्री–पुरुष अनुपात (समग्र)	पिछले दशक की तुलना में अन्तर	बाल स्त्री–पुरुष अनुपात (0–6वर्ष)	पिछले दशक की तुलना में अन्तर
1901	972	-	-	-
1911	964	-8	-	-
1921	955	-9	-	-
1931	950	-5	-	-
1941	945	-5	-	-
1951	946	+1	-	-
1961	941	-5	976	-
1971	930	-11	964	-12
1981	934	+4	962	-2
1991	927	-7	945	-17
2001	933	+6	927	-18
2011	940	+7	914	-13

स्रोत–भारत की जनगणना

सारणी–10

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में समग्र तथा बाल लिंगानुपात

वर्ष	समग्र		बाल (0–6वर्ष)	
	ग्रामीण क्षेत्र	शहरी क्षेत्र	ग्रामीण क्षेत्र	शहरी क्षेत्र
2001	946	900	934	906
2011	947	926	919	902

स्रोत–भारत की जनगणना

भारत में लिंगानुपात समग्र एवं बाल दोनों ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में शहरी क्षेत्र में सर्वाधिक असन्तुलित है। इसका अभिप्राय यह निकलता है कि शिक्षित लोगों ने चिकित्सकीय सुविधाओं का दुरुपयोग अधिक किया है इसका कारण है विकास के साथ मातृ मृत्यु–दर में कमी आयी है। इसकी वजह पोषण, सामान्य शिक्षा, चिकित्सा एवं संचार की सुविधा में सुधार है। जबकि मृत्यु–दर घटी है तो लिंगानुपात में असंतुलन का एकमात्र कारण शेष रहता है कन्या शिशु को जन्म लेने से रोकना और ऐसा इसलिए किया जा रहा है कि आज भी बालिकाओं के साथ समाज का रवैया भेदभावपूर्ण है। इसी भेदभाव के चलते यदि कन्या शिशु जन्म लेने में सफल भी हो जाती है तो उसे मार दिया जाता है। सोनोग्राफी (अर्थात् अल्ट्रासाउंड, प्रौद्योगिकी पर आधारित एक्सरे जैसी तकनीक) जो मूल रूप से भ्रूण के जननिक या अन्य विकारों का समय रहते पता लगाकर निदान करने के लिए विकसित की गई थी। परन्तु वर्तमान में कठोर सरकारी प्रतिबन्धों के उपरान्त भी भ्रूण के लिंग का पता लगाने तथा चयनात्मक आधार पर बालिका भ्रूण को गर्भ में ही नष्ट कर देने के लिए काम में ली जाती है।

इस बात को इस तथ्य से अधिक बल मिलता है कि निम्नतम बाल लिंगानुपात भारत के समृद्धतम क्षेत्रों जैसे पंजाब, हरियाणा, चण्डीगढ़, दिल्ली, गुजरात तथा महाराष्ट्र जैसे इलाकों जिनमें प्रति व्यक्ति आय तुलनात्मक रूप से काफी अधिक है में देखने को मिल रहा है। इससे स्पष्ट है कि चयनात्मक गर्भपात की प्रवृत्ति बेटी के विवाह में दहेज के देने के डर से गरीबों एवं अज्ञानियों की नहीं है।

लिंग चयन प्रतिषेध अधिनियम–1994 जिसमें 2016 तक विभिन्न कठोर प्रावधान और जोड़े जा चुके हैं फिर भी यह कृत्य बन्द नहीं हो रहा है।

कन्याओं के प्रति पूर्वाग्रह की धारणाएँ एवं उनकी सुरक्षा से जुड़ी चिन्ताओं का दीर्घकालीन समाधान सामाजिक अभिवृत्तियों में बदलाव पर अधिक निर्भर करता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विगत विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय समाज जनांकिकीय संरचना के विविध आयामों के संदर्भ में काफी विविधतापूर्ण है। इस विविधता ने एक समाज के रूप में भारत की अर्थव्यवस्था, प्रशासनिक व्यवस्था तथा राजनीति को भी प्रभावित किया है। एक तरफ अरुणाचल प्रदेश जैसा विरल जनसंख्या वाला क्षेत्र है तो दूसरी तरफ बिहार जैसी घनी आबादी वाला क्षेत्र है। एक ओर जहाँ केरल जैसा उच्च साक्षरता वाला राज्य है वहीं दूसरी तरफ बिहार जैसा न्यून साक्षरता वाला इलाका है। जनसंख्या में वृद्धि की प्रवृत्ति, लिंग आधारित चयनात्मक निषेधक की प्रवृत्ति, जीवन की प्रत्याशा आदि में व्यापक क्षेत्रीय भिन्नताएँ निहित हैं, जिन्होंने केन्द्रीय स्तर पर समान योजनाओं को लागू करने में बाधा ही उत्पन्न की है। साथ ही ये विभिन्नताएँ व्यवहारों में भी अन्तर प्रकट करती है जो भारत की बहुरंगी संस्कृति की अवधारणा को मजबूत करती है।

ग्रामीण-नगरीय विभाजन (विभिन्नताएँ)

गाँव तथा नगर की परिभाषाएँ इकाई-1 में दी जा चुकी है। यहाँ हम इन दोनों समुदायों में विभिन्नताओं की विभिन्न संदर्भों में विवेचना करेंगे। भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया दिनों दिन तेज होती जा रही है। आकार एवं व्यवहार दोनों ही संदर्भों में ग्रामीण भारत बदल रहा है। फिर भी ऐसे काफी प्रतिमान विद्यमान है। जो इन दोनों अवधारणाओं में भारतीय परिप्रेक्ष्य में विभिन्नता प्रकट करने के लिए उपयुक्त है-

I. आकार अथवा जनसंख्या

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत में लगभग 90 प्रतिशत आबादी गाँवों में निवास करती थी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि 10 में से 9 व्यक्ति गाँव में तथा 1 व्यक्ति शहर या कस्बे में रहता था। 110 वर्ष पश्चात् यह अनुपात बदला है तथा अब पहले से तीन गुणा अधिक व्यक्ति शहर या कस्बों में निवास करने लगे हैं।

सारणी-11

भारत में ग्रामीण तथा नगरीय जनसंख्या

वर्ष	जनसंख्या (दस लाख में)		कुल जनसंख्या का प्रतिशत		
	ग्रामीण	नगरीय	ग्रामीण	नगरीय	अन्तर (%)
1901	213	26	89.2	10.8	-
1911	226	26	89.7	10.3	-.5
1921	223	28	88.8	11.2	+.9
1931	246	33	88.0	12.0	+.8
1941	275	44	86.1	13.9	+1.9
1951	299	62	82.7	17.3	+3.4
1961	360	79	82.0	18.0	+.7
1971	439	109	80.1	19.9	+1.9
1981	524	159	76.7	23.3	+3.4
1991	629	218	74.3	25.7	+2.4
2001	743	286	72.2	27.8	+2.1
2011	833	377	68.84	31.16	+3.4

स्रोत- भारत की जनगणना 2011

सारणी-11 के आँकड़े केवल संख्या अथवा आकार परिवर्तन का ही संकेत नहीं हैं अपितु आधुनिक विकास की अवधारणा से भी सम्बन्धित हैं। आधुनिक विकास के प्रारूप ने कृषि आधारित ग्रामीण जीवनशैली का आर्थिक एवं सामाजिक महत्व, उद्योग आधारित नगरीय जीवनशैली के महत्त्व की अपेक्षा कम किया है जो कि एक वैश्विक प्रक्रिया का भाग है।

II. विवाह, परिवार एवं नातेदारी

भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में अधिकांशत: विस्तृत एवं संयुक्त परिवार देखने को मिलते हैं, जिसमें मुखिया का नियंत्रण होता है। तीन या चार पीढ़ियों के सदस्य एक ही स्थान पर निवास करते हैं। इनका भोजन, पूजन एवं सम्पत्ति सामूहिक होती है। ग्रामीण परिवार उत्पादन एवं उपयोग की इकाई होते हैं। जबकि नगरीय सामाजिक संरचना में परिवार अधिकांशत एकाकी होते हैं, जिसमें दो पीढ़ियाँ ही निवास करती हैं। पति-पत्नी और उनके अविवाहित बच्चे।

ग्रामीण विवाह दो परिवारों को जोड़ने वाली कड़ी माना जाता है। विवाह उपजाति में ही स्वीकृत होता है। ग्रामीण समूह में विवाह एक अनिवार्य संस्था होती है। प्राय: गाँवों में विवाह की आयु कम होती है। निम्न जातियों में विधवा पुनर्विवाह होते रहे हैं जबकि उच्च जातियों में परम्परागत रूप से नहीं होते हैं। वर्तमान काल में ये परम्परा बदलती दिखाई देती है। गाँव में तलाक को घृणित दृष्टि से देखा जाता है। परम्परागत रूप से तलाक की स्वीकृति नहीं है। जबकि नगरीय समुदाय में विवाह को संस्कार के स्थान पर समझौता मानने की प्रवृत्ति बढ़ी है। तलाक स्वीकृत है। विवाह की आयु भी गाँव की तुलना में अधिक होती है। जाति /उपजाति से बाहर भी अपवादस्वरूप विवाह दिखाई पड़ते हैं। महानगरों में अविवाहित जोड़ों का एक साथ रहना (लिव इन) विवाह को एक अनिवार्य संस्था के रूप में चुनौती प्रदान कर सकती है। विवाहेत्तर सम्बन्ध, पूर्वविवाह सम्बन्ध भी शहरी समाज में देखने-सुनने को मिलते हैं। विधवा पुनर्विवाह को कानूनन स्वीकृति है।

ग्रामीण समुदाय में सम्बद्धता नातेदारी सम्बन्धों के कारण होती है। आस-पास के गाँव जन्म (रक्त सम्बन्धी) या विवाह सम्बन्धी नातेदारी सम्बन्धों से जुड़े होते हैं। इससे उनके मध्य सामूहिकता का भाव रहता है, जिससे सामाजिक नियंत्रण बना रहता है। गाँव में व्यक्ति की पहचान ही परिवार एवं नातेदारी सम्बन्धों के आधार पर होती है। शहरी क्षेत्र में नातेदारी के सम्बन्ध अत्यन्त ढीले होते हैं। वहाँ व्यक्ति की पहचान उसकी व्यक्तिगत योग्यता एवं अर्जित प्रस्थिति (हैसियत) से होती है। नातेदारी एवं परिवार अमहत्वपूर्ण होते जा रहे हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

III. जाति

ग्रामीण सामाजिक संरचना का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आधार है जाति। जाति का निर्धारण जन्म से होता है। गाँवों में जातीय संस्तरणात्मक व्यवस्था पाई जाती है। प्रत्येक जाति का एक परम्परागत व्यवसाय होता है। जाति का अन्य जातियों के साथ खान-पान तथा व्यवहार के सम्पर्क के नियम होते हैं। एक जाति दूसरी जाति से जजमानी प्रथा से बंधी होती है। जाति की एक जातीय पंचायत होती है जो जाति के सदस्यों को नियंत्रित करतीहै ।ज ातीयि नयमोंक ेन हींम ाननेव ालोंक ोब हिष्कृतअ थवा दण्डित करती है अर्थात् न्यायालय का कार्य भी करती है। शहरों में जातीय बन्धन शिथिल हैं। यहाँ व्यवसाय, खान-पान, आपसी व्यवहार आदि व्यक्ति की व्यक्तिगत योग्यता से निर्धारित होते हैं। जजमानी प्रथा का अस्तित्व नहीं होता है तथा न ही जातीय पंचायत प्रभावी होती है। नगरीय समुदाय में संस्तरण का आधार जाति न होकर उनकी अर्जित हैसियत होता है।

IV. स्थानीय स्वशासन

गाँव में स्थानीय स्वशासन की इकाई ग्राम पंचायत होती है जो ग्रामीण सत्ता एवं शक्ति का केन्द्र होती है। परम्परागत पंचायतें जो अन्तर्वैयक्तिक एवं अन्तर्जातीय सम्बन्धों के निर्धारण में महत्वपूर्ण होती थीं,के स् थानप रव र्तमानम ेंप ंचायतीराजके द्व ारान यीप ंचायतोंक ी व्यवस्था की गई है, जिनमें परिवार, जाति, वंश के स्थान पर निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। इस नवीन व्यवस्था ने परम्परागत शक्ति संरचना को बदलकर, नेतृत्व, गुटबन्दी तथा दलीय प्रणाली के नये आयामों को उत्पन्न किया है। गाँव की सफाई, रोशनी, शिक्षा, संघर्षों का निपटारा, चरागाह भूमि की सुरक्षा, विकास एवं न्यायिक कार्य आदि ग्राम पंचायत के अधिकार क्षेत्र हैं।

नगरीय क्षेत्र में स्थानीय स्वशासन की इकाई नगर पालिका, परिषद या निगम होती है। इसका नेतृत्व परम्परागत न होकर निर्वाचित होता है। जहाँ गाँवों में पंचायती राज के अन्तर्गत ग्राम पंचायतें दलीय व्यवस्था से दूर होतीहै व हींन गरीयस मुदायम ेंस् थानीयस् वशासनक ीइ काईद लीय व्यवस्था के अधीन ही होती है।

V. आर्थिक संस्थाएँ

ग्रामीण भारत में परम्परागत तौर पर अधिकांश लोग कृषि, पशुपालन से जुड़े रहे हैं। एक जाति, दूसरी जाति की जजमानी व्यवस्था के तहत सेवा करती रही है। वह सेवा के बदले पुन: सेवा प्राप्त कर सकती है, वस्तुओं में अथवा नकद भुगतान प्राप्त कर सकती है। गाँव में प्रत्येक जाति का अपना व्यवसाय रहा है, जिससे वे गाँव की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे हैं। जातियों का नामकरण भी व्यवसाय के आधार पर ही रहा हैज ैसे-लुहार,कु म्हार,स ुनार,त ेली,क ाश्तकार,र ंगरेज,ध ोबी,न ाई, खाती आदि। वर्तमान में जजमानी व्यवस्था भी धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खो रही है। मुद्रा अर्थव्यवस्था ने तथा कृषि के अलाभकारी होने से ग्रामीण लोग भी परिवहन सेवा, व्यवसाय अथवा शिल्प निर्माण जैसे कृषि से भिन्न कार्यों को अपनाते जा रहे हैं।

नगरीय भारत में व्यवसायों की बहुलता है। अधिकांश जनसंख्या निर्माण तथा सेवा क्षेत्र से जुड़ी हुई है। सेवा के बदले मुद्रा व्यवस्था प्रचलित है। व्यवसाय का आवश्यक रूप से जाति से सम्बन्ध नहीं है। व्यक्ति अपनी योग्यता एवं रुचि के अनुसार व्यवसाय का चयन करते हैं। दवा, कपड़ा, चमड़ा, ऊन, मशीन निर्माण, प्लास्टिक, बारूद, सीमेण्ट, माचिस, बीड़ी, सिगरेट, लोहा, कागज, ईंट, रोजगार प्राप्ति में सहायता आदि अनेक व्यवसाय नगरों में देखने को मिलते हैं।

VI. धर्म

भारतीय गाँव धर्म प्रधान हैं। बारह महीनों, सुबह से शाम, जन्म से मृत्यु तक ग्रामीण जीवन धर्ममय होता है। प्रत्येक गाँव में एक से अधिक मन्दिर, देवरे मिलते हैं। एक ग्रामीण के जीवन के धार्मिक संस्कार एवं उत्सव अभिन्न अंग हैं। गाँव के सभी लोग साथ मिलकर त्योहार एवं उत्सव मनाते हैं। धर्म ने गाँवों के लोगों में सहयोग, सहिष्णुता तथा एकीकरण के भाव उत्पन्न किए हैं। धार्मिक प्रवृत्ति ने ग्रामीण समुदाय को एक सीमा तक भाग्यवादी बना दिया है।

नगरीय समुदाय में ग्रामीण समुदाय की तुलना में धर्म निरपेक्षता के गुण अधिक पाये जाते हैं। औद्योगीकरण, पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण ने नगरीय लोगों को भाग्य के स्थान पर कर्म पर विश्वास करने की ओर अग्रसर किया है। तकनीक के प्रयोग, आधुनिकतम जनसंचार के साधनों की उपलब्धता विशेषकर टी.वी., मोबाइल एवं इण्टरनेट ने लोगों में पश्चिमी मूल्यों की पैठ बढ़ाई है। होली, दीपावली, रक्षाबन्धन के साथ-साथ वेलेन्टाइन डे एवं फ्रेन्डशिप डे भी लोकप्रिय हो रहे हैं।

VII. शैक्षणिक संस्थाएँ

गाँवों में औपचारिक से ज्यादा अनौपचारिक शिक्षण होता है। अनौपचारिक शिक्षण संस्थाओं में जाति, परिवार, बुजुर्ग लोग तथा मित्र समूह (खेल समूह) प्रमुख हैं। जाति अपने सदस्यों को संस्तरणात्मक व्यवहार सिखाती है। परिवार ही व्यापार, खेती एवं दस्तकारी का ज्ञान अपने सदस्यों को करवाता है। लुहार, सुनार, नाई, तेली, ढोली, कृषक, रंगरेज, पुजारी अपने परम्परागत व्यावसायिक ज्ञान को पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनी सन्तानों को हस्तान्तरित करते हैं। अब गाँवों में भी औपचारिक शिक्षा केन्द्र खुल रहे हैं।

नगरीय समाज में प्रशिक्षण एवं शिक्षण का कार्य अधिकांशत: औपचारिकस ंस्थाओंम ेंह ोताह ै।अ ाधुनिकशि क्षाम ेंव्य ावसायिक, तकनीकी, चिकित्सा तथा प्रबन्धन जैसे विषय सम्मिलित हैं, जिन्हें नगर के विद्यार्थी परिवार, जाति, बुजुर्ग समिति एवं खेल समूह से बाहर जाकर सीखता है। नगर में शिक्षा के बड़े केन्द्र महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, तकनीकी प्रशिक्षण संस्थान आदि होते हैं, जिनमें योग्यता के आधार पर एवं रुचि आधारित पाठ्यक्रम चुनने की स्वतन्त्रता विद्यमान होती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

VIII. परिवर्तन, प्रतिमान एवं मूल्य

गाँवों में परम्पराएँ अधिक प्रभावी होती हैं। इनमें बदलाव का विरोध सामान्यत: पाया जाता है। समकालीन समय में सरकार की योजनाओं के फलस्वरूप गाँवों में विकास की गति बढ़ी है, जिसके कारण जमींदारी, जजमानी, जातीय संस्तरण, महिलाओं की प्रस्थिति, शिक्षा, चिकित्सा, कृषि आदि में काफी परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। नगरीय समाज में परिवर्तन की गति अपेक्षाकृत अधिक तेज है। प्रिन्ट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ-साथ सोशल मीडिया भी इस गति को बढ़ा रहा है।

ग्रामीण समुदाय में व्यवहार के प्रतिमान एवं मूल्य आज भी काफी हद तक पारम्परिक हैं। जबकि नगरीय समुदाय में ये सब औपचारिक हैं। नगरीय व्यवहार में तर्क प्रधान होता है। लाभवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए लोग दूसरों से अन्त: क्रिया करते हैं।

IX. समरूपता एवं विभिन्नता

ग्रामीण सामाजिक संरचना 21वीं शताब्दी में भी काफी हद तक समरूप है। निश्चित व्यवसाय, सीमित आवश्यकताएँ एक सा पहनावा, खान-पान, रहन-सहन, भाषा बोली, धर्म एवं जातियाँ, परिवार, विवाह का प्रकार आदि गाँव को एक समरूप इकाई के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

नगरीय सामाजिक संरचना इन्हीं उपर्युक्त आधारों पर व्यापक विभिन्नता लिये हुए है। नगरीय क्षेत्र बहुधार्मिक, बहुव्यावसायिक, महत्वाकांक्षी लोगों के निवास क्षेत्र हैं, जिनमें खान-पान, रहन-सहन, भाषा बोली, पहनावा, परिवार एवं विवाह के संदर्भ में काफी विषमताएँ देखने को मिलती है।

X. सामूहिकता तथा व्यक्तिवादिता

गाँवों में 'परिवार' सबसे छोटी सामाजिक इकाई है सामाजिक संरचना की। व्यक्ति की पहचान ही उसके परिवार एवं नातेदारों के आधार पर होती है। उत्पादन एवं उपभोग भी परिवार के रूप में ही होता है। निर्णय भी सामूहिक आधार पर लिए जाते हैं। परिवार के मुखिया की भूमिका अधिकांश मामलों में महत्वपूर्ण होती है। उसके निर्णय प्राय: व्यक्तिगत हित में ना होकर पारिवारिक सामाजिक हित को ध्यान में रखकर होते हैं जो सामान्यत: सदस्यों के लिए बाध्यताकारी होते हैं।

नगरोंम`" व्यक्ति'स माजक ीम हत्वपूर्णइ काईह ेताह` ाव हाँ व्यक्तिगत हित एवं स्वतंत्रता का मूल्य सर्वोच्च स्थान पर होता है। व्यक्ति स्वयं के हितों की अधिकतम पूर्ति चाहता है तथा इसी दिशा में प्रयासरत रहता है। इस प्रकार नगरीय सामाजिक संरचना में 'व्यक्ति की स्वतन्त्रता' की रक्षा प्रत्येक कीमत पर होनी चाहिए। शिक्षा, चिकित्सा, भोजन, आवास, सुरक्षा सभी में व्यक्तिवादिता की सोच नगरीय समाज में व्याप्त रहती है।

XI. सामान्यीकरण एवं विशेषीकरण (श्रम विभाजन)

गाँवों में परम्परागत रूप से व्यवसायों का विभाजन जातीय आधार पर होता था। जजमानी प्रथा के कमजोर पड़ने से उनमें सामान्यीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है। यद्यपि समकालीन परिवर्तनों ने गाँवों में विशेषज्ञों की सेवाओं की तरफ रुझान बढ़ाया है। परन्तु यह अभी प्रारम्भिक स्तर पर ही है।

नगरीय संरचना में कार्य का बँटवारा देखने को मिलता है। एक व्यक्ति किसी एक ही कार्य का विशेषज्ञ होता है। श्रम विभाजन तथा श्रम विशेषीकरण ने प्रकार्यात्मक अन्तर्निर्भरता को बढ़ाया है। नगरीय क्षेत्र में लोग अपनी विविध आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विभिन्न विशेषज्ञों पर निर्भर रहते हैं।

XII. सम्बन्धों की प्रकृति

ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों में प्राथमिक सम्बन्धों की अधिकता होती है। लोग आपस में प्राथमिक तथा आमने-सामने के सम्बन्धों से जुड़े होते हैं। हम की भावना का भाव लोगों में विद्यमान रहता है। लोगों के व्यवहार में सहजता, सरलता तथा अनौपचारिकता पाई जाती है।

नगरीय क्षेत्रों की जनसंख्या अधिक होने के कारण सभी लोगों में आमने-सामने के सम्बन्धों का होना कठिन होता है। लोगों में औपचारिकता कृत्रिमता का भाव व्यवहार में विद्यमान रहता है तथा द्वैतीयीक सम्बन्धों की प्रधानाता पायी जाती है।

XIII. गतिशीलता

गाँवों में गतिशीलता कम तथा स्थायीत्व अधिक पाया जाता है। गाँव सामाजिक एवं भौगोलिक दोनों ही परिप्रेक्ष्य में भाग-दौड़ से दूर तथा अपेक्षाकृत शांत एवं कम गतिशील हैं। उनके कार्य एवं अपेक्षाएँ लगभग नियत रहते हैं, जिनके लिए वे दैनिक चर्या के हिसाब से संलग्न रहते हैं।

नगर में सामाजिक एवं भौगोलिक गतिशीलता अधिक पाई जाती है। नगरीय लोगों की आर्थिक प्रगति एवं भौतिक संसाधनों को अधिक मात्रा में जुटाने की महत्वाकांक्षा ने उन्हें गतिशील बनाया है।

XIV. सहजता एवं सरलता

वर्तमान समय में भी ग्रामीण सामाजिक संरचना में सहजता एवं सरलता के तत्व विद्यमान हैं। ग्रामीण परिवार, विवाह, जाति, उपजाति, नातेदारी, मित्र समूह आदि में गाँव के सभी निवासी सहभागी रहते हैं कोई विशेषीकरण इनमें दिखाई नहीं पड़ता है। बनावटीपन एवं आडम्बर से ये बचे हुए हैं। जिन गाँवों का नगरों से सम्पर्क बढ़ा है वहाँ अवश्य कृत्रिमता एवं आडम्बर प्रवेश कर गया है।

नगरीय क्षेत्र में जटिलता तथा कृत्रिमता पाई जाती है। यहाँ परिवार, विवाह, जाति, वर्ग, विशेषीकृत समूह, रुचि समूह, स्वार्थ समूह, द्वैतीयक संस्थाएँ आदि जटिल रूप में विद्यमान होती हैं। व्यवहार में दिखावा, लाभवादी दृष्टिकोण, स्वार्थपरकता, इहलौकिक दृष्टिकोण नगरीय सामाजिक संरचना में केन्द्रीय स्थान पर रहते हैं।

XV. सामाजिक समस्याएँ

भारतीय गाँव समस्या विहीन नहीं हैं, परन्तु गाँवों की समस्याओं का समाधान सामान्यत: गाँव के स्तर पर ही निकाल लिया जाता है। कोर्ट-

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कचहरी, पुलिस थाना, सामान्य प्रशासन आदि के हस्तक्षेप की आवश्यकता कम पड़ती है। गाँव की पंचायत, बुजुर्ग लोगों की समिति, गाँव के मसले गाँव में निपटाने में सक्षम रहते हैं, जिसमें सभी पक्षों की सहमति होती है। गाँव की समस्याएँ अति सामान्य प्रकार की होती हैं, उनमें जटिलताएँ नहीं होती हैं।

नगर में महत्वाकांक्षी, अपरिचित, द्वैतीयीक सम्बन्धों तथा दायित्वों से अधिकारों को वरीयता देने वाले लोगों का जमावड़ा होता है। आबादी घनी होती है।

XVI. सुरक्षा

ग्रामीण सामाजिक संरचना में गाँव का प्रत्येक व्यक्ति गाँव के लिए सिपाही होता है। अतः सुरक्षा को विशेष चर्चा का विषय नहीं होता। प्राथमिक सम्बन्ध, घनिष्ठता, सहयोग, भाईचारा आदि की भावनाओं के विद्यमान रहने से गाँव में सामान्यतः सुरक्षा सम्बन्धी प्रश्न नहीं उठते हैं।

नगरों में अपरिचय बोध, आर्थिक प्रतिस्पर्धा, विभिन्नता, व्यक्तिवादिता आदि के कारण सुरक्षा एक गंभीर मुद्दा बना हुआ है। चोरी, हिंसा, चौथवसूली, अतिक्रमण, अपहरण, मिलावट, जमाखोरी आदि नगरों की पहचान बनते जा रहे हैं। सामान्य व्यक्ति की इन सबसे सुरक्षा नगरीय प्रशासन के समक्ष चुनौती बना हुआ है।

XVII. मनोरंजन

सामान्यतः गाँव में मनोरंजन के परम्परागत साधन ही विद्यमान होते हैं। लोकगीत, उत्सव, बच्चों के खेल, बुजुर्गों के किस्से-कहानियाँ, पति-पत्नी के सम्बन्ध, अनौपचारिक सहजीवन आज भी अधिकांश गाँवों में मनोरंजन के माध्यम हैं। तकनीकी क्रान्ति ने अब गाँवों में मोबाइल, टी.वी., रेडियो आदि साधन पहुँचा दिये हैं। फिर भी परम्परागत साधन अभी भी ज्यादा प्रभावी हैं।

नगरीय समाज में मनोरंजन का केन्द्र परिवार से बाहर स्थित होता है। रंगमंच, सिनेमा, उत्सवों की झांकियाँ, संगीत, नृत्य एवं कला केन्द्र आदि नगर के मनोरंजन केन्द्र के रूप में नगर में विद्यमान होते हैं। इसके अलावा सार्वजनिक बाग-बगीचे, जिनमें खेलकूद, झूले आदि होते हैं। व्यापार मेले जो व्यापार की गतिविधियों के साथ-साथ मनोरंजन सुविधाएँ भी प्रदान करते हैं। नगर में लोगों के मनोरंजन साधन के रूप में प्रचलित हैं।

XVIII. सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा

ग्रामीण समुदाय सहयोग पर आधारित है। एक-दूसरे की आवश्यकता की पूर्ति आपसी सहयोग द्वारा की जाती है। गाँवों में मुद्रा के स्थान पर वस्तु विनिमय अधिक प्रभावी है। सेवा के बदले सेवा अथवा वस्तु की परम्परा ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का आधार रही है। इसी कारण जजमानी प्रथा का अस्तित्व रहा है। यद्यपि गाँव बदलाव के दौर से गुजर रहे हैं तथापि आज भी सहयोग ग्रामीण जीवन की प्रमुख विशेषता है।

नगरीय क्षेत्रों में पूँजीवादी प्रवृत्तियों के चलते एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ रहती है। मुद्रा अर्थव्यवस्था के चलते लाभवादी दृष्टिकोण के कारण पूँजीवादी विकास की गलाकाट प्रतिस्पर्धा नगरीय जीवन की विशेषता है।

XIX. यातायात

गाँव में यातायात के परम्परागत साधनों का प्रयोग ज्यादा होता है, जिसमें पशुओं का प्रयोग किया जाता है। नदी, झील एवं तालाब वाले क्षेत्रों में हस्तनिर्मित एवं चलित नाव का उपयोग किया जाता है। शहरों से सम्पर्क वाले गाँवों में अब मोटरगाड़ी, मोटरसाइकिल आदि का प्रयोग होने लगा है। शहरी क्षेत्रों में यातायात के आधुनिकतम क्षेत्रों का प्रयोग होता है। बस, मोटर कार, ट्रक, रेल गाड़ी, वायुयान, मोटरबोट आदि का प्रयोग शहर के भीतर तथा नगर से दूसरे नगर तक पहुँचने के लिए किया जाता है।

XX. पहनावा अथवा फैशन

ग्रामीण पहनावा आसानी से नगरीय पहनावे से अलग पहचाना जा सकता है। ग्रामीण लोगों का पहनावा परम्परागत है उसमें बदलाव बहुत कम देखने को मिलते हैं। यद्यपि शहरों के नजदीक एवं सम्पर्क वाले क्षेत्रों में शहरी लोगों का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है।

नगरीय लोगों की रुचियाँ पहनावे के सन्दर्भ में काफी परिवर्तनशील एवं परिष्कृत होती हैं। वस्त्र, केश-विन्यास एवं कला के क्षेत्र में नगर, गाँवों से भिन्न विशेषताएँ रखते हैं। इन संदर्भों में परिवर्तन की गति भी काफी तेज होती है। युवाओं एवं महिलाओं में फैशन सम्बन्धित आग्रह तथा अभिरुचियाँ, प्रौढ़ तथा पुरुषों की तुलना में अधिक दिखाई देती है।

XXI. तकनीक का इस्तेमाल

ग्रामीण क्षेत्र तकनीक के प्रयोग के मामले में नगरीय क्षेत्रों से पीछे हैं। नगरों में तकनीकी शिक्षा, प्रशिक्षण, उपलब्धता के कारण लोगों में अद्यतन तकनीक की जानकारी पायी जाती है। ग्रामीण क्षेत्र में तकनीक का प्रसार शहरों से ही होता है।

XXII. सांस्कृतिक परिवर्तन

नगर सांस्कृतिक आविष्कार, प्रसार एवं सम्पर्क के केन्द्र हैं। यहाँ सांस्कृतिक बदलाव की प्रक्रिया गाँवों की तरफ जाती है। नगरों में सांस्कृतिक बहुलता के कारण विभिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क एवं परसंस्कृति ग्रहण की प्रक्रिया के कारण संस्कृति में परिवर्तन, परिष्कार एवं बदलाव होते रहते हैं।

ग्रामीण-नगरीय संलग्नता

गाँव तथा नगर के बीच विभाजन के होते हुए भी ये दोनों एक-दूसरे से पूर्णतः पृथक नहीं हैं। इन दोनों में समकालीन समय में आदान-प्रदान तथा अन्तःक्रिया में काफी वृद्धि हुई है। समकालीन समय में न तो गाँव पूर्णतः आत्मनिर्भर इकाई रहे हैं एवं न ही शहर अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करने में सक्षम हैं। कच्चे माल, अनाज, सब्जियाँ, फल, दूध तथा सेवा क्षेत्र से जुड़ी सेवाओं के लिए तथा मानव श्रम हेतु नगर, गाँवों पर आश्रित हैं। वहीं शिक्षा, चिकित्सा, निर्मित माल अथवा वस्तुओं, आजीविका आदि के सम्बन्ध में गाँव, नगरों पर निर्भर हैं। इस प्रकार्यात्मक अन्तर्निर्भरता ने दोनों को एक-दूसरे के निकट लाकर इनमें

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

परस्पर प्रभाव डाला है। इसी कारण ग्रामीणीकरण, ग्राम्यनगरीकरण, नगरीकरण तथा ग्राम-नगरीय नैरन्तर्य आदि अवधारणाओं की उत्पत्ति हुई है।

निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर हम ग्रामीण-नगरीय संलग्नता को स्पष्ट कर सकते हैं-

1. मिश्रित जीवन- ग्रामीण जीवन पर नगरीय प्रभाव तथा नगरीय जीवन पर ग्रामीण प्रभाव स्पष्ट देखे जा सकते हैं, विशेषकर उपनगरीय क्षेत्रों और कच्ची बस्तियों में मिली जुली जीवन शैली दिखाई पड़ती है।

2. तकनीक का प्रसार- नगरीय सम्पर्क के कारण गाँवों में तकनीक का प्रसार हो रहा है। मोबाइल, मोटरसाइकिल कृषि के उपकरण आदि की उपलब्धता में व्यापक वृद्धि हुई है।

3. पारस्परिक अन्तर्निर्भरता- कच्चा माल, अनाज, फल, सब्जियाँ, सेवा कार्य हेतु श्रमिक नगरों को गाँवों से मिलते हैं जबकि अच्छी शिक्षा, आधुनिक चिकित्सा, नल, बिजली, प्रशासन, सड़क, संचार एवं यातायात के आधुनिक साधन, सफाई की व्यवस्था आदि गाँवों को नगरों से मिलती है।

4. जनसम्पर्क एवं जनसंचार के साधन- रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र, सोशल मीडिया जैसे जनसम्पर्क एवं संचार के साधन अब ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के समक्ष नगरीय जीवनशैली और उपभोग के स्वरूपों की तस्वीरें पेश कर रहे हैं, जिससे दूरस्थ गाँवों के लोग भी नगरीय जीवनशैली और सुख-सुविधाओं से सुपरिचित हो जाते हैं। जनसम्पर्क तथा जनसंचार के साधनों ने ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों के मध्य की खाई को पाटना प्रारम्भ कर दिया है। धीरे-धीरे ग्रामीण लोग उपभोक्ता बाजार से ज्यादा मजबूती से जुड़ता दिखाई दे रहा है।

5. गतिशीलता- नगरीय प्रभावों से गाँवों में गतिशीलता बढ़ रही है। ग्रामीण लोग अब परम्परागत व्यवसायों को छोड़कर शहरों में आजीविका हेतु पलायन कर रहे हैं। साथ ही आधुनिक शिक्षा एवं चिकित्सा के प्रति लोगों का रुझानबढ़ा है।

6. जीवनशैली का आकर्षण- नगरीय लोगों को गाँवों की सरलता, सादगी, शांति, सहजता, स्थिरता, भागदौड़ रहित, तनाव रहित जीवन ललचाता है। इसको देखने, अनुभव करने हेतु ग्राम्य पर्यटन को बढ़ावा मिला है। गाँव के लोगों को शहरी गतिशीलता, दिखावा, विलासिता, सुविधाएँ आदि आकर्षित करती हैं। दोनों ही पक्ष एक-दूसरे की विशेषताओं के प्रति आग्रही हैं।

7. परिवार की प्रवृत्ति का प्रभाव- ग्रामीण जाति एवं संयुक्त परिवारके भ ावनात्मकप क्षन`श ाहरीज ावनक ात थाश ाहरीव गए ं व एकाकी परिवार की धारणाओं ने गाँव को प्रभावित किया है।

8. लोकतन्त्र की बाध्यता- प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में मत की शक्ति प्रधान है इसलिए शहरों में रहने वाले नेताओं ने अपना आधार गाँव तक बढ़ाने का प्रयास किया है, जिसके लिए उन्हें गाँवों में भी शहरी सुख-सुविधाओं के पहुंचाने का वादा कर प्रयासरत किया है।

9. जनशक्ति का प्रभाव- लोकतंत्र में दबाव समूह बनाने के लिए धरने, प्रदर्शन, आन्दोलन आदि करने पड़ते हैं। इसके लिए जनशक्ति गाँवों से उपलब्ध होती है।

10. नगरीकरण की प्रक्रिया- नगर के निकट गाँवों तक बड़ा नगरों का तेज गति से विस्तार हुआ है, जिससे निकटस्थ गाँवों का तीव्र नगरी करण हुआ है, लेकिन वे अपनी सांस्कृतिक विरासत में पूर्णत: छूटे नहीं हैं इसलिए नगरों में गाँव दिखाई पड़ते हैं।

11. सांस्कृतिक प्रसार- संस्कारात्मक परिप्रेक्ष्य से भी गाँवों और नगरों के बीच सम्बन्ध विद्यमान हैं, गाँव के लोग कस्बों तथा नगरों में स्थित देवी-देवताओं तथा धार्मिक स्थलों पर जाते रहते हैं। इसके साथ ही आजीविका के लिए भी सुगम अवसर उपलब्ध होने से गाँव से नगरों की तरफ लोग जाते हैं। नगरों के लोग भी जहाँ कहीं गाँवों में धार्मिक स्थल हैं, वहाँ जाते रहते हैं। यातायात की सुगम व्यवस्था ने गाँव एवं नगर की दूरियाँ घटाई हैं।

12. व्यावसायिक निर्भरता- आवागमन तथा जनसंचार के द्रुतगामी साधनों ने ग्रामीण-नगरीय संलग्नता को बढ़ाया है। लोग उच्च शिक्षा प्राप्त करने, नौकरियाँ करने, किसी व्यापार या व्यवसाय में स्वयं को लगाने, खेती के द्वारा उत्पन्न वस्तुओं को बेचने तथा अन्य आवश्यक सेवाएँ तथा वस्तुएँ प्राप्त करने हेतु कस्बों तथा नगरों पर निर्भर रहने लगे हैं। नगरीय लोग भी कारखानों में निर्मित माल के लिए बाजार हेतु गाँवों में सम्पर्क बढ़ाते हैं साथ ही श्रमिकों एवं अन्य सेवाओं हेतु मानव श्रम के लिए वे गाँवों पर निर्भर रहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गाँव एवं नगर एक दूसरे के निकट आ रहे हैं, जिससे दोनों की विशेषताएँ एक-दूसरे के समाज में प्रविष्ट हो रही हैं। परिणामस्वरूप किसी भी नगर में ग्रामीण समाज की अनेक विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। शहरों में जनसंचार के माध्यमों का ध्यान प्रमुख रूप से केन्द्रित रहता है जिससे भारत का सार्वजनिक चेहरा, ग्रामीण की बजाय ज्यादा नगरीय होता जा रहा है। फिर भी देश में राजनीतिक शक्ति प्रदान करने का स्रोत आज भी ग्रामीण क्षेत्र में निहित हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- किसी देश की जनसंख्या का उसकी सामाजिक व्यवस्था से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।
- स्वतंत्र भारत में जनगणना अधिनियम, 1948 के आधार पर जनगणना की जाती है।
- भारत में सर्वप्रथम औपनिवेशिक (ब्रिटिश पराधीनता) काल में 1872 में जनगणना हुई थी। तब से लेकर 2011 तक कुल 8 जनगणना परतन्त्रता के काल में तथा 7 जनगणना स्वतंत्रता के काल में हो चुकी हैं।
- माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि के गुणोत्तर सिद्धान्त को स्पष्ट किया।
- जनसांख्यिकीय संक्रमण सिद्धान्त के अनुसार जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास से जुड़ी हुई है।
- सात वर्ष और उससे अधिक आयु का व्यक्ति किसी भाषा को समझ सकता हो और उसे लिख तथा पढ़ सकता हो, उसे साक्षर माना जाता है।
- जनसंख्या में प्रति 1000 पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या लिंगानुपात कहलाती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- जनसंख्या में प्रति 1000 पर जीवित उत्पन्न हुए बच्चों की संख्या जन्म दर कहलाती है।
- जनसंख्या में प्रति 1000 पर हुई मौतों की संख्या मृत्यु दर कहलाती है।
- शिशु मृत्यु दर उन बच्चों की मृत्यु की संख्या दर्शाती है जो जीवित पैदा हुए 1000 बच्चों में से एक वर्ष की आयु प्राप्त होने से पूर्व ही मौत के मुँह में चले जाते हैं।
- मातृ मृत्यु दर उन स्त्रियों की संख्या की सूचक है जो जीवित प्रसूति के 1000 मामलों में अपने बच्चे को जन्म देते समय मृत्यु को प्राप्त हो जाती है।
- संयुक्त राष्ट्र संघ के 2015 के अनुमान के अनुसार भारत 2022 में विश्व का सर्वाधिक आबादी वाला देश बन जायेगा।
- किसी समाज का लिंगानुपात उस समाज की परिवार, विवाह तथा नातेदारी जैसी संस्थाओं की प्रकृति निर्धारित करता है।
- भारत की जनगणना के इतिहास में प्रथम बार 2001 में बाल लिंगानुपात (927), समग्र लिंगानुपात (933) से नीचे आ गया।
- 2011 की जनगणना के अनुसार भारत के शहरों में 31.16 प्रतिशत आबादी निवास करती है।
- ग्रामीण की तुलना में शहरी भारत में बाल लिंगानुपात अधिक बिगड़ा हुआ है।
- जनसंख्या में वृद्धि की प्रकृति, लिंग आधारित चयनात्मक निषेध की प्रवृत्ति, जीवन की प्रत्याशा आदि में व्यापक क्षेत्रीय भिन्नताएँ निहित हैं।
- गाँवों की तुलना में शहरों में जातीय बन्धन शिथिल हैं।
- गाँवों की तुलना में नगरीय समाज में परिवर्तन की गति अपेक्षाकृत अधिक तेज है। प्रिण्ट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ-साथ सोशल मीडिया इस गति को बढ़ा रहा है।
- नगरीय समाज में श्रम विभाजन तथा श्रम विशेषीकरण पाया जाता है, जिसने प्रकार्यात्मक-अन्तर्निर्भरता को बढ़ाया है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक सम्बन्धों तथा नगरीय समाजों में द्वितीयक सम्बन्धों की बहुलता होती है।
- गाँवों में सहयोग ज्यादा जबकि शहरों में प्रतिस्पर्धा अधिक पाई जाती है।
- वर्तमान स्थितियों में गाँव एवं नगर दोनों एक-दूसरे के निकट आए हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. जनसंख्या के गुणोत्तर का सिद्धान्त निम्न में से किसने दिया है?
   (अ) माल्थस (ब) डार्विन
   (स) लामार्क (द) स्पेन्सर
2. जनसंख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में कौनसा स्थान है?
   (अ) प्रथम (ब) द्वितीय
   (स) तृतीय (द) चतुर्थ
3. संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट 2015 के अनुसार 2022 में भारत का जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में स्थान होगा–
   (अ) तृतीय (ब) द्वितीय
   (स) प्रथम (द) इनमें से कोई नहीं
4. स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में कितनी जनगणनाएँ 2011 तक हो चुकी हैं?
   (अ) पाँच (ब) छः
   (स) चार (द) सात
5. 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर है–
   (अ) 15.64 (ब) 17.64
   (स) 16.64 (द) 14.64
6. 2011 में भारत की कुल जनसंख्या में 15-59 वर्ष की आयु वर्ग के लोगों का अनुपात है–
   (अ) 60% (ब) 63%
   (स) 64% (द) 70%
7. राजस्थान में जन घनत्व (2011) कितना है?
   (अ) 101 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. (ब) 201 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.
   (स) 301 व्यक्ति/किमी.^{2} (द) 401 व्यक्ति/किमी.^{2}
8. भारत में सबसे कम जन घनत्व किस राज्य में है?
   (अ) राजस्थान (ब) बिहार
   (स) पश्चिम बंगाल (द) अरुणाचल प्रदेश
9. भात के पास विश्व की कितनी प्रतिशत भूमि है?
   (अ) 2.4% (ब) 3.4%
   (स) 4.4% (द) 4.6%
10. भारत में विश्व की जनसंख्या का कितना प्रतिशत निवास करता है?
    (अ) 17% (ब) 18%
    (स) 19% (द) 20%
11. भारत की जनगणना 2011 के अनुसार भारत में स्त्री साक्षरता दर कितनी है?
    (अ) 65.16 (ब) 65.26
    (स) 65.36 (द) 65.46
12. 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में लिंगानुपात कितना है?
    (अ) 934 (ब) 927
    (स) 940 (द) 933
13. भारत की जनगणना 2011 के अनुसार ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत कितना है?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(अ) 68.84 (ब) 67.84
(स) 69.84 (द) 72.2

14. ग्राम पंचायत स्थानीय स्वशासन की इकाई है–
(अ) कस्बे की (ब) शहर की
(स) नगर की (द) गाँव की

15. श्रम विभाजन एवं श्रम विशेषीकरण की बहुतायत देखने को मिलती है–
(अ) गाँवों में (ब) नगरों में
(स) दोनों में (द) दोनों में से कोई नहीं

16. द्वितीयक सम्बन्ध निम्न में से कहाँ अधिक पाए जाते हैं?
(अ) नगरों में (ब) गाँवों में
(स) दोनों में (द) दोनों में से कोई नहीं

17. ''समाज का प्रत्येक व्यक्ति सिपाही होता है।'' यह कथन लागू होता है–
(अ) ग्रामीण समाज पर (ब) नगरीय समाज पर
(स) भारतीय समाज पर (द) सभी पर

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. भारतीय उपमहाद्वीप जनसंख्या के किस चरण से गुजर रहा है?
2. शिशु एवं मातृ-मृत्युदर का ऊँचा होना किसका सूचक है?
3. जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में प्रथम स्थान किसका है?
4. 2011 की जनगणनानुसार भारत में जनघनत्व कितना है?
5. आजादी के पश्चात् जनसंख्या में सर्वाधिक वृद्धि दर किस दशक में रही?
6. 2011 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में भारत की जनसंख्या का कितना प्रतिशत लोग निवास करते हैं?
7. 2011 में भारत में मृत्यु दर कितनी रही?
8. शिक्षित होने की प्राथमिक एवं अपरिहार्य शर्त क्या है?
9. 2011 की जनगणना के अनुसार शहरी क्षेत्र में बाल लिंगानुपात कितना है?
10. नातेदारी के सम्बन्धों में सुदृढ़ता किस क्षेत्र में पाई जाती है?
11. जन्म के स्थान पर व्यक्तिगत योग्यता को महत्त्व किस क्षेत्र में मिलता है?
12. जजमानी प्रथा किस क्षेत्र की पहचान है?
13. परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था में वस्तु विनिमय प्रचलित कहाँ रहा है?
14. नगरीय समाज की विशेषता सामूहिकता है अथवा व्यक्ति-वादिता?
15. विभिन्नता पर आधारित समाज कौनसा है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. माल्थस के गुणोत्तर वृद्धि के सिद्धान्त पर टिप्पणी कीजिए।
2. जनसांख्यिकीय संक्रमण का सिद्धान्त क्या है? स्पष्ट कीजिए।
3. भारत में मृत्युदर पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. वर्तमान भारत में साक्षरता की स्थिति स्पष्ट कीजिए।
5. बाल लिंगानुपात क्या है? वर्तमान स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए भावी तस्वीर बताइए।
6. भारतम ेंव र्तमानस मयम ेंग्रामीणत थान गरीयज नसंख्याक ी विवेचना कीजिए।
7. भारत में गाँव तथा नगरीय समाज में विवाह, परिवार एवं नातेदारी के सन्दर्भ में विभिन्नता की व्याख्या कीजिए।
8. नगरीय सामाजिक संरचना में जाति की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
9. ग्रामीण आर्थिक संरचना पर टिप्पणी कीजिए।
10. भारत में धर्म की स्थिति की व्याख्या कीजिए।
11. ग्रामीण तथा नगरीय समाज के सन्दर्भ में परिवर्तन, प्रतिमान तथा मूल्यों को स्पष्ट कीजिए।
12. गाँवों में मनोरंजन के साधनों की विवेचना कीजिए।
13. नगरीय लोगों की फैशन सम्बन्धित अभिरुचियों पर टिप्पणी कीजिए।
14. गाँवों तथा शहरों में पारस्परिक अन्तर्निर्भरता को स्पष्ट कीजिए।
15. भारत में जनसंख्या की आयु-संरचना तथा जीवन-प्रत्याशा पर टिप्पणी कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. जनांकिकी से सम्बन्धित अवधारणाओं को समझाइए।
2. भारत में जनसंख्या की रचना पर निबन्ध लिखिए।
3. ग्रामीण-नगरीय विभाजन को स्पष्ट कीजिए।
4. समकालीन भारत में ग्रामीण-नगरीय संलग्नता की व्याख्या कीजिए।

उत्तरमाला

1. (अ) 2. (ब) 3. (स) 4. (द) 5. (स)
6. (ब) 7. (ब) 8. (द) 9. (अ) 10. (ब)
11. (द) 12. (स) 13. (अ) 14. (द) 15. (ब)
16. (अ) 17. (अ)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 3

सामाजिक असमानता एवं अपवर्जन के प्रतिरूप, जाति पूर्वाग्रह, अनुसूचित जातियाँ, राजस्थान की अनुसूचित जनजातियाँ एवं अन्य पिछड़े वर्ग, महिला समानता का संघर्ष, धार्मिक अल्पसंख्यकों को संरक्षण, नि:शक्तजनों की देखभाल

इस अध्याय में हम मुख्य रूप से समाज के उन वर्गों के बारे में चर्चा करेंगे जो विभिन्न कारणों से समाज की मुख्यधारा से अलग रहे हैं। इस विस्तृत विवेचन के आधार पर हम निम्न बातों को समझ पाएंगे–

- सामाजिक असमानता और अपवर्जन का अर्थ क्या है?
- भारतीय समाज में जाति पूर्वाग्रह की व्याख्या किस प्रकार से की जाती है?
- समाजशास्त्रीय दृष्टि से अनुसूचित जाति और असमानता के विविध पहलू कौनसे हैं?
- राजस्थान की प्रमुख अनुसूचित जनजातियाँ और उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति कैसी है?
- अन्य पिछड़े वर्ग से सम्बन्धित सामाजिक पक्ष कौन–कौनसे हैं?
- महिला समानता के संघर्ष से क्या तात्पर्य है?
- धार्मिक अल्पसंख्यकों के संरक्षण के विविध आयाम क्या हैं?
- नि:शक्तजनों की देखभाल के विभिन्न प्रावधान क्या हैं?

उपर्युक्त बिन्दुओं पर हम क्रमवार चर्चा करेंगे। इसी क्रम में हम सबसे पहले यह समझ लें कि समाज के विभिन्न समूहों, समुदायों एवं वर्गों में भिन्नता क्यों है? भिन्नता का मूल कारण सामाजिक असमानता है। और सामाजिक असमानता के प्रभाव से कुछ समूह अपवर्जित समूहों की श्रेणी में आ जाते हैं। अत: सामाजिक असमानता के अवधारणात्मक पक्ष को जानना उचित होगा।

सामाजिक असमानता

यह एक सापेक्ष अवधारणा है। सामाजिक असमानता को समानता एवं बराबरी के आधार पर समझ सकते हैं। अर्थात् सामाजिक परिप्रेक्ष्य से जब हम दो या दो से अधिक इकाइयों की तुलना करते हैं और देखते हैं कि दोनों की विशेषताएँ अलग–अलग हैं तो इसे हम सामाजिक भिन्नता कहते हैं क्योंकि भिन्नता किसी सामाजिक विशेषता पर आधारित होती है। ऐसी भिन्नता जो दो या दो से अधिक इकाइयों की तुलना करने से ज्ञात होती है, इसी को हम सामाजिक असमानता कहते हैं। जैसे हम दो व्यक्तियों को देख कर उनके व्यवहार में सामाजिक असमानता को समझना चाहें तो हमें उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि के बारे में जानकारी लेनी होगी। यदि उनमें से एक पुरुष है और दूसरा स्त्री है तो समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह लिंग आधारित असमानता है। इसी प्रकार आवास के आधार पर एक शहर का है और दूसरा गाँव का है तो इसे आवास आधारित असमानता कहेंगे। सामाजिक असमानता के ऐसे कई आधार होते हैं, जैसे आयु, वैवाहिक स्थिति, शिक्षा, व्यवसाय, जाति, धार्मिक मान्यताएँ, भाषा, परिवार की प्रकृति, सामाजिक प्रस्थिति, सामाजिक प्रतिष्ठा, संसाधन एवं सांस्कृतिक पहचान ।स पष्टह ै ि कस ामाजिकअ समानताक ाक ोईन क ोईअ ाधार अवश्य होता है। इसी आधार पर एक इकाई को दूसरी इकाई से अलग रूप में जाना जाता है।

हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि जिस किसी भी सामाजिक आधार पर एक इकाई को दूसरी इकाई से भिन्न समझते हैं तो वह इकाई एक व्यक्ति हो सकता है, व्यक्तियों का समूह हो सकता है, परिवार, जाति, वर्ग अथवा सम्पूर्ण समुदाय हो सकता है। इस प्रकार से सामाजिक असमानता का कोई न कोई सामाजिक आधार अनिवार्य रूप से होता है। तथा इसी आधार पर दो या दो से अधिक इकाइयों के बीच तुलना की जाती है।

सामाजिक अपवर्जन

सामाजिक असमानता के सन्दर्भ में एक अन्य अवधारणा सामाजिक अपवर्जन की है। सामाजिक अपवर्जन को हम एक सामाजिक स्थिति या एक प्रक्रिया के रूप में समझ सकते हैं। जब सामाजिक अपवर्जन को एक सामाजिक स्थिति या दशा कहते हैं तो इसका तात्पर्य है कि कोई समूह समाज की मुख्य धारा से अलग है। वह समाज की मुख्यधारा का भाग नहीं है।

लेकिन जब हम सामाजिक अपवर्जन को एक प्रक्रिया कहते हैं तो इसका अर्थ है कि किसी समूह को समाज की मुख्य धारा से अलग करके सीमान्त स्थिति में पहुँचाया गया है। दूसरे शब्दों में एक समूह जब तक समाज की मुख्य धारा में था तब तक वह अपवर्जन की श्रेणी में नहीं था। जैसे ही मुख्य धारा से अलग किया गया, अपवर्जन की श्रेणी में आ गया। उदाहरण के लिए भारतीय समाज में जाति व्यवस्था पर आधारित उच्चता और निम्नता का क्रम। इस व्यवस्था से पूर्व कोई भी समूह अपवर्जित श्रेणी में नहीं था। लेकिन जाति व्यवस्था के कारण अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़ा वर्ग अपवर्जन की श्रेणी में आ गये। इसी प्रकार की स्थिति

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जनजातीय समुदाय की है। अर्थात् कतिपय कारणों से समाज के कुछ वर्ग समाज की मुख्य धारा से अलग होकर अपवर्जित श्रेणी के कहलाने लगे। ऐसे वर्गों की पहचान अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के रूप में हुई। इसी प्रकार के सामाजिक वर्गों को अपवर्जन के प्रतिरूप कहा जाता है। अपवर्जन के ऐसे प्रतिरूपों की विस्तृत विवेचन हम अब करेंगें।

जाति पूर्वाग्रह

भारत में जाति व्यवस्था ने अपने अनूठेपन एवं अद्वितीयपन के कारण देशी एवं विदेशी सभी तरह के समाजशास्त्रियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

जातिश ाब्दक ाेउ त्पत्तिके स म्बन्धम ेंअ नेकल ेखकोंन ेब ड़ी भ्रामक जानकारियाँ उपलब्ध करवाई हैं कि जाति शब्द अंग्रेजी भाषा के 'caste' (कास्ट) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है, कास्ट शब्द की उत्पत्ति पुर्तगाली शब्द 'casta' (कास्टा) से हुई है, जिसका अर्थ प्रजाति, नस्ल या जन्म है। एक तरफ हम यह घोषणा करते हैं कि जाति भारतीय सामाजिक संरचना की विशिष्ट संस्था है तथा यह विशुद्ध भारतीय है जो वर्ण से कालान्तर में उत्पन्न हुई है, दूसरी तरफ हम इसकी उत्पत्ति के शब्द अंग्रेजी एवं पुर्तगाली में खोजते हैं, यह बड़ा विरोधाभास है।

जाति शब्द की उत्पत्ति के लिए अध्याय-1 देखिये।

प्रारम्भ में जाति का सम्बन्ध मूल स्वभाव एवं गुणों से रहा है जैसे मानव का स्वभाव मानवता, पशु का पशुता, जल का शीतलता, अग्नि का उष्णता आदि। गुण उच्च एवं निम्न होते हैं, गुण स्थूल एवं सूक्ष्म होते हैं। स्वाभाविकताम ेंग ुणोंक ाेउ च्चताए वं ि नम्नताके अ ाधारप रज ातीय संस्तरण उत्पन्न हुआ।

प्राचीनतम ऋग्वेद के पुरुष सुक्त (10वें मण्डल) में कहा गया है, विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तथा पाद से शूद्र की उत्पत्ति हुई। इसका अभिप्राय मानव के स्वभाव एवं गुणों से था। जो मानव अपनी आजीविका तथा समाज की सेवा हेतु मुख का सर्वाधिक उपयोग करे वह ब्राह्मण, जो अपने बाहुबल से समाज रक्षा का कार्य करे वह क्षत्रिय, जो शारीरिक श्रम, व्यापार, कृषि आदि कार्यों से समाज हित करे वह वैश्य तथा जो इन सभी की सेवा करते हुए इनकी भूमिकाओं के निर्वहन में सहायता करे, समाज को स्वच्छ, निरोग रखे, वह शूद्र। इनको वर्ण कहा गया। कालान्तर में इन्हीं में और अधिक पेशेगत विभेदीकरण एवं उसके स्थायित्व के कारण विभिन्न जातियाँ अस्तित्व में आई और शनैः शनैः स्वभाव एवं गुण स्थायी होने के कारण यह योग्यता जन्म में बदल गई।

डी.एन. मजूमदार और टी.एन. मदान 'इन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल एन्थ्रोपॉलोजी' में 'जाति एक बन्द वर्ग है' कहकर परिभाषित करते हैं। केतकर 'हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इण्डिया' में लिखते हैं कि ''जाति एक सामाजिक समूह है जिसकी दो विशेषताएँ हैं-(1) सदस्यता केवल उन व्यक्तियों तक ही सीमित है जो सदस्यों से जन्म लेते हैं और इस प्रकार पैदा हुए व्यक्ति ही इसमें सम्मिलित होते हैं। (2) सदस्य एक कठोर सामाजिक नियम द्वारा समूह के बाहर विवाह करने से रोक दिए जाते हैं।'' इस प्रकार जाति में अन्तर्विवाह का नियम लागू होता है। साथ ही जाति के साथ व्यवसाय/पेशे जुड़े होते हैं।

प्रत्येक जाति के सदस्य दूसरी जातियों के बारे में कुछ पूर्वाग्रह, धारणाएँ रखते हैं। यद्यपि इनका कोई आनुभाविक सत्यापन नहीं होता है ये पूर्वाग्रह ही आगे चलकर जातिवाद में बदल जाते हैं।

नर्मदेश्वर प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'द मिथ ऑफ द कास्ट सिस्टम' में ऐसी अनेक कहावतें बतलाई हैं जिनमें विभिन्न जातियों के सन्दर्भ में पूर्वाग्रह स्पष्ट दृष्टिगत होते हैं। प्रसाद के अनुसार अनेक जातियों के साथ विभिन्न स्थिर रूप जनसाधारण के मानस में उपस्थित हैं। ये स्थिर रूप लोगों की दूसरी जातियों के बारे में परिकल्पना एवं पूर्वाग्रहों के आधार पर निर्मित होते हैं।

भारतीय सामाजिक इतिहास में जातियाँ एक-दूसरी की पूरक एवं पोषक रही हैं, जिनको अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए एक-दूसरी की विरोधी तथा शोषक सिद्ध करने का पुरजोर प्रयास जारी है। लोकतंत्र में संख्या बल के महत्त्वपूर्ण होने के कारण अनेक जातियों को राजनीतिक दलों द्वारा स्थायी वोट बैंक बनाने के लिए 'आरक्षण' का लाभ प्रदान किया गया, परिणामस्वरूप पिछड़ेपन की प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ हो गई, साथ ही आरक्षित एवं अनारक्षितों में एक-दूसरे के प्रति घृणा, विद्वेष तथा संघर्ष की स्थितियाँ सृजित हुई हैं। इन स्थितियों ने जातियों के मध्य एक-दूसरे के प्रति पूर्वाग्रहों को और अधिक बल प्रदान किया है।

अनुसूचित जातियाँ

अध्याय-1 में अनुसूचित जातियों को परिभाषित किया गया है। भारत में जनगणना 2011 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या का 16.6 फीसदी अनुसूचित जातियों की आबादी है। वे लोग जो सफाई करने, मैला ढोने तथा चमड़ा साफ करने के काम में लगे होते हैं, लगभग अनुसूचित जाति में सम्मिलित हैं। अनुसूचित जाति के लगभग आधे लोग मजदूरी करते हैं। इनमें चमड़े का काम, जुलाहे का, मछुआरे का, डोडे चुनने का, रस्सी व टोकरी बनाने का, धोबी का, शिल्पी का, सफाई का, जूता बनाने का, फल व सब्जी बेचने का, बढ़ई तथा लुहार का, ढोल बजाने का, शराब बनाने का आदि कार्य करते हैं। अनुमानतः कुल बन्धुआ मजदूरों में से दो-तिहाई बन्धुआ मजदूर अनुसूचित जाति के ही हैं। ये अधिकतर गरीबी-रेखा से नीचे का जीवन जीते हैं और आर्थिक तथा सामाजिक शोषण के शिकार हैं।

अनुसूचित जातियों के साथ असमानता का व्यवहार परम्परागत तौर पर किया जाता है। वे समाज की मुख्यधारा से कटी हुई रहती हैं। भेदभावपूर्ण स्थितियों के कारण इन्हें जीवन में आगे बढ़ने और अपने व्यक्तित्व के विकास के उचित अवसर नहीं मिले। असमानता तथा अपवर्जन का कारण इन जातियों पर लादी गई निर्योग्यताएँ हैं, जो

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

परम्परागत सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा रही हैं। ये निम्नवत हैं–

1. अनुसूचित जातियों की धार्मिक निर्योग्यताएँ–

(i) पूर्व में अनुसूचित जातियों को अपवित्र माना गया। मन्दिर, नदी–घाटों तथा पवित्र स्थानों पर जाने की रोक लगाई गयी।

(ii) इनको पूजा, आराधना के अधिकार से वंचित किया गया। ब्राह्मणों ने इनको सेवा प्रदान करने से वंचित रखा।

(iii) हिन्दू धर्म के सोलह संस्कारों को पूरा करने के अधिकार से वंचित किया गया।

2. सामाजिक निर्योग्यताएँ–

(i) उच्च जातियों के साथ सम्पर्क रखने एवं उनके साथ खान–पान पर प्रतिबन्ध।

(ii) अन्य जातियों के कुओं से पानी भरने, उनके साथ रहने, अच्छे वस्त्र एवं स्वर्णाभूषण पहनने पर रोक।

(iii) शिक्षा से वंचित रखा गया।

(iv) अनुसूचित जातियों के अन्दर स्वयं में भी ऊँच–नीच का भेद विद्यमान है।

3. आर्थिक निर्योग्यताएँ–

(i) ये लोग सामान्यत: गाँव में भूमिहीन श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं। मल–मूत्र उठाने, सफाई करने, मरे हुए पशुओं को उठाने, चमड़े का कार्य करने के व्यवसाय तक ही इनको सीमित कर दिया गया।

(ii) इन्हें श्रम के बदले न्यून पारितोषिक अथवा प्रतिफल दिया गया है, जिसका निर्धारण ये स्वयं नहीं कर पाते थे।

4. राजनीतिक निर्योग्यताएँ– परम्परागत भारतीय समाज में इन्हें सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा गया तथा सामान्य अपराध के लिए इनके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था थी।

ये सभी निर्योग्यताएँ मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था का भाग थीं। स्वतन्त्रता के पश्चात् इन सभी का निर्मूलन कर दिया गया है। वर्तमान में जो समस्याएँ तथा असमानता/निर्योग्यताएँ हैं, वे आर्थिक हैं। अब धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक तौर पर निर्योग्यताएँ समाप्त प्राय: हो गई हैं। स्वतंत्र भारत के संविधान में कानूनी प्रावधानों तथा सभी के लिए समान अधिकारों के प्रावधान से असमानता एवं अपवर्जन की स्थितियों में काफी सुधार हुआ है। अनुसूचित जातियों में एक नवीन प्रकार की असमानता इनके अन्दर प्रकट हुई है, वह है इनमें वर्गभेद उत्पन्न होना। जिन परिवारों ने उच्च शिक्षा ग्रहण कर उच्च पद प्राप्त कर लिए हैं, सरकारी योजनाओं का लाभ उठाकर अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कर ली है, वे स्वयं को अन्यों की तुलना में उच्च समझने लगे हैं।

यद्यपि 21वीं सदी के भारतीय समाज में अनुसूचित जातियों की प्रस्थिति में काफी सुधार हुआ है, फिर भी पीढ़ियों तक शोषित, प्रताड़ित लोगों के साथ आज भी समय–समय पर कुछ असम्मानजनक व्यवहार की घटनाएँ भारत के विभिन्न भागों से सुनाई देती हैं। इसका एक प्रमुख कारण अनुसूचित जाति में अपने अधिकारों की प्रति चेतना का उत्पन्न होना भी है।

भारत के संविधान की धारा 341 के अन्तर्गत भारत सरकार द्वारा प्रत्येक राज्य एवं संघ राज्य के लिए अनुसूचित जातियों को अधिसूचित किया गया है–

राजस्थान की अनुसूचित जनजातियाँ एवं अन्य पिछड़े वर्ग

इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया के अनुसार, ''एक जनजाति परिवारों का एक संकलन है, जिसका एक नाम है, जो एक बोली बोलती है, एक सामान्य भू–भाग पर अधिकार रखती है या अधिकार बताती है और जो अन्तर्विवाही रही है, चाहे अब अन्तर्विवाही न हो।''

गोविन्द सदाशिव घुर्ये ने 'भारतीय जनजातियों को पिछड़े हिन्दू' माना है। वे वेरियर एल्विन की 'नेशनल पार्क की नीति' (अलग–थलग की नीति) तथा जवाहर लाल नेहरू की 'एकीकरण नीति' (आरक्षण एवं विकास) से भिन्न 'आत्मसात की नीति' पर जोर देते हैं। घुर्ये का मानना है कि इनके पिछड़ेपन का कारण उनका हिन्दू समाज से पूरी तरह एकीकृत न होना रहा है।

भारत की जनगणना 2011 के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में जनजातीय आबादी 8.61 प्रतिशत है। राजस्थान में जनजातीय जनसंख्या 92,38,534 है जो कुल आबादी (6,85,48,437) का 13.48 प्रतिशत है। सन् 1961 की जनगणना के अनुसार राजस्थान में 23,09,447 जनजातीय लोग निवास करते थे जो राजस्थान की कुल जनसंख्या का 11.2 प्रतिशत था।

जनगणना वर्ष	जनजातीय आबादी (राज.) का प्रतिशत	राजस्थान में जनसंख्या
1961	11.2	23,09,447
1971	12.13	31,35,392
1981	12.21	41,83,124
1991	12.44	54,74,881
2001	12.56	70,98,000
2011	13.48	92,38,534

राजस्थान में सर्वाधिक जनजातीय आबादी उदयपुर जिले में है, फिर क्रमश: बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, जयपुर तथा सवाई माधोपुर जिलों में। राजस्थान में सर्वाधिक आबादी मीणा जनजाति की है। उसके बाद क्रमश: भील, गरासिया, सहरिया, भील–मीणा, डामोर व डमारिया की है।

अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1976के अनुसार राजस्थान में अधिसूचित जनजातियों की सूची–

1. भील, भील गरासिया, ढोली भील, डूंगरी भील, डूंगरी गरासिया,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

क्र.सं.	राज्य/संघ राज्य	अधिसूचित की गई अनुसूचित जाति की संख्या
1.	जम्मू और कश्मीर (संविधान, जम्मू एवं कश्मीर अनूसूचित जाति आदेश, 1956)	13
2.	हिमाचल प्रदेश (अनूसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आदेश, संशोधन अधिनियम, 1976)	56
3.	पंजाब (अधिनियम 1976)	37
4.	चण्डीगढ़ (अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति सूची (उपांतरण) आदेश 1956 तथा 1966 के अधिनियम सं. 31 द्वारा परिवर्धित)	36
5.	उत्तरांचल (अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976 तथा 2000 के अधिनियम सं. 29 द्वारा यथा अन्त:स्थापित)	65
6.	दिल्ली [अजा और अजजा सूची (उपान्तरण) आदेश, 1956]	36
7.	हरियाणा [अजा और अजजा आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1976]	37
8.	राजस्थान [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1976]	59–(i) आदिधर्मी (ii) अहेरी (iii) बादी (iv) बागरी, बागदी (v) बैरवा, बेरवा (vi) बाजगर (vii) बलाई (viii) बांसफोर, बांसफोड़ (ix) बाओरी (x) बार्गी, वार्गी, बिर्गी (xi) बावरिया (xii) बेड़िया, बेरिया, (xiii)भ ांड (xiv)भ ंगी,च ूड़ा,म ेहतर,अ ैलगाना,रू खी,म लकाना, हलालखोर, लालबेगी, वाल्मीकि, वाल्मीकि, कोरार, झाड़माली, (xv) बिदकिया (xvi) बोला (xvii) चमार, भांभी, बांभी, भांबी, जटिया, जाटव, जाटवा, मोची, रैदास, रोहिदास, रैगड़, रेगड़, रामदासिया, असादरु, असोदी, चमादिया, चम्भार, चामगर, हरलथ्या, हराली, खलपा, माचीगर, मोचीगर, मदार, मादिग, तेलुगु-मोची, कामटी मोची, रानीगर, रोहित सामगर (xviii) चांडाल (xix) दबगर (xx) धानका, धानुका (xxi) धनकिया (xxii) धोबी (xxiii) ढोली (xxiv) डोमे, डोम (xxv) गांडिया (xxvi) गरांचा, गांचा (xxvii) गारो, गरूरा, गुर्डा, गरडा (xviii) गवारिया (xxix) गोधी (xxx) जीनगर (xxxi) कालबेलिया, सपेरा (xxxii) कामड़, कामड़िया (xxxiii) कंजर, कुंजर (xxxiv) कापड़िया, सांसी (xxxv) खंगार (xxxvi) खटीक (xxxvii) कोली, कोरी (xxxviii) कूचबन्द, कुचबन्द (xxxix) कोरिया (xl) मदारी, बाजीगर (xli) महार, तरल धेगुमेगु (xlii) माह्यावंशी, धेड़, धेड़ा, वंकर, मारु वंकर (xliii) मजहबी (xliv) मांग, मातंग, मिनिमादिग (xlv) मांग गारोडी, भांडा गारुड़ी (xlvi) मेघ, मेघवल, मेघवाल, मेंघवार (xlvii) मेहर (xlviii) नट, नुट (xlix) पासी (l) रावल (li) सालवी (lii) सांसी (liii) सांतिया, सतिया (liv) सरभंगी (lv) सरगरा (lvi) सिंगीवाला (lvii) थोरी, नायक (xlviii) तीरगर, तीरबन्द (lix) तूरी।
9.	उत्तर प्रदेश [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1976]	66
10.	बिहार (अजा और अजजा आदेश संशोधन अधिनियम 1976)	23
11.	सिक्किम (संविधान, सिक्किम अजा आदेश 1978)	04

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

12.	अरुणाचल प्रदेश (अजा और अजजा सूची (उपान्तरण) आदेश 1956तथा 1986के अधिनियम सं. 69 द्वारा यथा अन्त:स्थापित)	16
13.	मणिपुर [अजा और अजजा आदेश (संशोधन) अधिनियम, 1976	07
14.	मिजोरम [अजा और अजजा सूची (उपान्तरण) आदेश, 1956 तथा 1971 के अधिनियम सं. 81 द्वारा यथा अन्त: स्थापित]	16
15.	त्रिपुरा [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976]	32
16.	मेघालय [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976]	16
17.	असम [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976]	16
18.	पश्चिम बंगाल [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976]	59
19.	झारखण्ड (अजा और अजजा आदेश संशोधन अधिनियम, 1976 तथा 2000 के अधिनियम संख्या 30 द्वारा यथा अन्त:स्थापित)	22
20.	उड़ीसा [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976]	93
21.	छत्तीसगढ़ (अजा और अजजा आदेश संशोधन, 1976तथा 2000 के अधिनियम संख्या 28द्वारा यथा अन्त:स्थापित)	43
22.	मध्य प्रदेश [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976]	47
23.	गुजरात [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976]	30
24.	दमन और दीव [संविधान (गोवा, दमन और दीव) अनुसूचित जाति आदेश, 1968]	05
25.	दादर और नागर हवेली [संविधान (दादरा और नागर हवेली) अनुसूचित जाति आदेश, 1962]	04
26.	महाराष्ट्र [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976]	59
27.	आन्ध्र प्रदेश [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976]	59
28.	कर्नाटक [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976]	101
29.	गोवा [संविधान (गोवा, दमन और दीव) अजा और अजजा आदेश, 1968]	05
30.	केरल [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976]	68
31.	तमिलनाडु [अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति आदेश (संशोधन) अधिनियम 1976]	76
32.	पाण्डिचेरी [संविधान (पाण्डिचेरी) अनुसूचित जाति, 1964]	

स्रोत–भारत की जनगणना, 2011

मेवासी भील, रावल भील, तडवी भील, भगालिया, भिलाला, पावरा, वसावा, वसावे

2. भील मीना
3. डामोर, डामरिया
4. धनका, तड़वी, तेतारिया, वलवी
5. गरासिया (राजपूत गरासिया सम्मिलित नहीं)
6. काथोडी, कातकरी, ढोर काथोडी, ढोर कातकरी, सोन काथोडी, सोन कातकरी
7. कोकना, कोकनी, कुकना
8. कोली ढोर, टोकरे कोली, कोलचा, कोलघा
9. मीना
10. नाथकडा, नायका, चोलीवाला नायका, कापड़िया नायका, मोटा नायका, नाना नायका
11. पटेलिया
12. सेहारिआ, सेहरिआ, सहरिया

स्रोत : भारत की जनगणना, 2001

इस प्रकार राजस्थान में 12 जनजातीय समूह निवास करते हैं। जनजातीय जनसंख्या की दृष्टि से राजस्थान का देश में पाँचवाँ स्थान है।

राजस्थान में जनजातियों की भौगोलिक बसावट के सन्दर्भ में निम्न तथ्य अवलोकनीय हैं–

1. जनजाति के लोग रियासत काल में देशी रियासतों के सीमावर्ती क्षेत्रों में रहते थे।
2. जनजातियों के निवास के क्षेत्र से अन्य क्षेत्रों का सम्पर्क यातायात एवं आवागमन के साधनों से परम्परागत रूप से वंचित रहे हैं।
3. वर्तमान उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं का प्रभाव जनजातियों में आंशिक ही दिखाई पड़ता है।
4. जनजातीय क्षेत्र नगरीकरण के प्रभाव से भी अंशत: ही प्रभावित हुए हैं।
5. यद्यपि राज्य एवं केन्द्र सरकार के योजनागत विकास एवं जनजाति विकास की विशिष्ट योजनाओं के चलते ढाँचागत विनिर्माण प्रारम्भ हुआ है, परन्तु अभी तक योजनाएँ बिचौलियों की नकारात्मक भूमिकाओं के चलते अपने वांछित लक्ष्यों से कोसों दूर हैं।
6. विषम भौगोलिक बसावट एवं अन्य लोगों से दूरी बनाए रखने की प्रवृत्ति स्वरूप जनजातीय लोग सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने में असफल रहे हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

7. संभरणात्मक आर्थिक व्यवस्था एवं रूढ़िगत सामाजिक ढाँचे ने जनजाति के लोगों को शिक्षा एवं तकनीक से दूर रखा।

राजस्थान में जनजातियों के निवास स्थान का भौगोलिक वर्गीकरण करने पर जनजातीय निवास के तीन क्षेत्र बनते हैं–

(अ) दक्षिणी राजस्थान–बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, प्रतापगढ़, उदयपुर जिले की सात तहसील तथा सिरोही जिले की आबू रोड तहसील आदि इस क्षेत्र में सम्मिलित हैं। राज्य की जनजातीय आबादी का लगभग 45 फीसदी इस भू–भाग में निवास करता है। दक्षिणी राजस्थान के इस क्षेत्र में प्रमुखत: भील, मीणा, गरासिया तथा डामोर आदि जनजातियाँ निवास करती हैं।

(ब) पश्चिमी राजस्थान–राजस्थान के इस भू–भाग में बारह जिले अवस्थित हैं। गंगानगर, हनुमानगढ़, बीकानेर, जोधपुर, बाड़मेर, जालौर, पाली, जैसलमेर, नागौर, चूरू, सीकर तथा झुंझुनूं जिलों में राज्य कीक् लज नजातीयज नसंख्याक 17 फ ोसदीभ ाग नवासक रताह ै। मुख्यत: इन जिलों में भील एवं मीणा जनजातियाँ निवास करती हैं।

(स) उत्तर-पूर्वी राजस्थान–अलवर, भरतपुर, जयपुर, सवाई माधोपुर, करौली अजमेर, टोंक, भीलवाड़ा, बूँदी, कोटा, बाराँ, दौसा, झालावाड़, धौलपुर, चित्तौड़गढ़ जिले, उदयपुर एवं सिरोही जिले का कुछ क्षेत्र इस भू–भाग में अवस्थित है, जिसमें राज्य की लगभग आधी जनजातीय आबादी निवास करती है। प्रमुखत: भील, मीणा, सहरिया एवं भील–मीणा जनजातियाँ इस क्षेत्र में निवास करती हैं।

अन्य पिछड़े वर्ग

अन्य पिछड़े वर्ग भी अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों के साथ पिछड़े हुए ही माने जाते हैं, जो भारत की कुल जनसंख्या के एक–तिहाई हैं। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के बारे में हम पूर्व में विचार कर चुके हैं। यहाँ हम अन्य पिछड़े वर्गों के बारे में विचार करेंगे, जो समाज के कमजोर वर्ग की श्रेणी में आते हैं।

अन्य पिछड़े वर्ग : अर्थ –पिछड़ा वर्ग शब्द समाज के कमजोर वर्गों विशेषकर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अन्य पिछड़े वर्गों के सन्दर्भ में प्रयोग किया जाता है। भारतीय संविधान के भाग 16 तथा अन्य कुछ प्रावधानों में '**पिछड़े वर्गों**' या अनुसूचित जातियों और जनजातियों के साथ '**अन्य पिछड़े वर्गों**' शब्द का प्रयोग किया गया है। सामान्यत: पिछड़े वर्गों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, छोटे किसानों, सीमान्त किसानों, खेतिहर मजदूरों इत्यादि को शामिल किया जाता है। भारतीय संविधान में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक व राजनीतिक कल्याण के लिए अनेक प्रावधान किये गये हैं। उनके लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है, पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षा व रोजगार के क्षेत्र में केवल विशेष प्रावधान ही किये गये थे। आरक्षण की व्यवस्था नहीं की गई थी, जो अब कर दी गई है।

पिछड़े वर्ग की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं दी गई है, केवल उनका अर्थ स्पष्ट किया गया है। फिर भी विभिन्न आयोगों द्वारा पिछड़ा वर्ग किसे कहा गया है और उनके लिए किन–किन कसौटियों एवं आधारों को अपनाया गया है, उनकी चर्चा करेंगे।

सर्वप्रथम पिछड़े वर्ग शब्द का प्रयोग सन् 1917–18 और इसके बाद सन् 1930–31 में किया गया। सन् 1934 में मद्रास (चेन्नई) में प्रान्तीय स्तर के पिछड़े वर्ग की स्थापना की गई। इनमें 100 से अधिक जातियों को शामिल किया गया, जिनकी कुल जनसंख्या मद्रास में लगभग 50 प्रतिशत थी। सन् 1937 में ट्रावनकोर राज्य ने उन सभी समुदायों के लिए 'पिछड़े समुदाय' शब्द का प्रयोग किया, जो आर्थिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े थे। बिहार में सन् 1947 में पिछड़े वर्ग महासंघ की स्थापना की गई तथा बिहार सरकार ने अन्य पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए मैट्रिक के बाद अध्ययन हेतु कुछ सुविधाओं की घोषणा की।

राजनीतिक कोश में पिछड़े वर्गों को इस प्रकार परिभाषित किया है, ''पिछड़े वर्गों का अभिप्राय समाज के उन वर्गों से है, जो सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक निर्योग्यताओं के कारण समाज के अन्य वर्गों की तुलना में नीचे स्तर पर हों।'' यद्यपि संविधान में इस शब्द समूह का अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है (अनुच्छेद 16(4) तथा 340 में) परन्तु इसकी परिभाषा कहीं नहीं दी गई है। संविधान में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के समान इनके लिए आरक्षण की व्यवस्था भी नहीं की गई है। परन्तु शिक्षा एवं रोजगार क्षेत्र में पिछड़े वर्गों के लिए विशेष व्यवस्था की गई है।

आन्द्रे बिताई कृषक वर्ग को पिछड़े वर्गों का सार मानते है। जाति के सन्दर्भ में पिछड़े वर्ग मध्यम कृषक एवं व्यवसायी जातियाँ हैं, जो शिक्षा व नौकरियों में उच्च जातियों से पीछे रह गये।

सन् 1948 में उत्तर प्रदेश सरकार ने राज्य की 26 जातियों के लिए, जिनकी जनसंख्या राज्य की कुल जनसंख्या की 65 प्रतिशत थी, उन्हें शिक्षा की सभी सुविधाएँ देने की घोषणा की। सन् 1954 में देश के 15 राज्यों में पिछड़े वर्गों के लगभग 88 संगठन स्थापित हो चुके थे, जिनमें कुछ ने अपना नामकरण जाति के आधार पर किया तथा स्थानीय व क्षेत्रीय आधार पर कार्य करने लगे। सन् 1950 में पहली बार अखिल भारतीय स्तर पर 'अखिल भारतीय पिछड़ा वर्ग महासभा' की स्थापना की गई। कई राज्य सरकारों ने भी पिछड़े वर्गों की सूचियाँ बनवाई। कर्नाटक राज्य की सूची में मुसलमान, ईसाई, जैन, सभी गैर–ब्राह्मण जातियों को इस सूची में शामिल किया गया। महाराष्ट्र एवं तमिलनाडु सरकार की सूचियों में गैर–ब्राह्मण उच्च जातियों को इसमें शामिल नहीं किया गया। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए अनुपात के आधार पर महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में आरक्षण की बात की।

आन्द्रे बिताई ने कृषि करने वाली जातियों को पिछड़े वर्गों के अन्तर्गत शामिल किया। कुछ लोगों का मत है कि केवल शूद्र वर्ग के लोगों को ही पिछड़ा वर्ग माना जाना चाहिए। समाज में जब हम यह कहते हैं कि अमुक वर्ग पिछड़ा वर्ग है, इसका मतलब ये है कि समाज में एक वर्ग ऐसा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भी है, जो इनसे उच्च है। इस अर्थ में समाज में उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग की दो परस्पर विरोधी धारणाएँ बन गईं। उच्च वर्ग में जमींदारों एवं उच्च जातियों को लिया जाता है तथा निम्न वर्ग में निम्न जातियों एवं खेतिहर मजदूरों को। भारत में अधिकांश कृषि करने वाली जातियाँ मध्यम श्रेणी की हैं, अत: जाति व व्यवसाय दोनों ही दृष्टिकोणों से पिछड़े वर्ग के लोग मध्यम स्तर के हैं तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं।

पिछड़े वर्ग में उन सभी समूहों को शामिल किया गया है, जो शिक्षा, व्यवसाय, व्यापार, राजकीय सेवाओं में उच्च वर्गों से पीछे हैं। इनके जीवन-यापन का मुख्य आधार कृषि होता है।

भारतीय इतिहास में पिछड़ा वर्ग उसे माना गया है जो सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े हैं। संविधान की धारा 340 में भारत के राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह एक आयोग की नियुक्ति कर देश के विभिन्न भागों में स्थित पिछड़े वर्गों की स्थिति का जायजा ले। धारा 15(4) और 16 के अन्तर्गत राज्य सरकारें भी आयोग का गठन कर रिपोर्टों के आधार पर सरकारी सेवाओं एवं शैक्षिक संस्थाओं में आरक्षण का प्रावधान कर सकती हैं। परन्तु पिछड़ेपन को आँकने का कोई अखिल भारतीय पैमाना नहीं है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पिछड़ा वर्ग समाज का वह भाग है, जो सामाजिक, शैक्षणिक व आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। जो मुख्यत: कृषि द्वारा जीवन-यापन करता है। पिछड़ापन व्यक्ति नहीं अपितु समूह का एक लक्षण है। मण्डल आयोग ने पिछड़ेपन के तीन आधार माने हैं-सामाजिक, शैक्षिणिक व आर्थिक।

मण्डल आयोग (Mandal Commission)- 1977 के लोकसभा चुनावों में जनता पार्टी ने अपने चुनाव घोषणा पत्र में सरकारी व शैक्षणिक सेवाओं में 25 से 33% तक पिछड़े वर्गों के आरक्षण की बात कही थी। जब जनता पार्टी केन्द्र की सत्ता में आई तो उसने **वी.पी. मण्डल** की अध्यक्षता में पिछड़े वर्गों के लिए एक आयोग का गठन किया, जो मण्डल आयोग के नाम से जाना जाता है। इस आयोग को केन्द्र सरकार द्वारा निम्न कार्य दिये गये-

1. सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों की परिभाषा हेतु कसौटियाँ तय करना।
2. पिछड़े वर्गों के उत्थान हेतु क्या कदम उठाये जायें, इस बारे में सुझाव देना।
3. केन्द्र, राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में पिछड़े वर्गों के अपर्याप्त प्रतिनिधित्व के कारण आरक्षण की सुविधाओं की सम्भावनाओं का पता लगाना।
4. संकलित तथ्यों के आधार पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करना एवं सिफारिशें करना।

30 अप्रैल, 1982 को आयोग ने अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को प्रस्तुत की। आयोग ने सरकारी एवं गैरसरकारी सेवाओं में पिछड़े वर्गों के लिए 27 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने का सुझाव दिया। आयोग ने देश की 3,743 जातियों को पिछड़ी जातियाँ घोषित किया, जिनकी जनसंख्या देश की कुल आबादी का 52 प्रतिशत है। आयोग ने 52 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने की बात कही, परन्तु संविधान की धारा 14(4) और 16(4) के अनुसार 50 प्रतिशत से अधिक स्थान आरक्षित नहीं किया जा सकता तथा 22.5 प्रतिशत स्थान पहले से ही अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित है। अत: संविधान के प्रावधानों के कारण पिछड़ी जातियों के लिए सरकारी सेवाओं एवं शिक्षण संस्थाओं में 27 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने की सिफारिश की गई। आयोग ने सभी स्तरों पर पदोन्नति के लिए भी 27 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने की सिफारिश की। आयोग ने यह भी कहा कि आरक्षण के कोटे को तीन वर्ष की अवधि के लिए आगे बढ़ा दिया जाए। उसके बाद ही स्थान न भरने पर आरक्षण कोटे से हटाया जाए। आयोग ने पिछड़े वर्ग की सूचियाँ बनाने एवं आयु-सीमा में भी छूट देने की सिफारिश की। पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों, बैंकों, सरकारी सहायता प्राप्त निजी प्रतिष्ठानों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में भी लागू करने की बात कही और यह भी कहा कि इन सिफारिशों को लागू करने के लिए कानूनी प्रावधान भी किए जाएँ। आयोग ने यह भी कहा कि पिछड़ी जातियों के उत्थान के लिए उसी प्रकार की वित्तीय सहायता दी जाए, जिस प्रकार की अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के उत्थान के लिए दी जाती हैं। आयोग ने पिछड़े जातियों के लिए प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार करने एवं इस वर्ग के छात्रों के लिए आवासीय छात्रावास बनाने की भी सिफारिश की।

30 अप्रैल, 1982 को मण्डल आयोग की रिपोर्ट आने के बाद तत्कालीन केन्द्र सरकार से इसकी सिफारिश को क्रियान्वित करने की माँग की जाती रही। 1989 में नवीं लोकसभा के चुनाव में जनता दल द्वारा अपने घोषणा-पत्र में मण्डल आयोग की रिपोर्ट को लागू करने का वादा किया। चुनाव बाद केन्द्र में विभिन्न दलों को मिलाकर राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का गठन किया गया और प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह को बनाया गया। 7 अगस्त, 1990 को तत्कालीन प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह ने संसद में पिछड़े वर्गों के लिए सामाजिक न्याय की दुहाई देकर 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा की तथा इस आशय की सरकारी अधिसूचना जारी कर दी।

इस घोषणा की प्रतिक्रिया देश के विभिन्न भागों में हुई। स्कूल व कॉलेजों में हड़ताल होने लगी तथा देशभर में एक महीने की अवधि में 160 छात्रों ने इसके विरोध में अपने प्राणों की आहुति दे दी। कई स्थानों पर 'मण्डल विरोधी मंच', 'मण्डल विरोधी संघर्ष वाहिनी' तथा 'समता मंच' के नाम से इसका विरोध करने के लिए संगठन बने। कई स्थानों पर आयोग के समर्थकों एवं विरोधियों में संघर्ष भी हुए। अक्टूबर, 1990 को मण्डल आयोग की सिफारिशों के क्रियान्वयन पर न्यायालय द्वारा स्थगन आदेश जारी किया गया।

16 नवम्बर, 1992 को सर्वोच्च न्यायालय ने पिछड़ी जातियों के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लिए किये गए 27 प्रतिशत आरक्षण को उचित ठहराया। साथ ही यह भी कहा कि इन जातियों के सम्पन्न लोगों (Creamylayer) को आरक्षण का लाभ नहीं दिया जाना चाहिए। केन्द्र सरकार ने 8 सितम्बर, 1993 से तथा उत्तर प्रदेश सरकार ने दिसम्बर, 1993 से 27 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था पिछड़े वर्गों के लिए लागू कर दी। मध्य प्रदेश में पिछड़े वर्गों के लिए 14 प्रतिशत आरक्षण किया गया। राजस्थान सरकार ने 1994 से 21 प्रतिशत आरक्षण व्यवस्था पिछड़े वर्गों हेतु लागू कर दी। 14 अगस्त, 1993 को केन्द्र सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग' गठित किया गया, जो अन्य पिछड़े वर्गों की सूची में नाम शामिल करने या हटाने के सन्दर्भ में शिकायतें सुनने का कार्य करता है। 13 अक्टूबर, 1994 से अन्य पिछड़े वर्ग के लोगों को सरकारी सेवाओं में उनकी पात्रता होने पर ऊपरी आयु सीमा में 3 वर्ष की छूट दी गई। लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार के मानदण्डों में छूट दी गई। इन्हें सिविल सेवा परीक्षा में शामिल होने के सात अवसर प्रदान करने के निर्देश दिये गये। केन्द्र सरकार ने अन्य पिछड़े वर्गों में जाटों को भी शामिल कर लिया है।

विभिन्न राज्यों में पिछड़े वर्गों के लिए दिए गए आरक्षण की स्थिति इस प्रकार है–कर्नाटक में 40 प्रतिशत, आंध्र प्रदेश में 25 प्रतिशत (अब तेलंगाना व आन्ध्र प्रदेश), केरल में 25 प्रतिशत, बिहार में 26 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 14 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 58 पिछड़ी जातियों को 15 प्रतिशत, जम्मू–कश्मीर में 40 प्रतिशत तथा राजस्थान में 52 जातियों को 21 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है। राजस्थान सरकार ने क्रीमीलेयर की आय सीमा ढाई लाख रुपये कर दी है। राज्य सरकार ने सरकारी नौकरियों, स्थानीय निकायों एवं पंचायतीराज संस्थाओं में भी 21 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की है, जिसके अन्तर्गत राज्य की लगभग 42.5 प्रतिशत जनसंख्या सम्मिलित है। मेव, पीटल, सिंधी, भोमिया एवं कुछ राजपूत जातियों को भी पिछड़े वर्गों में शामिल करने के प्रयास चल रहे हैं।

महिला समानता का संघर्ष

हम सभी का यह विश्वास है कि किसी भी समाज के अध्ययन का अपरिहार्य अंग स्त्री और पुरुष समान रूप से है। अत: समाजशास्त्र के अध्ययन का केन्द्र दोनों को समान प्राथमिकता देते हुए होता है। लेकिन परिवार और नातेदारी विशेषकर नातेदारी की संपूर्ण संरचना और प्रक्रिया को हम पुरुष को प्रधान मान कर अध्ययन करते हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययनों में जहाँ लोगों के जीवन का प्राथमिक अवलोकन किया जाता है वहाँ स्त्रियों की प्रतिभागिता एवं गतिविधियों का महत्व शून्य होता है। मैलिनोवस्की, रैडक्लिल ब्राउन जैसे आरंभिक मानवविज्ञानियों ने महिलाओं की भूमिका को कम करके आँका था। इन सभी ने मुख्यत: पुरुषों पर ही अपने अध्ययन को केन्द्रित किया था। उन्होंने सामुदायिक जीवन पर ही नहीं बल्कि समुदाय ने महिलाओं की भूमिका से सम्बन्धित जानकारी भी गाँव के पुरुषों से ही जुटाई। कमोबेश भारतीय संदर्भों में आज भी यह परम्परा देखी जा सकती है। ऐसे कई शोध जो कि स्वयंसेवी संगठनों, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों यहाँ तक कि सरकारी एजेंसियों द्वारा किये गये हैं, बताते हैं कि भारतीय स्त्रियाँ, कामगार नहीं है या हैं तो उनकी संख्या नाममात्र की है। शोध के यह निष्कर्ष संदेहास्पद इसलिए हैं कि हम खुली आँखों से इस सत्य को देखते हैं कि पारिवारिक दायित्वों के अलावा भारतीय स्त्रियाँ विशेषकर ग्रामीण अंचलों से सम्बन्ध रखने वाली कृषि कार्य से लेकर शारीरिक श्रम के अन्यत्र जाकर काम करती हैं। इन निष्कर्षों का कारण स्पष्ट है कि शोध के उत्तरदाता अधिकांशत घर के पुरुष सदस्य ही होते हैं जिनकी दृष्टि में कृषि भूमि में बीजारोपण से लेकर फसल काटने जैसे कार्य या फिर घर में ही सूक्ष्म रूप से किये जाने वाली आर्थिक गतिविधियाँ यथा सिलाई, कढ़ाई, बुनाई आदि जिनसे परिवार की महिलाएँ धन कमाती हैं 'कामकाज' में नहीं आता। सुस्पष्ट तौर पर श्रम उसे माना जाता है जो घरेलू परिधि में ही नहीं अपितु देश की अर्थव्यवस्था में सीधे तौर पर 'अर्थ लाभ' दे। काम करने से हमारा मतलब उस काम से ही होता है जहाँ संगठित क्षेत्र में नकद भुगतान किया जाता है। दरअसल वे सामाजिक प्रक्रियाएँ और नीतियाँ जो समाज के विश्लेषण के लिये अपनाई गई है वे विशुद्ध रूप से स्त्री और पुरुष के मध्य भेद करती है।

महिला समानता के संघर्ष में विस्तारपूर्वक चर्चा करने से पूर्व यह विश्लेषण इसलिए आवश्यक था कि जिस स्त्री को समाज में अपने दोयम दर्जे से मुक्ति पाने के लिये संघर्ष करना पड़ रहा है उसे यह विदित भी नहीं होगा कि सामाजिक संरचना की मूल इकाइयों में उसकी भूमिका समाज वैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन का केन्द्र बिन्दु नहीं बन पाई है। ऐसे में यह कल्पना करना सहज है कि जनसाधारण के मानस में आधी आबादी की भूमिका क्यों महत्वपूर्ण नहीं है।

महिला समानता और सामाजिक अवरोध

एक लम्बे समय तक यह विश्वास किया जाता था कि स्त्री और पुरुष के शारीरिक भेद का उसमें विद्यमान भावनात्मक और बौद्धिक भेदों और उनकी शारीरिक क्षमताओं में पाए जाने वाले भेदों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारी सांस्कृतिक परम्परा में पुरुषों और महिलाओं को कार्य और भूमिकाएँ प्रदान की गई थीं, उन्हें भी उनकी शारीरिक क्षमताओं से घनिष्ठ रूप से जुड़ा माना जाता था।

समाज वैज्ञानिक जार्ज पीटर मुरडॉक पुरुष और स्त्री में विद्यमान जैविक भेदों को समाज में श्रम के लैंगिक विभाजन का आधार मानते हैं। परन्तु समाजशास्त्री एन ओकले ने इसका विरोध किया। उनका तर्क था कि श्रम का विभाजन सर्वव्यापी नहीं है। वह इस तर्क को सिर्फ कोरा मिथक मानती हैं कि महिलाओं में जैविकी की दृष्टि से भारी और कठोर काम करने की क्षमता नहीं होती। प्रशांत महासागरीय द्वीपों में बसी जनजातियों पर मार्गरेट मीड का अध्ययन इस बात की पुष्टि करता है। 1930 के उत्तरार्ध और 1960 के मध्य में, जो अंत:सांस्कृतिक आँकड़े प्राप्त हुए, वह परम्परागत समाज की उस कठोर अवधारणा पर चोट करते हैं कि पुरुष महिलाओं को सौंपे जाने वाले कार्यों को करने में अक्षम हैं तथा स्त्रियाँ पुरुषों के कार्यों को नहीं कर सकतीं। कुछ समाजों में आज भी बुनाई, कताई और खाना बनाना जैसे घरेलू कार्य पुरुषों द्वारा सम्पन्न किए

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जाते हैं वहीं मोतियों के लिए गोताखोरी करना, डोंगी चलाना और घर बनाने जैसे साहसिक और कठोर कार्य स्त्रियों के कार्यक्षेत्र में आते हैं। आदिम समाज की यह व्यवस्था सरल समाजों में नहीं पायी गई और अगर अपवादस्वरूप ऐसा हुआ भी तो स्त्री को वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई जो कि पुरुषों को प्राप्त होती रही है। फ्राइउल का कहना है कि पुरुषों को सौंपे जाने वाले कार्यों को स्त्रियाँ पूरा करती हैं तो उन्हें वही प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती। इसका मुख्य कारण पुरुषों का वर्चस्व है। समाज में पुरुषों का वर्चस्व इसलिए बनता है कि पुरुषों का जीवन अधिक सार्वजनिक होता है और स्त्रियों का जीवन संतानोत्पत्ति और शिशुओं के लालन-पालन के कारण अधिक निजी बन जाता है।

विचारणीय तथ्य यह है कि क्या यह सोच उचित है कि जैविक विविधता या शारीरिक स्पष्ट अन्तरों के कारण लैंगिक असमानता प्रकृति की ही देन है। दरअसल पुरुषों और स्त्रियों के मध्य व्याप्त असमानताएँ प्राकृतिक नहीं बल्कि सामाजिक हैं क्योंकि ऐसा कोई जैविक कारक प्रतिलक्षित नहीं होता जिससे यह स्वीकार किया जाए कि सार्वजनिक शक्ति सम्पन्न पदों पर स्त्रियों की उपस्थिति कम होना प्राकृतिक है। स्त्रियों को पारिवारिक सम्पत्ति का 'छोटा सा ही हिस्सा' या यह कहना उचित होगा कि 'बिल्कुल नहीं' क्यों नहीं मिलता। हैरान करने वाला तथ्य यह है कि इस प्रश्न का कोई भी उत्तर प्रकृति से नहीं मिलता फिर भी यह यथावत अपना स्वरूप कायम किए हुए है। यद्यपि जिन समाजों में अपवादस्वरूप ऐसा होता है, उनकी ओर से इस असमानता के विरोध में एक प्रबलतम तर्क दिया जाता है, जो कि अकाट्य है कि यदि स्त्रियाँ परिवारों की मुखिया बनने और पारिवारिक सम्पत्ति को उत्तराधिकार में पाने के लिए जैविक रूप से अयोग्य थीं तो फिर मातृवंशीय समाज (यथा मेघालय का खासी समाज तथा केरल का नायर समाज जो आज भी मातृवंशीय है) वर्षों से सफलतापूर्वक क्यों चलते रहे। अनेक अफ्रीका समाजों में स्त्रियाँ किसानों तथा व्यापारियों के रूप में अपना काम निपुणता से कैसे करती रही हैं? स्पष्ट है कि पुरुषों और स्त्रियों के मध्य असमानता का कोई जैविक कारण नहीं है।

स्त्री समानता का संघर्ष और कुछ अनसुलझे प्रश्न : एक वैश्विक दृष्टिकोण—सन् 2015 में विश्व में प्रथम रैंकिंग प्राप्त टेनिस खिलाड़ी जोकोविच ने कहा था कि पुरुष खिलाड़ियों के मैचों को दुनिया भर में महिलाओं के मैचों से ज्यादा देखा जाता है, इसलिए पुरुष खिलाड़ियों की कमाई ज्यादा होनी चाहिए। कुछ ऐसा ही वक्तव्य इंडियन विमेन टेनिस टूर्नामेंट के मुख्य अधिकारी रेमंड मूर ने भी दिया था। उन्होंने कहा था कि डब्ल्यूटीए टूर पुरुष खिलाड़ियों की बदौलत ही चल रहा है। ये दोनों ही कथन स्त्री के प्रति मानसिकता को स्पष्ट करते हैं। पुरुषवादी इस सोच से लड़ने और स्वयं को सिद्ध करने का संघर्ष दो शताब्दी पूर्व ही शुरू हो गया था। 1972 में मेरी बोल्स्टन क्राफ्ट की पुस्तक 'ए विन्डिक्शन ऑफ द राइट्स ऑफ विमेन' में पहली बार मेरी ने 'स्वतंत्रता-समानता-भ्रातृत्व' के सिद्धान्त को स्त्री समुदाय पर लागू करने की माँग की। उन्होंने कहा कि कोई भी समतावादी सामाजिक दर्शन तब तक वास्तविक अर्थों में समतावादी नहीं हो सकता जब तक कि वह स्त्रियों को समान अधिकार और अवसर देने की बात नहीं करता। तब से लेकर अब तक एक लम्बी फेहरिस्त है उन लोगों की जिन्होंने स्त्री समानता के प्रश्न को अलग-अलग तरह से उठाया परन्तु सभी की बातों का केन्द्र बिन्दु 'निर्णय लेने की क्षमता' है। यह क्षमता तभी उत्पन्न हो सकती है जब स्त्री को आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र में बराबरी का दर्जा मिले। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि समानता का संघर्ष सिर्फ भारतीय महिलाओं का है। सत्य तो यह है कि विकसित देशों में भी कमोबेश यह स्थिति बनी हुई है। असमान वेतन, पदोन्नति में भेदभाव, घरेलू हिंसा, मातृत्व अवकाश को अनचाहा बोझ मानने की प्रवृत्ति स्त्री समानता के प्रश्न को कठघरे में ला खड़ी करती है। ब्रिटेन के बराबरी और मानवाधिकार आयोग (ईएचओसी) ने डिपार्टमेंट ऑफ बिजनेस, एनीवेशन एंड स्किल्स के साथ मिलकर किये गये एक शोध, जो कि वर्ष 2015 के अन्त में किया गया था, बताया कि ब्रिटेन में काम की जगह (दफ्तर) पर हर पाँचवीं गर्भवती महिला प्रताड़ना की शिकार होती है। जबकि तीन-चौथाई गर्भवती महिलाओं के ऑफिस में काम के दौरान भेदभाव किया जाता है। नौकरी के इंटरव्यू के दौरान असफल रही तीन-चौथाई माताओं ने माना कि उनकी गर्भावस्था का पता चलने से उनकी नौकरी मिलने के अवसर कम हुए। यह शोध स्पष्ट: उस मानसिकता को प्रकट कर रहा है जहाँ स्त्री को कार्य करने की मशीन समझा जाता है। अगर हम यह सोच रहे हैं कि यह स्थिति ब्रिटेन की ही है तो हम गलत हैं। विश्व मानचित्र में सबसे शक्तिशाली देश अमेरिका में भी महिलाएँ सामाजिक असमानता का दंश झेल रही हैं। अर्थशास्त्री सिलिव्या एन हालिट ने अपनी पुस्तक 'क्रिएटिंग ए लाइफ : प्रोफेशनल वुमन एण्ड ए क्वेट फॉर चिल्ड्रन' में अमेरिका में कामकाजी महिलाओं के सामने 'क्रूर दुविधा' की परतें खोली थीं। मिसाल के तौर पर 40 की उम्र के पड़ाव तक पहुँची पेशेवर अमेरिकी महिलाओं में से 42 प्रतिशत संतानहीन थीं, जिसमें अधिकांश ने यह फैसला स्वयं लिया क्योंकि वह जानती थीं कि मातृत्व अवकाश की अवधि और उसके पश्चात् निजी संस्थाओं द्वारा उन्हें येन केन प्रकारेण संस्थाओं से काम छोड़ने के लिए विवश किया जाएगा। गैर लाभकारी संगठन कम्युनिटी बिजनेस के लैंगिक विविधता पैमाने पर किये गये अध्ययन के निष्कर्ष कहते हैं कि एशिया में भी ऐसी स्थिति बन रही है।

स्त्री समानता का संघर्ष और भारतीय दृष्टिकोण—भारत में महिलाओं का समानता का संघर्ष कब से आरम्भ हुआ यह जानने से पूर्व हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि क्या भारत में हमेशा से ही स्त्री को असमानता की स्थिति प्राप्त थी। वैदिककालीन वृत्तांत हमें बताते हैं कि स्त्री-पुरुष गुरुकुल में साथ-साथ शिक्षा अर्जित करते थे। कई विदुषियों ने तो वेदों का विशारद ज्ञान प्राप्त किया। अपना जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता महिलाओं को प्राप्त थी। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में भी स्त्री-पुरुषों की समान भागीदारिता थी। महिलाएँ सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में गमन करती थीं। परन्तु मध्यकाल के आते-आते महिलाओं को दोयम दर्जे पर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

धकेल दिया गया।

आधुनिक भारत में स्त्रियों की स्थिति का प्रश्न उन्नीसवीं सदी के मध्यवर्गीय सामाजिक सुधार आंदोलनों के हिस्से के रूप में उदित हुआ। कई सुधारकों ने स्त्रियों के अधिकारों के लिए संघर्ष करने का अथक प्रयास किया। बंगाल में राजा राममोहन राय ने सती–विरोधी अभियान का नेतृत्व किया, बॉम्बे प्रेसिडेंसी में वहाँ के अग्रणी समाज सुधारक रानाडे ने विधवाओंके प ुनर्विवाहके ि लएअ ांदोलनच लाया,ज् योतिबाफ ु लेन े लैंगिकअ त्याचारोंके ि वरुद्धअ ावाजउ ठाई ।स माजम ेंम हिलाओंके उत्थान के लिए, महिलाओं ने भी अतुलनीय प्रयास किये। 1882 में 'स्त्री पुरुष तुलना' नामक एक महाराष्ट्रीय गृहिणी ताराबाई शिंदे द्वारा लिखी गई पुस्तक में, पुरुष प्रधान समाज द्वारा अपनाए गए दोहरे मापदण्डों का विरोध किया गया था। उल्लेखनीय है कि 1905 में बेगम रोकेया द्वारा 'सुल्तानाज ड्रीम' नामक पुस्तक लिखी गई। 'सुल्तानाज ड्रीम' शीर्षक नामक यह अद्भुत कहानी सम्भवत: भारत में विज्ञान तथा लेखन का प्रारम्भिक नमूना है और विश्वभर में कहीं भी किसी महिला लेखिका द्वारा रचित प्रथम कृति का उदाहरण है। प्रारम्भिक नारी–अधिकारीवादी दृष्टिकोण के साथ–साथ हमारे यहाँ अनेकानेक महिला संगठन भी थे जो बीसवीं सदी के प्रारम्भिक वर्षों में अखिल भारतीय एवं स्थानीय स्तरों पर उभर आए थे। स्वतंत्र भारत में महिलाओं की समानता को केन्द्र में रखकर अनेक कानून बने।

महिलाओं के उत्थान के प्रयास–

1. औपचारिक समानता की संवैधानिक गारंटी–

(अ) भारतीय संविधान **सामाजिक-लिंग समानता** का वादा करता है। संविधान का अनुच्छेद 14 कानून की दृष्टि से सभी को समानता प्रदान करता है, तो अनुच्छेद 15 किसी भी तरह के भेदभाव को वर्जित करता है। हिन्दू कानून महिलाओं को सम्बन्ध–विच्छेद और पुनर्विवाह का अधिकारद ेताह ै ।इ सीप ्रकारउ त्तराधिकारअ धिनियमम हिलाओंक ो अपने पिता की सम्पत्ति में बराबरी का भाग या हिस्सा देता है।

(ब) राज्य द्वारा प्रायोजित समाज कल्याण– भारत सरकार ने 1953 में महिला कल्याण और वंचित समूहों के विकास के लिए केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना की। इस बोर्ड ने अनेक महिला संगठनों के विकास को बढ़ावा दिया, जिससे सामाजिक और राजनैतिक महिला कार्यकर्ताओं का उदय हुआ।

2. महिला कल्याण नीतियाँ– अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं की दशा को लेकर बढ़ती चिन्ता और जागरूकता को दृष्टि में रखकर भारत सरकार ने महिला कल्याण के लिए प्रभावशाली नीतियाँ अपनाईं और विषयक अध्ययनों को प्रोत्साहन दिया। इस दिशा में उसका सबसे बड़ा उल्लेखनीय कदम 1971 में महिलाओं की स्थिति पर समिति का गठन था। 'टुवड्र्स इक्वलिटी' शीर्षक से 1974 में प्रकाशित इस समिति की रिपोर्ट में कहा गया था कि संस्थागत तौर पर सबसे बड़ी अल्पसंख्यक होने के बावजूद राजनीति पर महिलाओं का असर नाममात्र है। गौरतलब है कि महिला समानता की अवधारणा का उद्भव ही इस विचारधारा से होता है कि 'यह महिलाओं को शक्ति, क्षमता तथा काबिलियत देता है ताकि वह अपने जीवन स्तर को सुधारकर अपने जीवन की दिशा को स्वयं निर्धारित कर सके।' अर्थात् यह वह प्रक्रिया है जो महिलाओं को सत्ता की कार्यशैली समझने की न केवल समझ दे अपितु साथ ही साथ सत्ता के स्रोतों पर नियंत्रण कर सकने की क्षमता प्रदान करे। इसलिए समिति ने सुझाव दिया था कि इसका उपाय यही है कि हर राजनैतिक दल महिला उम्मीदवारों का एक कोटा निर्धारित करे और जब तक ऐसा हो, तब तक उपाय के तौर पर समिति ने नगरपरिषदों और पंचायतों में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित करने के लिए संविधान में संशोधन करने की सिफारिश की। सन् 1993 में 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से ऐसा किया भी गया। पंचायतीराज संस्थानों में महिलाओं के लिए3 3प ्रतिशतअ ारक्षणक ाप ्रावधानम हिलास मानतात थार्ा नर्णय प्रक्रिया में उनकी सहभागिता में वृद्धि की दिशा में एक क्रान्तिकारी कदम था। शनै: शनै: महिलाओं के स्थान को विकास की प्रक्रिया के सन्दर्भ में देखाज ानेल गा ।क ल्याणन ीतियोंके ल क्ष्यके रू पम ेंद ेखेज ानेके वनिस्पत महिलाओं को विकास का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग माना जा रहा है। महिलाओं की इस पुनर्व्याख्या को छठी पंचवर्षीय योजना (1980–85) में अभिव्यक्ति मिली। भारत के इतिहास में प्रथम बार इसमें महिला और विकास पर एक अलग अध्याय रखा गया था। महिलाओं को समाज के हाशिए से मुख्यधारा में लाने के लिए उनके विकास की दिशा में छठी पंचवर्षीय योजना ने तीन रणनीतियाँ अनिवार्य बताईं–(1) आर्थिक स्वतंत्रता (2) शैक्षिक विकास और (3) स्वास्थ्य सुरक्षा।

महिला समानता का प्रश्न और वर्तमान स्थिति– "नए जजों का शपथ ग्रहण समारोह था। मैं कोर्ट में ही बैठी थी चीफ जस्टिस के साथ। ताकि उनके अनुभवों का लाभ मिल सके। वे भी रूढ़िवादी थे। उन्हें महिला के साथ बैठना असहज लग रहा था। इसका मतलब सिर्फ खुली अदालत में ही नहीं चेम्बर्स में भी बातचीत या फैसलों के लिए।" देश की पहली हाईकोर्ट महिला चीफ जिस्टस लीला सेठ का यह वक्तव्य यद्यपि 1978 में घटे एक वाकये का है, परन्तु क्या तब से लेकर आज तक यह तस्वीर बदली है? यकीनन इस प्रश्न पर, स्मृति में कौंधती हुई फोर्ब्स पत्रिका की टॉप (प्रभावशाली) सूची में चंद भारतीय महिलाओं के चमकते चेहरे, स्वीकृति में उत्तर देने की ओर इशारा करेंगे परन्तु क्या अंगुलियों पर गिनी जाने वाली महिलाओं की सफलता देश की आधी आबादी की वास्तविक तस्वीर को उभार पाएगी? सत्य तो यह है कि पुरुष प्रधान पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों को उनकी पारम्परिक भूमिकाओं में ही देखा जाता है जो पुरुषों के नियंत्रण में, उनके अधीन रहती है। अगर कोई स्त्री चाहे कि उसे एक स्त्री के रूप में स्वीकार किया जाए तो उसे अतिमहत्त्वाकांक्षी एवं अतिप्रवीण होने के उलाहने दिए जाते हैं।

भारत की आर्थिक नीतियों ने दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–07) में जो तीन महत्त्वपूर्ण रणनीतियाँ सम्मिलित की, वह हैं–महिलाओं के लिए सकारात्मक रूप से आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों के निर्माण

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

का वातावरण तैयार करने के लिए सामाजिक सशक्तीकरण, आर्थिक सशक्तीकरण एवं लैंगिक न्याय प्रदान करना तथा उनके विरुद्ध हर प्रकार के भेदभाव को समाप्त करना ताकि लैंगिक समानता के लक्ष्यों को बढ़ावा दिया जा सके।

आर्थिक सशक्तीकरण को महिला समानता के एक आधार बिन्दु के रूप में देखा जाता रहा है। संरचनात्मक समायोजन के प्रतिक्रियास्वरूप बीते दशकों में महिलाएँ स्वयं अपनी आर्थिक क्रियाओं को बढ़ावा देने का प्रयास कर रही हैं। सामाजिक उत्तरदायित्व, घरेलू रखरखाव तथा आय उत्पादक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है परन्तु इसके चलते उन पर गहरा दबाव भी बढ़ा है। 'असमान वेतन' महिला समानता पर एक बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न है। आर्थिक हिस्सेदारी और महिलाओं के लिए अवसरों के मामले में अभी भी 60 प्रतिशत लैंगिक गैरबराबरी है और अगर इसी गति से लैंगिक गैरबराबरी कम हुई (2015 के वर्तमान आँकड़े वर्ष 2006के आँकड़े से 4 प्रतिशत ही कम है) तो इसे खत्म करने में दुनिया को 81 साल लगेंगे यानि 2095 तक ही कार्यस्थलों में लैंगिक भेद खत्म हो पाएगा।

आश्चर्यजनक तथ्य तो यह है कि आर्थिक दृष्टिकोण से पिछड़े हुए कई देशों की स्थिति, लैंगिक समानता के सन्दर्भ में भारत से कहीं बहुत अच्छी है। जैसे अफ्रीका में खांडा का स्थान लैंगिक समानता में सातवाँ है क्योंकि यहाँ लगभग उतनी ही महिलाएँ नौकरी करती हैं, जितने पुरुष। इसी कारण यह पूरे अफ्रीका में सबसे कम लैंगिक असमानता वाला देश है। एशियाम ेंल ैंगिकस मानताक े द ृष्टिकोणस ेस बसेऊ परन ैवींर ैकिंग फिलीपींस की है। इसका सबसे मुख्य कारण है, पुरुषों और महिलाओं के बीच एक ही काम के लिए समान वेतनमान का होना। लैंगिक समानता के सन्दर्भ में भारत का प्रदर्शन बेहद खराब है। विश्व आर्थिक फोरम में लैंगिक समानता के इस अध्ययन की 2015 की रिपोर्ट बताती है कि 142 देशों की सूची में भारत 114वें स्थान पर है।

राजनैतिक सत्ता, स्त्री समानता का एक और अन्य महत्त्वपूर्ण आधारबिन्दु है। इस सन्दर्भ में भी अगर हम भारतीय महिलाओं की बात करते हैं तो उनके लिए संघर्ष की एक लम्बी यात्रा दिखाई देती है। इंटर पार्लियामेंटरी यूनियन (आई.पी.यू.) की रिपोर्ट बताती है कि भारत की संसद या विधानसभा में महिला जनप्रतिनिधियों की काफी कम उपस्थिति महिलाओंके प ्तिभ ेदभावपूर्णर ाजनीतिकम ानसिकताक ाप ्तीकह ै। आई.पी.यू. की रिपोर्ट 2015 के मुताबिक, इस मोर्चे पर भारत को 105वां स्थान प्राप्त है। इस सूची में पहले दस नम्बर पर खांडा, बोलिविया, अंडोरा, क्यूबा, इक्वेडोर व दक्षिण अफ्रीका जैसे देश हैं, जो स्पष्ट करते हैं कि महिला समानता और राजनैतिक प्रतिनिधित्व के माध्यम से महिलाओं के नेतृत्व को स्वीकार करने के लिए आर्थिक सबलता से कहीं अधिक वृहद् दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

महिला समानता और विश्व की भूमिका– यह सत्य है कि तब तक कोई वास्तविक सामाजिक परिवर्तन सम्भव नहीं है, जब तक प्रत्येक समाज पुरुषों और स्त्रियों के बीच समानता, समान उत्तरदायित्व और पारस्परिक सम्मान की भावना पर आधारित सम्बन्धों के आधार पर नये मूल्यों को अपना नहीं लेता।

विश्व के अधिकांश देशों ने 1979 के महिलाओं के विरुद्ध हर प्रकार के भेदभाव की समाप्ति से सम्बन्धित समझौते को औपचारिक रूप से अपना तो लिया है परन्तु वास्तविकता में, उसके क्रियान्वयन में अपने लक्ष्य से कोसों दूर है।

महिलास ंगठनोंए वंम ैक्सिकोश हर,क ोपेनहेगन,न ैरोबीत था बीजिंग में हुए अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलनों ने अपने विकास एजेंडा में दृढ़ता से लैंगिक समानता के मुद्दों को उठाया। 1946में संयुक्त राष्ट्र ने महिलाओं की स्थिति पर एक आयोग गठित किया। इस आयोग के दो प्रमुख कार्य थे–राजनीतिक, आर्थिक, नागरिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सुझाव प्रस्तुत करना एवं आर्थिक व सामाजिक परिषद् के कार्यों की रिपोर्ट तैयार करना। इसका दूसरा कार्य था महिला अधिकारों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण समस्याओं के बारे में सुझावों का प्रस्ताव तैयार करना।

संयुक्त राष्ट्र ने अपने 2015 के बाद के विकास एजेंडे के पूर्ण कार्यान्वयनक ोस ुनिश्चितक रनेक े लिएद ुनियाभ रम ेंए क० यापक अभियानश ुरू कयाह ै इ सअ भियानक ाउ द्देश्यह ै–दुनियाअ पने विकास लक्ष्यों को तब तक 100 प्रतिशत हासिल नहीं कर सकती है जब तक कि इसके 50 प्रतिशत लोगों–अर्थात् महिलाओं–के साथ "सभी क्षेत्रों में पूर्ण और समान प्रतिभागियों के रूप में व्यवहार नहीं किया जाता है।" संयुक्त राष्ट्र का मानना है कि सतत विकास के लिए लैंगिक समानता और महिला सशक्तीकरण अपरिहार्य है तथा लैंगिक असमानता सभी असमानताओं की जननी है जिसमें देशों के बीच और देशों के भीतर मौजूद असमानताएँ शामिल हैं। संयुक्त राष्ट्र का यह भी विश्वास है, "लैंगिक समानता को तेजी से एक सफल मिशन के रूप में देखा जा रहा है–सतत विकास का समर्पित, व्यापक और परिवर्तनकारी लक्ष्य न केवल लैंगिक समानता को प्राप्त करने के बारे में है बल्कि समस्त महिलाओं और लड़कियों को सशक्त करने के बारे में है, इसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि कोई भी पीछे न छूटे।"

संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्य की पूर्ति किस युग में और किस व्यापकता के साथ होगी, इसका उत्तर तो भविष्य के गर्भ में छुपा हुआ है। परन्तु आज यह स्पष्ट है कि विश्व के अनेक भागों में लैंगिक समानता की दिशा में जो भी प्रगति हुई है, वह उस सीमा से बहुत कम है, जितनी कि अपेक्षित थी।

धार्मिक अल्पसंख्यकों का संरक्षण

भारतीय राष्ट्रवाद समावेशात्मक एवं लोकतंत्रात्मक भावनाओं का संरक्षक है। यह समावेशात्मक इसलिए यह है कि इसमें विविधता और बहुलता को मान्यता दी जाती रही है और लोकतंत्रात्मक इसलिए क्योंकि यह भेदभाव और अपवर्जन के किसी भी रूप को स्वीकार नहीं करता अपितु एक न्यायपूर्ण एवं सामयिक समाज की स्थापना में विश्वास

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

रखता है।

अल्पसंख्यक समूहों की धारणा का समाजशास्त्र में व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है, परन्तु इसकी परिधि मात्र एक संख्यात्मक विशिष्टता तक निश्चित नहीं की गई है, इसकी व्यापकता में असुविधा या हानि के भाव भी सम्मिलित है। अल्पसंख्यक शब्द का समाजशास्त्रीय भाव है। अल्पसंख्यक वर्ग के सदस्यों का एक सामूहिकता के मध्य निर्मित होना, अर्थात् उनमें अपने समूह के प्रति एकात्मकता, एकजुटता और उससे सम्बन्धित होने का प्रबल भाव होता है।

अल्पसंख्यकक ीअ वधारणा–संयुक्त राष्ट्र के एक विशेष प्रतिवेदक फ्रेंसिस्को कॉपोटोर्टी ने एक वैश्विक परिभाषा दी जिसके अनुसार "किसी राष्ट्र-राज्य में रहने वाले समुदाय जो संख्या में कम हों और सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक रूप से कमजोर हों एवं जिनकी प्रजाति, धर्म, भाषा आदि बहुसंख्यकों से अलग होते हुए भी राष्ट्र के निर्माण, विकास, एकता, संस्कृति, परम्परा और राष्ट्रीय भाषा को बनाये रखने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हों, तो ऐसे समुदायों को उस राष्ट्र-राज्य में अल्पसंख्यक माना जाना चाहिए।"

अल्प + संख्यक दो शब्दों से मिलकर 'अल्पसंख्यक' बना है। अल्प का अर्थ कम व संख्यक से आशय संख्या से है। अर्थात् जिसकी संख्या कम हो तो अल्पसंख्यक परन्तु जनसंख्या अनुपात कितना कम हो इसकी कोई परिभाषा नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय नियमों, परम्पराओं, मान्यताओं के अनुसार किसी धार्मिक समूह को अल्पसंख्यक घोषित करते समय निम्न मापदण्ड होने चाहिए–"अल्पसंख्यक धर्म के अनुयायी की जनसंख्या अनुपात कुल जनसंख्या का 8 प्रतिशत से कम होना चाहिए अर्थात् 8 प्रतिशत या उससे अधिक की जनसंख्या अनुपात वाले धार्मिक समूह को अल्पसंख्यक श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।" परन्तु यह मापदण्ड अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार है।

भारतीय संविधान ने 'अल्पसंख्यक' शब्द का विवरण धारा 29 से लेकर 30 तक और 350 ए से लेकर 350 बी तक में उल्लेखित है। इसकी परिभाषा कहीं भी नहीं दी गई है। भारतीय संविधान की धारा 29 में अल्पसंख्यक शब्द को इसके सीमांतर शीर्षक में शामिल तो किया गया, किन्तु इसमें बताया गया कि यह नागरिकों का वह हिस्सा है जिसकी भाषा, लिपि अथवा संस्कृति भिन्न है। यह एक पूरा समुदाय हो सकता है जिसे सामान्य रूप से एक अल्पसंख्यक अथवा एक बहुसंख्यक समुदाय के एक समूह के रूप में देखा जाता है।

भारतीय संविधान की धारा 30 में विशेष तौर पर अल्पसंख्यकों की दो श्रेणियों धार्मिक और भाषायी का उल्लेख किया गया है। शेष दो धाराएं 350 ए और 350 बी केवल भाषायी अल्पसंख्यकों से ही सम्बन्धित है।

भारत सरकार के समाज कल्याण मंत्रालय द्वारा 23 अक्टूबर 1993 को अधिसूचना जारी कर अल्पसंख्यक समुदायों के तौर पर पांच धार्मिक समुदाय यथा मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध तथा पारसी समुदायों को अधिसूचित किया गया था। 27 जनवरी 2014 को केन्द्र सरकार के राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग कानून 1992 की धारा 2 के अनुच्छेद (ग) के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारों का उपयोग करते हुए जैन समुदाय को भी अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में अधिसूचित कर दिया है।

2011 की जनगणना के अनुसार मुस्लिम धार्मिक अल्पसंख्यकों की संख्या 17.22 करोड़ (14.2 प्रतिशत), ईसाइयों की संख्या 2.78 करोड़ (2.3 प्रतिशत), सिख और बौद्ध धार्मिक अल्पसंख्यकों की संख्या 2.08 (1.7 प्रतिशत), 84 लाख (0.7 प्रतिशत) क्रमशः है। जैन धार्मिक अल्पसंख्यकों की कुल जनसंख्या 45 लाख (0.4 प्रतिशत) तथा अन्य 78 लाख (0.7 प्रतिशत) है।

धार्मिक अल्पसंख्यकों का संरक्षण

धार्मिक अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिए संविधान में भिन्न-भिन्न अनुच्छेदों में प्रावधान किए गए हैं। इन प्रावधानों के पीछे उद्देश्य भारतीय लोकतंत्रात्मक भाव का संरक्षण एवं संवर्द्धन है। लोकतंत्र मूल भाव, किसी प्रकार के विभेद का विरोध करता है।

1. अल्पसंख्यकों के लिए उपबंध–भारतीय संविधान के भाग 111 के अनुच्छेद 29 और अनुच्छेद 30 में अल्पसंख्यक वर्गों के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं। संविधान में अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए जो उपबंध किए गए हैं वे निम्नांकित हैं-

(क) धार्मिक स्वतंत्रता–भारतीय संविधान सभी अल्पसंख्यकों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करता है। संविधान में किसी भी धर्म को अग्रसर करने के लिये कोई उपबंध नहीं है।

(ख) भाषा और संस्कृति का अधिकार–राज्य के प्रत्येक नागरिक या उसके किसी भाग के निवासी, नागरिकों के किसी अनुभाग को जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपियाँ, संस्कृति हैं, उसे बनाए रखने का अधिकार है। अनुच्छेद 29 (1) का यह प्रावधान, जनप्रतिनिधित्व कानून 1951 के तहत है।

(ग) इच्छानुसार शिक्षा संस्थानों की स्थापना–अनुच्छेद-30 के अनुसार सभी अल्पसंख्यकों को अपनी इच्छानुसार शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार है। प्रत्येक अल्पसंख्यक समुदाय को न केवल अपनी शिक्षा संस्थाएँ स्थापित करने का अधिकार है, बल्कि अपने समुदाय के बच्चों को अपनी भाषा में शिक्षा देने का अधिकार है।

(घ) शिक्षा संस्थाओं के संबंध में राज्य द्वारा विभेद नहीं–शिक्षण संस्थाओं को किसी प्रकार की सहायता देने में राज्य इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबन्ध में है।

2. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग–देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में अल्पसंख्यक समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सरकार ने इन समुदायों के सामाजिक आर्थिक उत्थान के लिये समय-समय पर विभिन्न कार्यक्रम एवं योजनाएँ संचालित की हैं। भारत सरकार

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

ने अल्पसंख्यक समुदायों के सशक्तीकरण और उनकी संस्कृति, भाषा एवं धार्मिक स्वरूप को बनाए रखने के लिये राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, 1992 अधिनियमित किया। इस अधिनियम के अंतर्गत अल्पसंख्यक वर्ग उस समुदाय को माना गया, जिसे केन्द्र सरकार अधिसूचित करे। अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम (1982) के सफल कार्यान्वयन हेतु सरकार ने मई 1993 में एक अल्पसंख्यक आयोग का गठन किया।

इस आयोग के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

क. संघ और राज्यों के अधीन अल्पसंख्यकों की उन्नति के लिये किए गए विकास कार्यों का मूल्यांकन करना।

ख. अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा बनाए गए रक्षा उपायों के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करना।

ग. अल्पसंख्यकों के विरुद्ध भेदभाव की समस्या का अध्ययन करना तथा उसको दूर करने के उपायों को ढूँढना।

घ. अल्पसंख्यकों के सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक विकास के मुद्दे का अध्ययन करना तथा विश्लेषण करना।

च. अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित कोई भी निर्देश जो केन्द्रीय सरकार द्वारा दिया गया हो, उस पर कार्यवाही करना।

छ. अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित किसी भी समस्या के लिए समय-समय पर अथवा विशेष प्रतिवेदन तैयार करके केन्द्रीय सरकार के समक्ष प्रस्तुत करना।

ज. अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के प्रभावकारी कार्यान्वयन के लिये केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों को सुझाव देना।

3. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग 1997–

(क) अल्पसंख्यकों के सुरक्षा उपायों का मूल्यांकन तथा अनुश्रवण करना।

(ख) सरकार के अन्य विभागों को सुझाव देना।

(ग) अल्पसंख्यकों के अधिकारों या सुरक्षा उपायों से उन्हें वंचित करने की शिकायतों पर गंभीरता से विचार करना।

(घ) आयोग को दिए गए विषयों पर विचार करना।

4. अल्पसंख्यक कल्याण के प्रधानमंत्री 15 सूत्रीय कार्यक्रम– अल्पसंख्यक समुदायों को शिक्षा, रोजगार, आर्थिक गतिविधियों में बराबर की हिस्सेदारी तथा उनका उत्थान सुनिश्चित करने के लिये जून 2006 में अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए प्रधानमंत्री के नये 15 सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की गयी थी।

इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैं–

क. शिक्षा के क्षेत्र में अवसरों को बढ़ावा देना।

ख. मौजूदा एवं नयी योजनाओं के जरिए आर्थिक गतिविधियों एवं रोजगार में अल्पसंख्यकों की समान हिस्सेदारी सुनिश्चित करना, स्वरोजगार के लिए ऋण सहायता को बढ़ावा देना।

ग. बुनियादी सुविधाओं के विकास से जुड़ी योजनाओं में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करते हुए उनके जीवन स्तर में सुधार लाना।

घ. सांप्रदायिक हिंसा एवं वैमनस्यता की रोकथाम तथा नियंत्रण।

5. सच्चर समिति– 9 मार्च 2005 को दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश राजेन्द्र सच्चर की अध्यक्षता में सात सदस्यीय समिति का गठनि कयाग या इ सस मितिक ोम ुस्लिमअ ल्पसंख्यकस मुदायके आर्थिक एवं शैक्षिक स्तर के अध्ययन का कार्य सौंपा गया। समिति ने अपनी रिपोर्ट 8जून 2006 को सरकार को सौंपी। इसकी मुख्य सिफारिशें निम्नांकित हैं–

- मुस्लिमों में रोजगार दर बढ़ाने के लिए आवश्यक उपाय किए जायें।
- वंचित अल्पसंख्यक समुदाय के हितों के सुविचारित प्रतिनिधित्व के लिए एक समान अवसर आयोग का गठन किया जाये।
- विभिन्न सामाजिक-धार्मिक वर्गों हेतु एक राष्ट्रीय डाटा बैंक का सृजन किया जाये।
- मदरसों को सीनियर सैकण्डरी विद्यालयों से जोड़ा जाए एवं इनके द्वारा निर्गमित उपाधियों की रक्षा एवं अन्य परीक्षाओं की अर्हता हेतु मान्य किया जाये।
- धार्मिक सहिष्णुता को प्रोत्साहित करने हेतु पाठ्यपुस्तकों में उचित सामाजिक मूल्यों को सुनिश्चित किया जाये।

केन्द्र सरकार ने सच्चर समिति की रिपोर्ट पर कार्रवाई करते हुए कुछ सीमित उपाय भी किए हैं–

- माध्यमिक स्तर तक गुणवत्तायुक्त शिक्षा की पहुँच, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान।
- क्षेत्र विशेष एवं मदरसा आधुनिकीकरण कार्यक्रम को संशोधित किया गया है और इसे दो भागों में विभक्त किया गया है।
- देश के शैक्षिक रूप से पिछड़े 374 जिलों में प्रत्येक में एक मॉडल कॉलेज की स्थापना की जायेगी। इन 374 जिलों में से 61 जिलों की पहचान अल्पसंख्यक बहुल जिलों के रूप में की गई है।
- दो जिन क्षेत्रों में अल्पसंख्यक खासकर मुस्लिम अधिक रहते हैं, वहाँ के विश्वविद्यालयों एवं कॉलेजों में महिला छात्रावास की स्थापना व्यवस्था के विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से वरीयता का प्रावधान।

6. अल्पसंख्यकों को शिक्षा– राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में समानता और सामाजिक न्याय के हित में शैक्षणिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों को शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। 1992 में इसमें दो नई योजनायें जोड़ दी गयी।

(क) शैक्षिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों के लिए गहन क्षेत्रीय कार्यक्रम

(ख) मदरसा शिक्षा आधुनिकीकरण वित्तीय सहायता योजना 1993-94 के मध्य आरम्भ की गयी।

(ग) राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्था आयोग का गठन 2004 में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

किया गया। जिसके अन्तर्गत अल्पसंख्यक संस्थाएं अनुसूचित विद्यालय से स्वयं को सम्बद्ध कर सकती है।

7. मदरसा शिक्षा के आधुनिकीकरण के लिए वित्तीय सहायता योजना–

(क) यह योजना पूरी तरह स्वैच्छिक है। इसकी वित्तीय सहायता केन्द्र द्वारा प्राप्त है।

(ख) इस योजना को ग्रहण करना मदरसों की इच्छा पर निर्भर करता है।

(ग) इस योजना का मूल उद्देश्य प्राचीन संस्थानों, जैसे मकतबा, मदरसों में आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिये वित्तीय सहायता देना है।

8. अल्पसंख्यकों की शिक्षा सम्बन्धी योजनाएँ–

(क) शैक्षिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों के लिये 'क्षेत्र गहन कार्यक्रम' (एरिया इंटेनसिव प्रोग्राम)

(ख) इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य उन हिस्सों में जहाँ शिक्षा में पिछड़े हुए अल्पसंख्यक बहुल संख्या में रहते हैं वहाँ शिक्षा के लिये सुविधा एवं संसाधन उपलब्ध कराना।

(ग) मदरसा शिक्षा को आधुनिक बनाने के लिए वित्तीय सहायता।

(घ) अल्पसंख्यकों को प्रतियोगी परीक्षाओं के लिये तैयार करने के लिए कोचिंगक क्षाओंके ि लयेि वश्वविद्यालयअ नुदानअ ायोगक ी वित्तीय सहायता।

(च) फारसी और अरबी भाषा के क्षेत्र में काम करने वाली संस्थाओं को वित्तीय सहायता।

अल्पसंख्यकों के जीवन के संरक्षण एवं उन्नयन के लिये केन्द्र सरकार ने 2008-09 में बहु आयामी विकास कार्यक्रम भी आरम्भ किये हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य अल्पसंख्यक बहुल जिलों में लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना, विभिन्न प्रकार के असंतुलनों को कम करना तथा सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में सुधार लाना है।

विकास के दृष्टिकोण से जो जिले मूलभूत सुविधाओं से वंचित हैं, उनके लिये योजनाओं पर बल दिया गया है, जिसमें पक्के घरों का निर्माण, स्वच्छ पेयजल एवं बिजली की उपलब्धता, स्कूली एवं माध्यमिक शिक्षा की बेहतर व्यवस्था तथा आय बढ़ाने वाली लाभार्थी योजनाएँ शामिल है।

इसके अलावा अल्पसंख्यक मंत्रालय अल्पसंख्यक समुदायों के विद्यार्थियों को आर्थिक एवं सामाजिक रूप से सशक्त बनाने की दिशा में अग्रसर है और अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विभिन्न छात्रवृत्तियाँ उपलब्ध कराई जा रही हैं–जैसे प्री- मैट्रिक स्कॉलरशिप स्कीम, मैरिट-मींस स्कॉलरशिप स्कीम, मौलाना आजाद नेशनल फैलोशिप, अल्पसंख्यक वर्ग की महिलाओं के लिये नेतृत्व विकास योजना आदि।

इन योजनाओं की क्रियान्वित के लिये देश की सरकारी व्यवस्था कटिबद्ध है, क्योंकि विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्रात्मक देश ने अपना सर्वप्रथम दायित्व, सामाजिक समानता एवं समरसता को बनाये रखने का रखा है।

नि:शक्तजनों (विशेष योग्यजनों) की देखभाल–

नि:शक्तजनों को 'अन्यथा सक्षम' या विशेष योग्यजन भी कहा जाता है। अन्यथा सक्षम लोग केवल इसलिए 'अक्षम' नहीं होते हैं कि वे शारीरिक या मानसिक रूप से 'बाधित' होते हैं, लेकिन इसलिए भी अक्षमह ोतेह ैंि कस माजकु छइ सर ीतिस`ब नाह ैंि कव हउ नकी आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करता।

समस्त विश्व में नि:शक्तता या अक्षमता को जिस अर्थ में समझा जाता है, उसके निम्नांकित लक्षण हैं–

- अक्षमता/निर्योग्यता को एक जैविक कमजोरी माना जाता है।
- अक्षम व्यक्ति को हमेशा पीड़ित व्यक्ति के रूप में देखा जाता है।
- यह विश्वास किया जाता है कि निर्योग्यता उस निर्योग्य व्यक्ति के अपने प्रत्यक्ष ज्ञान से जुड़ी है।

अमूमन विश्व के सभी भागों में एक ऐसी संस्कृति व्याप्त है, जहाँ शारीरिक 'पूर्णता' को आदर की दृष्टि से देखा जाता है परन्तु 'पूर्ण शरीर' का अभाव असामान्य या हेय माना जाता है। ऐसी सोच का मूल कारण उस सांस्कृतिक संकल्पना में निहित है जो असमर्थ या दोषपूर्ण शरीर को दुर्भाग्य का परिणाम मानती है। बहुत दुखद पहलू यह है कि भारत में प्रचलित प्रमुख सांस्कृतिक विचारधारा एवं संरचना, विकलांगता को, पिछले जन्मों के कर्मों की परिणति मानती है। परन्तु 'अन्यथा अक्षम' शब्द इनमें से किसी भी अवधारणा को स्वीकार नहीं करता।

नि:शक्तजन/विकलांगजन (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 की धारा 2(न), (जिसे विकलांगजन अधिनियम, 1995 के रूप में भी जाना जाता है), नि:शक्तजन को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित करता है जो किसी चिकित्सा प्राधिकारी द्वारा यथा प्रमाणित किसी विकलांगता से न्यूनतम 40 प्रतिशत पीड़ित है।

यह विकलांगता (क) दृष्टिबाधिता (ख) अल्पदृष्टि (ग) कुष्ठ रोग उपचारित (घ) श्रवण बाधिता (ङ) चलन विकलांगता (च) मानसिक रोग (छ) मानसिक मंदता (ज) स्वलीनता (ऑटिज्म) (झ) प्रमस्तिष्क अंगघात (सेरेब्रल पाल्सी) अथवा (ङ), (छ), (ज) में से दो या अधिक का संयोजन, हो सकता है।

वर्ष2 011क ेज नगणनाके अ नुसार,भ ारतम ें2 .68क रोड़ विशेष योग्यजन हैं (जो कि कुल जनसंख्या का 2.21 प्रतिशत है)। कुल विशेष योग्यजनों में से 1.50 करोड़ पुरुष हैं और 1.18 करोड़ स्त्रियाँ हैं।

विशेष योग्यजनों हेतु संवैधानिक प्रावधान–

1. अनुच्छेद 41 के अनुसार, ''राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और नि:शक्तता तथा अन्य अनर्ह अभाव के मामलों में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा।'' इसके अलावा, अनुच्छेद 243-छ की 11वीं अनुसूची और

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अनुच्छेद 243-ब की 12वीं अनुसूची, जो आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजनाओं के कार्यान्वयन से सम्बन्धित क्रमशः पंचायतों एवं नगरपालिकाओं की शक्तियों एवं जिम्मेदारियों से सम्बन्धित हैं, में समाज के अन्य कमजोर वर्गों में विकलांगजनों का कल्याण और उनके हितों का संरक्षण शामिल है।

2. भारतीय पुनर्वास परिषद् अधिनियम, 1992– भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम, विकलांगता के विभिन्न पहलुओं और विकलांगजनों के कल्याण एवं सशक्तीकरण को केन्द्र में रखकर, क्रियान्वित किया गया। यह परिषद् पुनर्वास व्यावसायिकों और कार्मिकों के प्रशिक्षण का नियमन और इसकी देखभाल करना और पुनर्वास एवं विशेष शिक्षा में अनुसंधान को प्रोत्साहित करता है।

3. विकलांगता (समान अवसर, अधिकार संरक्षण एवं पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995– एशिया और प्रशांत क्षेत्र हेतु आर्थिक और समाज आयोग द्वारा 1-5 दिसम्बर, 1992 में, बीजिंग में आयोजित विकलांगजनों का एशियाई और प्रशांत दशक 1993-2002 की शुरू करने हेतु बैठक में अंगीकृत एशिया और प्रशांत क्षेत्र में विकलांगजनों की पूर्ण सहभागिता और समानता सम्बन्धी उद्घोषणा को प्रभावी बनाने के लिए केन्द्रीय सरकार ने विकलांगजन (समान अवसर, अधिकार संरक्षण एवं पूर्ण भागीदारी अधिनियम), 1995 अधिनियमित किया। भारत ने इस उद्घोषणा पर अपनी सहमति दर्ज की तथा हस्ताक्षर किये।

विकलांगजन (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदरी) अधिनियम, 1995 के उपबंधों के सामंजस्य और साथ ही बेहतर कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के दोहरे उद्देश्य के साथ सरकार ने राज्यसभा में 07.02.2014 को विकलांग व्यक्ति अधिकार विधेयक 2014 प्रस्तुत किया था।

4. ऑटिज्म, प्रमस्तिष्क अंगघात, मानसिक मंदता और बहुविकलांगताओं इत्यादि से ग्रस्त व्यक्तियों के कल्याणार्थ राष्ट्रीय न्यास– राष्ट्रीय न्यास ऑटिज्म, प्रमस्तिष्क अंगघात, मानसिक मंदता और बहुविकलांगताओं इत्यादि से ग्रस्त व्यक्तियों के कल्याणार्थ संसद में वर्ष 1999 के एक अधिनियम द्वारा गठित एक सांविधिक निकाय है। राष्ट्रीय न्यास के उद्देश्य इस प्रकार हैं–

(1) विकलांगजनों को स्वतंत्रतापूर्वक और यथासम्भव पूरी तरह से अपने समुदाय के अंदर और यथा निकट जीवनयापन करने में समर्थ और सशक्त बनाना।

(2) विकलांगजनों को अपने स्वयं के परिवार में ही रहने के लिए सहायता प्रदान करने के लिए सुविधाओं को सुदृढ़ करना।

(3) विकलांगजनों के माता-पिता अथवा संरक्षकों की मृत्यु होने पर उनकी देखभाल और संरक्षण के उपायों का संवर्द्धन करना।

(4) जिन विकलांगजनों को संरक्षकों और न्यासियों की जरूरत है, उनके लिए इनकी नियुक्ति की प्रक्रिया विकसित करना।

5. राष्ट्रीय नीति 2006, विकलांगजनों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेशन, 2006 और एशिया तथा प्रशांत क्षेत्रों में विकलांगजनों हेतु 'अधिकार को साकार करने' सम्बन्धी कार्यनीति– यह विश्वास किया जाता है कि निःशक्तजन देश के बहुमूल्य संसाधन हैं और यदि उन्हें समान अवसर और प्रभावी पुनर्वास उपलब्ध हों तो उनमें से अधिकांश व्यक्ति बेहतर गुणवत्ता वाली जिंदगी जीस कतेह ैं ।स रकारन े उ नकेि लएए ेसाव ातावरणत ैयारक रनेक े उद्देश्य से, जो उन्हें समान अवसर, उनके अधिकारों का संरक्षण और समाज में उनकी पूरी भागीदारी प्रदान कर सके, विकलांगजनों के लिए एक राष्ट्रीय नीति तैयार की है।

विकलांगता रोकथाम और पुनर्वास उपायों पर केन्द्रित इस नीति में निम्नांकित प्रावधान हैं–

(क) विकलांग रोकथाम

(ख) पुनर्वास उपाय

(i) शारीरिक पुनर्वास रणनीति–
- शीघ्र शारीरिक कमियों का पता करना
- परामर्श एवं चिकित्सा पुनर्वास
- सहायक युक्तियाँ

(ii) विकलांगजनों की शिक्षा

(iii) विकलांगजनों का आर्थिक पुनर्वास
- सरकारी प्रतिष्ठानों में नियोजन
- निजी क्षेत्र में पारिश्रमिक आधारित रोजगार
- स्व-रोजगार
- बाधामुक्त परिवेश
- सामाजिक सुरक्षा
- विकलांग बच्चों के लिए प्रावधान

6. विकलांगजनों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्रसंघ सम्मेलन, 2006– यह संधिपत्र 13 दिसम्बर, 2006 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अपनाया गया था और 30 मार्च, 2007 को राष्ट्र पक्षों द्वारा हस्ताक्षर हेतु रखा गया। इस संधिपत्र के अंगीकरण ने विकलांगजनों को सम्पूर्ण विश्व में अपने अधिकारों की माँग करने और अपने अधिकारों का लाभ उठाने के लिए राज्य, निजी और नागरिक समाज की एजेंसियों को जवाबदेह बनाने में वास्तव में सशक्त किया।

भारत विश्व के उन कुछ प्रमुख राष्ट्रों में से एक है जिसने इस संधिपत्र की अभिपुष्टि की है। 30 मार्च, 2007 को भारत द्वारा संधिपत्र पर हस्ताक्षर किए जाने और बाद में इसकी अभिपुष्टि किये जाने के परिणामस्वरूप देश में यह कानून 3 मई, 2008से प्रभावी हो गया।

7. विकलांग छात्रों के लिए मैट्रिक पूर्व छात्रवृत्ति तथा मैट्रिक उपरान्त छात्रवृत्ति–

योजना का उद्देश्य–

- योजना का मुख्य उद्देश्य मैट्रिक पूर्व स्तर तथा मैट्रिक उपरांत स्तर में अध्ययनरत विकलांग छात्रों को वित्तीय सहायता देना है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- वित्तीय सहायता में छात्रवृत्ति, पुस्तक अनुदान, मार्गरक्षी/रीडर भत्ता आदि शामिल हैं।
- इन दो छात्रवृत्ति योजनाओं के अन्तर्गत लाभार्थियों का चयन राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्र की अनुशंसा के उपरान्त मेरिट के आधार पर किया जाता है।

8. विकलांग छात्रों के लिए राष्ट्रीय विदेशी छात्रवृत्ति– विकलांग छात्रों के लिए राष्ट्रीय विदेशी छात्रवृत्ति की योजना स्नातकोत्तर तथा पीएचडी स्तर पर विदेश में अध्ययन कर रहे विकलांग छात्रों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराने के उद्देश्य से शुरू की गई है। प्रत्येक वर्ष बीस छात्रवृत्तियाँ दी जानी होती हैं, जिनमें से छह महिला अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित हैं।

9. विकलांगजनों में कौशल प्रशिक्षणार्थ राष्ट्रीय कार्य-योजना– विकलांगजन सशक्तीकरण विभाग, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय ने 21 मार्च, 2015 को कौशल विकास और उद्यम वृत्ति मंत्रालय के सहयोग से विकलांगजनों के कौशल प्रशिक्षण की राष्ट्रीय कार्ययोजना शुरू की। इस कार्ययोजना का मूल उद्देश्य विकलांगजनों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण और रोजगार अवसरों में सुधार करना है। अलग-अलग विकलांगजनों, उनके परिवारों के लिए जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने हेतु एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जो वृहत्तर अर्थव्यवस्था के लिए भी अत्यधिक लाभदायी है।

10. जागरूकता विकास तथा प्रचार योजना– जागरूकता विकास एवं प्रचार योजना सितम्बर, 2014 में चलाई गई तथा वित्तीय वर्ष 2014-15 से आगे के लिए प्रचलित है। इस योजना को बेहतर और कारगर परिणामों हेतु कार्यान्वयन के व्यापक आधार के लिए सरल बनाने तथा इसके कार्यक्षेत्र, उद्देश्य, पात्रता आदि को बढ़ाने हेतु वित्तीय वर्ष 2015-16 में संशोधित किया गया।

विकलांगजन सशक्तीकरण विभाग– विकलांगजनों/नि:शक्तजनों के कल्याण और सशक्तीकरण पर लक्षित विभिन्न नीतिगत मसलों पर ध्यान केन्द्रित करने और सम्बन्धित गतिविधियों पर सार्थक जोर देने के लिए 12 मई, 2012 को सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय से अलग करके एक पृथक् 'डिसैबिलिटी कार्य विभाग' बनाया गया था। दिनांक 8.12.2014 को इस विभाग का नाम बदलकर 'विकलांगजन सशक्तीकरण विभाग' कर दिया गया। यह विभाग विभिन्न पदधारकों, सम्बन्धित केन्द्रीय मंत्रालयों, गैर सरकारी संगठनों, राज्यों/संघ राज्य क्षेत्र सरकारों इत्यादि के बीच प्रभावी करीबी समन्वयन सहित विकलांगजनों एवं विकलांगता से सम्बन्धित मामलों के लिए एक नोडल एजेन्सी के रूप में कार्य करता है।

विकलांगजन सशक्तीकरण विभाग का उद्देश्य– एक ऐसा समावेशी समाज बनाना जिसमें विकलांगजनों की उन्नति और विकास के लिए समान अवसर प्रदान किए जाते हैं, ताकि वे उपयोगी, सुरक्षित और सम्मानजनक जीवन व्यतीत कर सकें।

अपने उद्देश्य को पूर्ण करने एवं मिशन को सफल बनाने के लिए, विभाग निम्नलिखित लक्ष्यों के लिए प्रयास करता है–

(क) श ारीरिकप ुनर्वास,प रामर्शअ ौर चकित्साप ुनर्वासत था विकलांगताओं के प्रभाव को कम करने के लिए उपयुक्त सहायक तंत्रों और उपकरणों की खरीद में सहायता शामिल है–

(i) व्यावसायिक प्रशिक्षण सहित शैक्षणिक पुनर्वास

(ii) आर्थिक पुनर्वास और

(iii) सामाजिक सशक्तीकरण

(ख) पुनर्वास व्यावसायिकों/कर्मियों को तैयार करना।

(ग) आन्तरिक कार्य दक्षता/प्रतिक्रियाशीलता/सेवाप्रदायगी में सुधार।

(घ) समाज के विभिन्न वर्गों में जागरूकता सृजन के माध्यम से विकलांगजनों के सशक्तीकरण का समर्थन।

विशेषयोग्यजनों की पीड़ा समझने एवं उन्हें आमधारा में सम्मिलित करने हेतु एक वृहद दृष्टिकोण की आवश्यकता है। मानवजन में, विशेषयोग्यजनों के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करने के लिए, हर वर्ष 3 दिसम्बर को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नि:शक्तजन व्यक्तियों का अन्तर्राष्ट्रीय दिवस मनाया जाता है। समाज में विशेषयोग्यजनों के आत्मसम्मान, स्वास्थ्य और अधिकारों को सुधारने के लिए और उनकी सहायता के लिए एक साथ होने के साथ ही लोगों की विकलांगता के मुद्दे की ओर पूरे विश्व की समझ को सुधारने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नि:शक्तजन दिवस का उद्देश्य बहुत बड़ा है।

विशेषयोग्यजनों की देखभाल के लिए सरकारी स्तर पर यद्यपि अनेकानेक प्रयास किए जा रहे हैं तथापि, उनके प्रति सम्मान की दृष्टि, संवेदनशील और सहयोगात्मक होना अपरिहार्य है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- नर्मदेश्वर प्रसाद ने जातीय पूर्वाग्रह के सन्दर्भ में अनेक कहावतें बताई हैं।
- भारतीय सामाजिक इतिहास में जातियाँ एक-दूसरी की पूरक एवं पोषक रही हैं।
- शूद्रक ने भी मृच्छकटिकम् में जातीय पूर्वाग्रही धारणाओं का उल्लेख किया है।
- लोकतन्त्र में कुछ राजनीतिक दल भी जातीय पूर्वाग्रहों को बढ़ावा देते दिखाई देते हैं।
- भारत की जनगणना 2011 के अनुसार कुल जनसंख्या का 16.6 प्रतिशत अनुसूचित जातियों की आबादी है।
- स्वतन्त्रता के पश्चात् अनुसूचित जातियों की सभी परम्परागत निर्योग्यताओं का उन्मूलन कर दिया गया है।
- राजस्थान में 59 अनुसूचित जातीय समूह निवास कर रहे हैं।
- राजस्थान में 2011 की जनगणना के अनुसार राज्य की कुल

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जनसंख्या का 13.48 प्रतिशत अनुसूचित जनजातीय आबादी है।

- राज्य में सर्वाधिक आबादी मीणा (मीना) जनजाति की है।
- राजस्थान में कुल बारह जनजातीय समूह निवास कर रहे हैं।
- जनजातीय जनसंख्या की दृष्टि से राजस्थान का देश में पाँचवा स्थान है।
- संभरणात्मक आर्थिक व्यवस्था एवं रूढ़िगत सामाजिक ढाँचे ने जनजाति के लोगों को शिक्षा एवं तकनीक से दूर रखा।
- उत्तर-पूर्वी राजस्थान में राज्य की सर्वाधिक जनजातीय आबादी लगभग 45 प्रतिशत निवास करती है।
- पिछड़े वर्गों का अभिप्राय समाज के उस वर्ग से है, जो सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक निर्योग्यताओं के कारण समाज में अन्य वर्गों की तुलना में नीचे के स्तर पर हो।
- पिछड़े वर्ग की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं दी गई है। केवल आशय ही स्पष्ट किया गया है।
- संविधान के अनुच्छेद 15(4), 16(4) तथा 340 में शिक्षा व रोजगार के क्षेत्र में पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं।
- संविधान की धारा 340 में भारत के राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह एक आयोग की नियुक्ति कर देश के विभिन्न भागों में स्थित पिछड़े वर्गों का जायजा ले सके।
- वी.पी. मण्डल की अध्यक्षता में मण्डल आयोग का गठन 1977 में किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट केन्द्र सरकार को 30 अप्रैल, 1982 को दी।
- मण्डल आयोग ने 3743 जातियों को पिछड़ी जाति घोषित किया जो देश की कुल आबादी का 52 प्रतिशत है।
- पिछड़ी जातियों के लिए सरकारी सेवाओं और शैक्षणिक संस्थाओं में 27 प्रतिशत स्थान आरक्षित रखने की सिफारिश की गई है।
- 7 अगस्त, 1990 को तत्कालीन राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह ने पिछड़े वर्गों के लिए सामाजिक न्याय की दुहाई देते हुए 27 प्रतिशत आरक्षण की घोषणा की।
- राजस्थान सरकार द्वारा सरकारी नौकरियों में, स्थानीय निकायों में एवं पंचायतीराज संस्थाओं में 21 प्रतिशत आरक्षण पिछड़े वर्गों के लिए लागू किया।
- अल्पसंख्यक शब्द का समाजशास्त्रीय भाव है अल्पसंख्यक वर्ग के सदस्यों का एक सामूहिकता के मध्य निर्मित होना।
- भारतीय संविधान की धारा 30 में विशेष तौर पर अल्पसंख्यकों की दो श्रेणियों–धार्मिक और भाषायी का उल्लेख किया गया है।
- 27 जनवरी, 2014 को केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग कानून 1992 की धारा 2 के अनुच्छेद (ग) के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारों का उपयोग करते हुए जैन समुदाय को भी अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में अधिसूचित कर दिया है।
- 1972 में मेरी बोल्सन क्राफ्ट की पुस्तक 'ए विन्डिक्शन ऑफ द राइट्सअ ॉफि वमेन'म`ंप हलीब रम`रीन`' स्वतंत्रता-समानता-भ्रातृत्व' के सिद्धान्त को स्त्री समुदाय पर लागू करने की माँग की।
- सन् 1993 में 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से नगर परिषदों और पंचायतों में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित की गईं।
- विश्व के अधिकांश देशों ने 1979 के महिलाओं के विरुद्ध हर प्रकार के भेदभाव की समाप्ति से सम्बन्धित समझौते को औपचारिक रूप से अपना लिया।
- नि:शक्तजन अधिनियम, 1995 की धारा 2(न), नि:शक्तजन को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित करता है जो किसी चिकित्सा प्राधिकारी द्वारा यथा प्रमाणित किसी विकलांगता से न्यूनतम 40 प्रतिशत पीड़ित है।
- वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में 2.68करोड़ विकलांगजन हैं।
- विकलांगजनों (विशेषयोग्यजनों) के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा द्वारा 13 दिसम्बर, 2006 को संधिपत्र अपनाया गया और 30 मार्च 2007 को राष्ट्र पक्षों द्वारा हस्ताक्षर हेतु रखा गया।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. 'हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इण्डिया' पुस्तक के लेखक का नाम क्या है?

   (अ) केतकर (ब) दुबे

   (स) मजूमदार (द) मदान

2. जातीय पूर्वाग्रह से सम्बन्धित सैकड़ों कहावतों की चर्चा की है–

   (अ) केतकर (ब) नर्मदेश्वर प्रसाद

   (स) श्रीनिवास (द) मजूमदार

3. भारत की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति की जनसंख्या है?

   (अ) 14.6 प्रतिशत (ब) 15.6 प्रतिशत

   (स) 16.6 प्रतिशत (द) 17.6 प्रतिशत

4. संविधान की कौनसी धारा में अनुसूचित जातियों को अधिसूचित किया गया है?

   (अ) धारा 339 (ब) धारा 340

   (स) धारा 342 (द) धारा 341

5. संविधान की कौनसी धारा में अनुसूचित जनजातियों को अधिसूचित किया गया है?

   (अ) धारा 332 (ब) धारा 342

   (स) धारा 352 (द) धारा 362

6. राजस्थान में कितने जनजातीय समूह निवास करते हैं?

   (अ) 9 (ब) 101

   (स) 12 (द) 14

7. संविधान की कौनसी धारा में पिछड़े वर्गों की स्थिति का जायजा लेने का अधिकार राष्ट्रपति को दिया गया है?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(अ) धारा 370 (ब) धारा 340
(स) धारा 15(4) (द) इनमें से कोई नहीं

8. मण्डल आयोग के अध्यक्ष कौन थे?
(अ) वी.पी. सिंह (ब) वी.पी. मण्डल
(स) प्रो. गाडगिल (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

9. मण्डल आयोग का गठन कब किया गया?
(अ) 1977 चुनाव के बाद
(ब) 1975 आपातकाल में
(स) 1984 आम चुनाव के बाद
(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

10. मण्डल आयोग ने अपनी रिपोर्ट सरकार को कब दी?
(अ) 1980 (ब) 1981
(स) 1982 (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

11. संविधान की धारा 15(4) व 16(4) के अनुसार कितने प्रतिशत से अधिक स्थान आरक्षित नहीं किया जा सकता?
(अ) 50 प्रतिशत (ब) 60 प्रतिशत
(स) 40 प्रतिशत (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

12. भारतीय संविधान की धारा 30 में अल्पसंख्यकों की कितनी श्रेणियों का उल्लेख किया गया?
(अ) एक (ब) दो
(स) तीन (द) चार

13. जैन समुदाय को अल्पसंख्यक समुदाय की श्रेणी में किस वर्ष में सम्मिलित किया गया–
(अ) 2014 (ब) 2010
(स) 2011 (द) 2015

14. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग किस वर्ष में अधिनियमित किया गया है?
(अ) 1992 (ब) 1986
(स) 1984 (द) 1989

15. कौनसे समाजशास्त्री पुरुष और स्त्री में विद्यमान जैविक भेदों को समाज में श्रम के लैंगिक विभाजन पर आधार मानते हैं?
(अ) एम.एन. श्रीनिवास (ब) इरावती कर्वे
(स) जार्ज पीटर मुरडॉक (द) ऐन ओकले

16. आई.पी.यू. की रिपोर्ट 2015 के मुताबिक, महिला जनप्रतिनिधियों के संदर्भ में वैश्विक स्तर पर भारत का कौनसा स्थान है?
(अ) 108वाँ (ब) 103वाँ
(स) 110वाँ (द) 105वाँ

17. वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल नि:शक्तजनों (विशेषयोग्यजनों) की कितनी जनसंख्या है?
(अ) 3 करोड़ (ब) 2.05 करोड़
(स) 2.68 करोड़ (द) 5 करोड़

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. नर्मदेश्वर प्रसाद की पुस्तक का नाम बताइए।
2. अनुसूचित जातियों की निर्योग्यताएँ किस काल की सामाजिक व्यवस्था का भाग थीं?
3. राजस्थान में कितने अनुसूचित जातीय समूह निवास करते हैं?
4. जनगणना 2011 के अनुसार राजस्थान में जनजातीय आबादी का प्रतिशत कितना है?
5. राजस्थान में कितने जनजातीय समूह निवास करते हैं?
6. पिछड़े वर्ग का आशय स्पष्ट कीजिए।
7. आंद्रे बिताई कृषक वर्ग को पिछड़े वर्गों का सार क्यों मानते हैं?
8. भारत को लोकतंत्रात्मक भावनाओं का संरक्षक क्यों माना जाता है?
9. भारतीय संविधान की किन धाराओं में अल्पसंख्यकों का विवरण दिया गया है?
10. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में, 1992 में किन दो योजनाओं को जोड़ा गया?
11. अर्थशास्त्री सिलिव्या ने महिला असमानता के सन्दर्भ में क्या कहा?
12. 1882 में किस भारतीय स्त्री ने, महिला सामाजिक असमानता पर पुस्तक लिखी और उन्होंने उसमें क्या कहा था?
13. नि:शक्तजन अधिनियम, 1995 की धारा (न), में नि:शक्तजनों की क्या परिभाषा दी गई है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. जातीय पूर्वाग्रह पर टिप्पणी लिखिए।
2. अनुसूचित जातियों की मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था में निर्योग्यताओं पर प्रकाश डालिए।
3. राजस्थान में जनजातियों की जनसंख्या पर टिप्पणी कीजिए।
4. राजस्थान में जनजातीय निवास का भौगोलिक दृष्टि से विश्लेषण कीजिए।
5. आप कैसे स्पष्ट करेंगे कि पिछड़े वर्ग का निर्धारण जन्म या जाति के आधार पर न होकर अन्य कारणों से होता?
6. उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग के मध्य पाये जाने वाले वर्ग को पिछड़ा कहेंगे। स्पष्ट करें।
7. मण्डल आयोग को कौन–कौन से कार्य दिये गये?
8. समाजशास्त्र में अल्पसंख्यकों के सन्दर्भ में क्या परिभाषा दी गई है?
9. भारत में कौनसे समुदाय अल्पसंख्यक माने जाते हैं?
10. संयुक्त राष्ट्र के प्रतिवेदक फ्रेंसिस्को कॉपोटोर्टी ने अल्पसंख्यकों की क्या परिभाषा दी?
11. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग क्या है?
12. महिलाओं के उत्थान के लिए, औपचारिक समानता की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संवैधानिक गारण्टी क्या है?

13. 1946 में संयुक्त राष्ट्र के द्वारा गठित आयोग के प्रमुख कार्यों की चर्चा करें।

14. भारतीय पुनर्वास परिषद् अधिनियम, 1992 के सम्बन्ध में लिखें।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. भारतम ेंअ नुसूचितज ातियोंक ेस मकालीनि स्थतिक ेस् पष्ट कीजिए।
2. राजस्थान में अनुसूचित जनजातियों पर निबन्ध लिखिए।
3. मण्डल आयोग की रिपोर्ट के प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
4. राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में मण्डल आयोग की सिफारिशों का उल्लेख कीजिए।
5. धार्मिक अल्पसंख्यकों से आप क्या समझते हैं? उनके संरक्षण के लिए क्या उपाय किए गए हैं?
6. स्त्री समानता संघर्ष पर भारतीय दृष्टिकोण की चर्चा करें।
7. नि:शक्तजनों (विशेषयोग्यजनों) की देखभाल हेतु सरकार की क्या नीतियाँ हैं?

उत्तरमाला

1. (अ)	2. (ब)	3. (स)	4. (द)	5. (ब)
6. (स)	7. (ब)	8. (ब)	9. (अ)	10. (स)
11. (अ)	12. (ब)	13. (अ)	14. (अ)	15. (स)
16. (ब)	17. (स)।			

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 4

भारत में संरचनात्मक परिवर्तन—परम्परा एवं आधुनिकता, औद्योगीकरण, नगरीकरण

अध्ययन बिन्दु—

- संरचनात्मक परिवर्तन
- परम्परा एवं आधुनिकता की अवधारणाएँ
- परम्परा एवं आधुनिकता में सम्बन्ध (भारतीय संदर्भ)
- औद्योगीकरण की अवधारणा
- औद्योगीकरण का भारतीय समाज पर प्रभाव
- नगरीकरण, विशेषताएँ
- भारत में नगरीकरण के प्रभाव

प्रस्तुत अध्याय में भारतीय समाज की संरचना में परिवर्तन तथा इसमें आधुनिकता, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के प्रभाव की विवेचना की गई है। इस अध्याय के माध्यम से विद्यार्थी—

- संरचनात्मक परिवर्तन औपनिवेशिक काल से वर्तमान तक।
- आधुनिकता क्या है?
- परम्परा किसे कहते हैं?
- परम्परा एवं आधुनिकता का सातत्य किस प्रकार का है?
- औद्योगीकरण एवं नगरीकरण ने भारतीय समाज की संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया है? के बारे में समझ विकसित करने में समर्थ होंगे।

इस अध्याय के माध्यम से औपनिवेशिक काल से लेकर वर्तमान तक के काल में भारतीय समाज पर आधुनिकता, औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के प्रभावों को जानने का प्रयास किया गया है।

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। ऐसी कोई भी वस्तु, संस्था, समाज अथवा इकाई नहीं है जो एकदम स्थिर हो। परिवर्तन की गति कम अथवा अधिक हो सकती है, परन्तु परिवर्तन अवश्य होता है। अर्थात् प्राकृतिक एवं सामाजिक सभी इकाइयों में बदलाव की निरन्तर प्रक्रिया चलती रहती है।

विगत दो शताब्दियों में भारतीय समाज की संरचना में व्यापक बदलाव दृष्टिगत हुए हैं। यद्यपि भारतीय सामाजिक संरचना में बदलाव समय-समय पर आई विदेशी जातियों जैसे-शक, हूण, कुषाण, मंगोल, अरब आदि के कारण भी हुए हैं, विशेषकर अरब की जाति (मुस्लिम) ने काफी प्रभाव डाला है, फिर भी सर्वाधिक प्रभाव ब्रिटिश औपनिवेशिक काल का रहा है। वर्तमान भारतीय सामाजिक संरचना को समझने के लिए हमें ब्रिटिश दासता के काल के बारे में जानना होगा।

समाज की संस्थाओं जाति, परिवार, विवाह, पड़ौस तथा नातेदारी एवं राष्ट्रीय आन्दोलन, संविधान, कानून व्यवस्था, उद्योग, कृषि तकनीक, शिक्षा, भाषा, व्यवहार-प्रतिमान, पहनावा, खान-पान, आवास, व्यवसाय आदि सभी पर पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट तौर पर दिखाई देते हैं।

संरचनात्मक परिवर्तन

आपने प्रथम अध्याय में संरचना के अवधारणात्मक पक्ष को समझ लिया था। अब हम संरचनात्मक परिवर्तन को समझेंगे।

1. औपनिवेशिक काल—ब्रिटिश उपनिवेशवाद पूँजीवादी व्यवस्था पर आधारित था। पूर्व औपनिवेशिक काल के शासकों ने भारत के आर्थिक आधार में कोई हस्तक्षेप नहीं किया, परन्तु अंग्रेजों ने प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक व्यवसाय में वृहत् स्तर पर हस्तक्षेप किये। अंग्रेजों ने भू-स्वामित्व, फसल चक्र, फसल निर्धारण, उत्पादन प्रणाली, वितरण व्यवस्था सभी को बदला। उन्होंने अपने हितों की अधिकतम पूर्ति हेतु जंगल पर भी नियंत्रण कर लिया, जिससे जनजातियों एवं चरवाहों के सामने आवास तथा पशु चारण की समस्या उत्पन्न हुई। जंगलों से सम्बन्धित कानूनों ने पूर्वोत्तर भारत पर प्रभाव डाला।

अंग्रेजों ने अपने आर्थिक हितों की अधिकतम पूर्ति हेतु भारतीय लोगों की गतिशीलता में वृद्धि की। चाय बागानों के लिए श्रमिक बिहार, झारखण्ड से ग ए, बंगाल एवं मद्रास से पेशेवर लोगों को तथा अन्य सेवाओं हेतु देश के दूसरे भागों में भेजा गया। एशिया के अन्य भागों, अफ्रीका तथा अमरीका के उपनिवेशों में भी भारतीय लोगों को भेजा गया। जिनमें से कुछ लौटकर वापस नहीं आए एवं वर्तमान में वे भारतीय मूल के लोग कहलाते हैं। संसार के विभिन्न भागों में भारतीय मूल के कहलाने वाले लोगों के पूर्वज औपनिवेशिक काल में उन देशों तक पहुँचे थे।

आम नागरिक एवं शासक के बीच संवाद स्थापित हो जिससे व्यवस्था बनी रहे, इस हेतु अंग्रेजों ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति से भारतीयों को शिक्षित करने के प्रयत्न प्रारम्भ किये। औपनिवेशिक सत्ता के स्थायित्व की दिशा में किया गया यह प्रयास भारतीय राष्ट्रवादी चेतना में भी कारगर सिद्ध हुआ। पश्चिमी लोकतांत्रित मूल्यों में मानवाधिकारों की अवधारणा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

का परिचय अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों से हुआ। परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रवादी चेतना का उदय हुआ तथा स्वतंत्रता एवं सम्प्रभुता के लिए संघर्ष का सूत्रपात हुआ।

2. परम्परा एवं आधुनिकता– परम्परा एवं आधुनिकता व्यवहार में एक-दूसरे के विपरीत अर्थ वाली अवधारणाएँ मानी जाती हैं। समाज के विकास में इन्हें दो ध्रुवों की भाँति माना जाता है। सामान्यत: परम्परागत समाज आधुनिक समाजों का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक, राजनीतिक, शैक्षणिक आदि क्षेत्रों में अनुसरण करते हैं।

परम्परा– परम्परा का सम्बन्ध प्राचीनता से है। हमारे पूर्वजों द्वारा बनायेग येर ीति-रिवाजों,प्र थाओं,ि वश्वासों,० यवहारोंअ ादिज ेह में विरासत में मिले हैं, परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। परम्परा में सामान्यत: परिवर्तन के प्रति विरोध पाया जाता है। **एडवर्ड शिल्स** के अनुसार, ''परम्परा समाज द्वारा चेतनापूर्वक जानबूझकर पुराने मानदण्डों के प्रति स्वीकारोक्ति है। स्वीकार करने वाला जानता है कि अमुक रीति-रिवाज या व्यवहार पहले से चला आ रहा है और समाज द्वारा मान्य है।''

योगेन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक 'मॉडर्नाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडीशन्स' में भारतीय परम्परा की विशेषताओं के बारे में बताया है। इनके अनुसार भारत में परम्परा की चार विशेषताएँ होती हैं–

(1) सामूहिक सम्पूर्णता
(2) संस्तरण
(3) परलोकवादी
(4) निरन्तरता।

(1) सामूहिक सम्पूर्णता– यह व्यक्ति पर समूह की प्रधानता को स्थापित करता है। संयुक्त परिवार, जाति, गाँव एवं नातेदारी व्यवस्था ने व्यक्तिगत पहचान के स्थान पर समूहगत पहचान को जन्म दिया है।

(2) संस्तरण– इसमें असमानता को संस्थागत रूप दिया गया है। जाति, गुण तथा लक्ष्य संस्तरणात्मक व्यवस्था को स्थापित करते हैं। जातियों में ऊँच-नीच की एक व्यवस्था है इसी प्रकार गुण-सत, तम, एवं रज व लक्ष्य-मोक्ष, धर्म, अर्थ एवं काम भी क्रमश: संस्तरण में हैं।

(3) परलोकवादी– जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है जो संन्यास आश्रम के माध्यम से प्राप्त होता है।

(4) निरन्तरता– निरन्तरता परम्परा का मूलभूत आधार है। कर्म एवं पुनर्जन्म की अवधारणा भी निरन्तरता की पोषक है।

परम्परा एवं परिवर्तन– एडवर्ड शील्स का कहना है कि परम्परागत समाज न तो पूर्णतया परम्परागत है और न आधुनिक समाज पूर्णतया परम्परा मुक्त। परम्परा भूत एवं वर्तमान के बीच की कड़ी का काम करती है।

भारतीय समाज में परम्परा में दो प्रकार से परिवर्तन दिखाई देते हैं–

(अ) प्रत्यक्ष
(ब) संरचनात्मक

(अ) प्रत्यक्ष परिवर्तन– ये वे परिवर्तन हैं जो समय-समय पर हमारी परम्पराओं में हुए हैं, जैसे-जैन, बौद्ध, आर्य समाज, ब्रह्म समाज एवं प्रार्थना समाज के चिन्तकों ने अपने विचारों से भारतीय परम्परा में परिवर्तन किया है।

(ब) संरचनात्मक परिवर्तन– भारतीयस मािजकस ंरचनाम ें 'पर-संस्कृतीकरण (वह प्रक्रिया जिसमें एक संस्कृति के तत्व, प्रतिमान या रीतियाँ दूसरी संस्कृति के द्वारा ग्रहण किए जाते हैं।) तथा सात्मीकरण (वह प्रक्रिया जिसमें एक संस्कृति के तत्व या रीतियाँ अपना अस्तित्व खोकर दूसरी संस्कृति में विलीन हो जाते हैं) की परम्परा रही है। अर्थात् हमारी सामाजिक संरचना में परिवर्तनों को स्वीकार करने का संरचनात्मक प्रावधान विद्यमान था, जिससे बदलाव में कोई रुकावट नहीं आई।

आधुनिकता

आधुनिकता सोचने-समझने का एक विशिष्ट दृष्टिकोण (तार्किक-वैज्ञानिक) होता है। योगेन्द्र सिंह ने आधुनिकता के चार लक्षण बताये हैं–

1. व्यक्तिवादिता
2. समानता
3. परिवर्तन के प्रति आस्था एवं
4. धर्म-निरपेक्षता

ये विशेषताएँ आधुनिकता की मानसिकता की परिचायक हैं। सामाजिक दृष्टिकोण के स्थान पर व्यक्तिपरकता, भेदभाव के स्थान पर समानता, जड़ता (स्थिरता) के स्थान पर परिवर्तन एवं धार्मिक कट्टरपन के स्थान पर धर्मनिरपेक्षता आधुनिकता की अवधारणा में महत्वपूर्ण है। एन.के. सिंघी के अनुसार तार्किकता, वैज्ञानिकता तथा आर्थिक संरचना में विशिष्टता ये तीन तत्व आधुनिकता में निहित होते हैं।

आधुनिकता एक दृष्टिकोण होता है जिसमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गतिशीलता पाई जाती है। यह गतिशीलता हमारे धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिकए वंप्र शासनिकज ीवन ि चन्तनत थास ोचने-समझनेक तरीकों में दृष्टिगत होती है। यह दृष्टिकोण आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में परम्पराओं से परे जाकर ऐसे समाजों की संरचना का मार्ग प्रशस्त करता है, जिन्हें हम आधुनिक समाज कहते हैं।

परम्परा एवं आधुनिकता में सम्बन्ध (भारतीय सन्दर्भ)

सामान्यत: ऐसा माना जाता है कि परम्परा सामाजिक और आर्थिक पिछड़ापन का द्योतक है, जबकि आधुनिकता समाज की विकासशीलता का। परम्परा में नकारात्मक तत्त्व माने जाते हैं, जबकि आधुनिकता में सकारात्मक। जबकि वास्तव में परम्परा-आधुनिकता को सातत्य (सततता) के रूप में समझा जा सकता है जिसमें एक छोर पर परम्परा तथा दूसरे छोर पर आधुनिकता को रखा जा सकता है एवं बीच में ऐसे समाज जिनमें परम्परा एवं आधुनिकता दोनों की विशेषताओं के अंश विभिन्न मात्रा में विद्यमान हों।

वास्तविकता यह होती है कि कोई भी समाज न तो पूर्णत:

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आधुनिक होता है और न ही पूर्णत: परम्परागत। अन्तर केवल अंशों का पाया जाता है। भारतीय सामाजिक संरचना इसका स्पष्ट उदाहरण है। विगत दो शताब्दियों में भारतीय समाज की संरचना में कई महत्वपूर्ण बदलाव देखे गए हैं। समाज परम्परा से आधुनिकता की तरफ बढ़ रहा है। भारत में परम्परा एवं आधुनिकता की प्रक्रिया (आधुनिकीकरण) का निम्न स्वरूप दिखाई दे रहा है–

1. आर्थिक क्षेत्र में विकास हुआ है तथा आत्मनिर्भरता की तरफ बढ़ रहे हैं।
2. परम्परागत पेशों का पतन हुआ है तथा नवीन पेशों के विशिष्टीकरण में वृद्धि हुई है।
3. कृषि के परम्परागत तरीके जिसमें बैल, ऊँट अथवा पशुओं से जुताई, बुआई होती थी के स्थान पर मशीनों का इस्तेमाल परम्परागत के स्थान पर वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग बढ़ रहा है।
4. प्राथमिक क्षेत्रों में कार्यरत लोगों की संख्या में कमी तथा द्वितीयक एवं तृतीयक (Secondary and Tertiary) क्षेत्र में लोगों की संलग्नता बढ़ी है।
5. सेवा के बदले सेवा अथवा वस्तु के स्थान पर मुद्रा विनिमय का प्रचलन बढ़ा है।
6. श्रम विभाजन के बढ़ने से विभिन्न समुदायों में परस्पर अन्तर्निर्भरता में वृद्धि हुई है, जिससे सामाजिक पृथक्करण की भावना में कमी आई है।
7. देश की जनसंख्या में नगरीय अनुपात बढ़ा है।
8. नगरीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि हुई है।
9. प्रदत्त प्रस्थिति के स्थान पर अर्जित प्रस्थिति का महत्व बढ़ा है।
10. समाज में विषमता एवं विभाजन के स्थान पर समरसता, समानता को बढ़ावा मिला है।
11. चिकित्सा सुविधाओं में मात्रात्मक एवं गुणात्मक वृद्धि से मृत्यु दर में कमी आई है।
12. शिक्षा एवं चिकित्सा सुविधाओं ने प्रजनन दर में कमी की है।
13. गुणवत्तापूर्ण जीवन स्तर तथा पोषण में वृद्धि ने जीवन प्रत्याशा में वृद्धि की है।
14. प्रति व्यक्ति औसत आय में बढ़ोतरी हुई है।
15. सम्पन्नता में वृद्धि तथा आकांक्षा ने गतिशीलता में वृद्धि की है।
16. वंशानुगत नेतृत्व के स्थान पर प्रजातांत्रिक एवं निर्वाचित नेतृत्व का विस्तार हुआ है।
17. परम्परागत संचार के साधनों के स्थान पर संचार के आधुनिकतम साधनों जैसे–इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, सोशल मीडिया, इन्टरनेट का विस्तार हुआ है।
18. समाज की प्रकृति अधिकाधिक लोकतांत्रिक हो रही है।
19. मौखिक के स्थान पर लिखित साहित्य की प्रचुरता हुई है।
20. महिलाओं एवं वंचित वर्गों को समाज की मुख्यधारा में आने के अवसर बढ़े हैं।
21. परम्परा द्वारा वंशानुगत प्रभुत्व के स्थान पर गुण एवं योग्यता पर आधारित प्रभुत्व बढ़ रहा है।
22. भाई-भतीजावाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद जैसी संकीर्णताओं के स्थान पर राष्ट्रवादी भावनाओं में वृद्धि हुई है।
23. धार्मिक कट्टरता के स्थान पर धर्मनिरपेक्षता में वृद्धि हुई है।
24. धर्म, प्रजाति, लिंग, रंग आदि के आधार पर भेदभाव तथा छुआ-छूत समाप्ति की ओर है।
25. वयस्क मताधिकार ने राजनीति के क्षेत्र में खुली प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया है।
26. संयुक्त परिवार के स्थान पर एकाकी परिवारों की संख्या में इजाफा हुआ है।
27. बाल विवाह रोकथाम, विधवा पुनर्विवाह, स्त्री सम्पत्ति अधिकार, उत्तराधिकार, सती प्रथा निरोधक तथा छूआ-छूत निषेध अधिनियमों ने परम्परागत भारतीय समाज में आधुनिकता का मार्ग प्रशस्त किया है।
28. भारत में नारी मुक्ति आंदोलन ने गति पकड़ी है। परिणामस्वरूप सार्वजनिक जीवन के सभी पक्षों में महिलाओं की सहभागिता बढ़ी है।
29. लोगों की कृषि पर निर्भरता कम हुई है तथा सेवा क्षेत्र की ओर रुझान बढ़ा है।
30. जागीरदारी एवं जमींदार प्रथा का उन्मूलन हुआ है तथा जातीय पंचायतों का महत्व कम हुआ है।
31. नागरिकों के जीवन में सामाजिक नियम से राजकीय कानून ज्यादा प्रभावी हो रहे हैं।
32. प्राचीन संस्थाओं जैसे जजमानी प्रथा, पड़ोस, जातीय पंचायत के स्थान पर नवीन संस्थाओं का उद्‌भव हुआ है।
33. पूँजीवादी व्यवस्था में निरन्तर आर्थिक प्रगति के लिए सजग रहने से तनाव एवं संघर्षों में वृद्धि हुई है।
34. समाज, ज्ञान ही सद्‌गुण है से सूचना ही सद्‌गुण है, की तरफ बढ़ा है।
35. लोगों का विज्ञान की तरफ रुझान बढ़ा है।
36. प्रशिक्षण द्वारा मानव श्रम की दक्षता निर्माण की प्रवृत्ति बढ़ी है।
37. ऐश्वर्य एवं सम्पन्नता की चाह ने उपभोगवाद को बढ़ाया है।
38. लघु-उद्योगों/कुटीर उद्योगों के स्थान पर वृहद् उद्योगों तथा कारखानों का निर्माण हुआ है।
39. भौगोलिक दूरी में कमी हुई है (यातायात के आधुनिकतम साधनों के कारण)
40. तस्करी, तलाक के मामले, नशीले पदार्थों का सेवन, पारिवारिक तनाव जैसी घटनाओं में वृद्धि हुई है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. औद्योगीकरण

एक प्रक्रिया जिसमें वस्तुओं का उत्पादन हस्त-उपकरणों के स्थान पर निर्जीव शक्ति द्वारा संचालित मशीनों के आधार पर किया जाता है। शक्ति संचालित मशीनों का प्रयोग न केवल कारखानों, अपितु यातायात, संचार, परिवहन तथा खेती आदि में किया जाता है। औद्योगीकरण ने वृहत आधार पर श्रम विभाजन, विशेषीकरण, पूँजी के मालिकों, प्रबन्धकों और कामगारों के मध्य नवीन उत्पादन सम्बन्ध, नगरीकरण तथा उद्योग और जनसंख्या के भौगोलिक केन्द्रीकरण तथा व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन किये हैं।

औद्योगीकरण का सम्बन्ध यांत्रिक उत्पादन के उदय से है जो शक्ति के गैरमानवीय संसाधन जैसे वाष्प अथवा विद्युत पर निर्भर करता है। यह आधुनिक समाज की एक प्रमुख विशेषता है। इसने सम्पूर्ण विश्व में सामाजिक अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तन किया है। मूल रूप से औद्योगीकरण एक आर्थिक प्रक्रिया है पर इसका सामाजिक परिणाम बहुत दूरगामी होता है। औद्योगीकरण के चलते अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक संरचना में बड़ा बदलाव आया है।

17 वीं से लेकर 18 वीं शताब्दी के बीच में यूरोप में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काफी विकास हुआ जिसके परिणामस्वरूप लगभग 1760 के आसपास ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। औद्योगिक क्रांति के द्वारा मशीनों से उत्पादन प्रारम्भ हुआ। श्रमिकों के स्थान पर मशीनों ने कम समय में अधिक (कई गुना ज्यादा) उत्पादन प्रारम्भ कर दिया। यूरोप विशेषकर ब्रिटेन के लोगों ने बढ़े हुए उत्पादन के लिए बाजार तथा नये उत्पादन हेतु कच्चे माल हेतु नवीन उपनिवेश स्थापित किए। औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया ने ब्रिटेन एवं यूरोप में औद्योगीकरण की ओर बढ़ावा प्रदान किया।

ब्रिटेन औद्योगीकरण करने वाला पहला समाज बना जिसमें सर्वप्रथम लोग ग्रामीण से नगरीय बने। सन् 1800 में 10 हजार की आबादी वाले कस्बों तथा शहरों में कुल जनसंख्या के 20 फीसदी लोग निवास करते थे। 1900 तक आते-आते 74 फीसदी लोग शहरों में रहने लग गए। लंदन बीसवीं सदी के प्रारम्भ तक 7 करोड़ के आस-पास की आबादी वाला विश्व का सबसे बड़ा नगर बन गया। यह औद्योगीकरण का केन्द्र बन गया था।

औद्योगीकरण का भारतीय समाज पर प्रभाव

यूरोप विशेषकर ब्रिटेन जब तीव्र औद्योगीकरण की राह पर अग्रसर था, उस समय भारत ब्रिटिश उपनिवेश था अतः भारत पर ब्रिटिश औद्योगीकरण का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। भारत में सस्ते कपड़े (पावरलूम) और मशीन निर्मित औजारों के निर्बाध आयात तथा ब्रिटिश नेतृत्व वाले उद्योगों की स्थापना ने देशी ग्रामीण उद्योगों को नष्ट प्रायः कर दिया। ग्रामीण कारीगर अलाभकारी व्यवसाय को छोड़कर कृषि की तरफ झुक गए। प्रारम्भ में ब्रिटिश औद्योगीकरण का आश्चर्यजनक ढंग से भारत पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। भारत के कुछ क्षेत्रों का विऔद्योगीकरण हुआ। भारत के परम्परागत औद्योगिक केन्द्रों का पतन हो गया। सूरत, ढाका, तंजौर, मुर्शिदाबाद, मसुलीपट्टनम का 'मेनचेस्टर प्रतियोगिता' के चलते अस्तित्व कमजोर होने लगा। ब्रिटिश संरक्षण के चलते मेनचेस्टर में बने कपड़े भारत की उच्च कोटि की रेशम की तुलना में अत्यन्त सस्ते थे। इस कारण भारत में बने हुए माल की मांग समाप्त हो गयी। अंग्रेजों के नेतृत्व में कुछ नए क्षेत्रों में उद्योग लगाए गए जिससे इन क्षेत्रों की जनसंख्या में वृद्धि हुई। बम्बई (मुम्बई), मद्रास (चेन्नई) तथा कलकत्ता (कोलकाता) का अंग्रेजों ने व्यापार अथवा कच्चे माल को ब्रिटेन भेजने की दृष्टि से तथा निर्मित माल को भारत लाने की दृष्टि से विकास किया। मुम्बई से कपास, कोलकाता से जूट (पटसन) तथा चेन्नई से कहवा, चीनी, नील और कपास ब्रिटेन को भेजा जाता था।

जहां-जहां अंग्रेजों का प्रवेश शीघ्र तथा बड़ी संख्या में हुआ वहाँ-वहाँ स्थानीय शिल्प एवं उद्योग शीघ्रता से समाप्त हो गए। पूर्वी भारत जिसमें अंग्रेजों का सम्पर्क देर से हुआ, वहाँ पर देर तक ग्राम्य शिल्प अस्तित्व में रहा। ब्रिटिश काल में रेलवे के विस्तार ने भी भारतीय उद्योग धन्धों पर नकारात्मक प्रभाव डाला। ब्रिटेन में औद्योगीकरण के प्रभाव से अधिकतर लोग नगरों की तरफ आए जबकि भारत में प्रारम्भ में व्यवसाय के अलाभकारी होने के कारण लोगों को खेती की तरफ जाना पड़ा। इस प्रकार औद्योगीकरण का अभिप्राय भारतीय संदर्भ में मशीनों से उत्पादन बढ़ाने से ही नहीं अपितु नए सामाजिक समूहों तथा नए सामाजिक सम्बन्धों के उद्भव से भी है। औद्योगीकरण के प्रारम्भिक दौर में भारतीय सामाजिक संरचना में व्यापक बदलाव हुए।

औपनिवेशिक काल में पुराने शहरों का उनकी व्यावसायिक गतिविधियाँ ठप पड़ने से अस्तित्व कमजोर हो गया तथा इनकी जगह नए औपनिवेशिक शहरों का उद्भव और विकास हुआ। ब्रिटिश भारत में कोलकाता (तत्कालीन कलकत्ता) पहला ऐसा नगर था। सन् 1690 में जॉब चारनॉक नाम के अंग्रेज व्यापारी ने हुगली नदी के तट के तीन गाँव-कोलीकाता, गोविन्दपुर तथा सुतानुती को व्यापार का केन्द्र बनाने के लिए पट्टे पर लिया। 1698 में फोर्ट विलियम की स्थापना रक्षा एवं सैन्य ठिकाने का विकास के उद्देश्य से की गई। इस प्रकार इस नगर का विस्तार हुआ।

ब्रिटिश हितों के चलते भारत में औपनिवेशिक काल में उस प्रकार का औद्योगीकरण नहीं हुआ, जिस प्रकार का ब्रिटेन में हुआ था। अंग्रेजों ने भारत में उद्योग-धंधे नहीं लगाये अथवा लगाने की अनुमति नहीं दी जो ब्रिटेन में कुशलता से चल रहे थे। अपितु भारत में स्वयं के नेतृत्व में वे व्यवसाय/धन्धे पनपाये जो ब्रिटेन में श्रम, जलवायु, परिवहन आदि के कारण अलाभकारी थे। इसी प्रकार का एक उद्योग प्रमुखतः था चाय की बागवानी।

औपनिवेशिक सत्ता ने मजदूरों से बलपूर्वक सस्ती दरों पर काम लिया। ब्रिटेन एक प्रजातांत्रिक देश था, लेकिन उपनिवेशों में उसने

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लोकतंत्र के मूल्यों को ताक पर रखकर अपने नागरिकों, जो कि भारत में बागान मालिक थे, के हितों की अधिकतम पूर्ति हेतु कार्य किया। भारत में 1851 में असम में चाय उद्योग का प्रारम्भ हुआ। 1903 तक उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर असम में 4,79,000 स्थायी और 93,000 अस्थायी लोगों को चाय बागानों में काम पर रखा गया। असम में इतने लोग कार्य हेतु उपलब्ध नहीं थे तथा बागानों की अस्वास्थ्यकर स्थितियों के कारण इलाज में खर्चा भी अधिक होता था। इस व्यय के लिए बागान मालिक एवं ठेकेदार सहमत नहीं थे। अंग्रेजों ने इन स्थितियों से निपटने के लिए ऐसे कानून बनाए कि गरीब मजदूरों के पास कोई विकल्प नहीं बचा। अंग्रेजों ने ट्रांसपोर्ट ऑफ नेटिव लेबरर्स एक्ट (नं. 111) 1863, जिसका 1865, 1870 और 1873 में संशोधन किया गया, का प्रयोग करके मजदूरों को प्रलोभन, बल, भय के द्वारा असम भेजा । श्रम एवं उत्प्रवासी विधेयक, 1901 असम लेबर एण्ड इमीग्रेशन में प्रावधान किया गया कि मजदूर चार साल के लिए असम में मजदूरी करने के अलावा कुछ नहीं कर सकते। अगर कोई मजदूर इस निर्देश का पालन नहीं करता है तो उसे जेल हो सकती है। दूसरी तरफ बागानों के मालिक अंग्रेजों का रहन-सहन शाही तथा विलासिता से भरपूर था।

स्वतंत्र भारत में औद्योगीकरण– भारतीय राष्ट्रवादियों के लिए औपनिवेशिक शासन के दौरान हुआ आर्थिक शोषण एक केन्द्रीय मुद्दा था। उनका विचार था कि तीव्र एवं वृहद् स्तर के औद्योगीकरण द्वारा आर्थिक स्थिति में आवश्यक सुधार किया जा सकता है। परिणामस्वरूप भारी मशीनीकृत उद्योग-धन्धों का विकास हुआ। रूई, जूट, कोयला खानें एवं रेलवे भारत के प्रथम आधुनिक उद्योग थे। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने तीव्र आर्थिक विकास का लक्ष्य रखा। इसमें सुरक्षा, परिवहन, संचार, ऊर्जा, खनन आदि परियोजनाओं को सम्मिलित किया गया। सरकार ने मिश्रित आर्थिक नीति को अपनाया जिसमें कुछ क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र (सरकार) के लिए आरक्षित रखे तथा कुछ निजी क्षेत्रों के लिए खुले रखे। स्वतंत्रता के पश्चात् मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई के अतिरिक्त बड़ौदा (बड़ोदरा), कोयम्बटूर, बैंगलौर (बेंगलूरु), पूना, फरीदाबाद, राउरकेला, बोकारो, भिलाई, दुर्गापुर आदि भी महत्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र बन गए। सरकार ने लघु एवं कुटीर उद्योगों को भी विशिष्ट सहयता प्रदान कर प्रोत्साहित किया। 1991 तक कुल कार्यकारी जनसंख्या में से केवल 28 फीसदी बड़े उद्योगों में कार्यरत थे, जबकि 72 फीसदी लघु एवं कुटीर तथा परम्परागत उद्योगों में कार्यरत थे।

भारत वर्तमान में भी एक कृषि प्रधान देश है। सेवा क्षेत्र-दुकानें, बैंक, आई.टी. उद्योग, होटल्स तथा अन्य सेवाओं के क्षेत्र में, अधिक लोग आ रहे हैं और नगरीय मध्य वर्ग की संख्या में वृद्धि हुई है। नगरीय मध्य वर्ग के मूल्यों में भी बदलाव दिखाई दे रहा है। सरकारी रोजगार के स्थान पर निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ रही है। सरकार भी उद्योग लगाने के लिए भूमि अधिगृहण की नीति पर आगे बढ़ रही है। अधिग्रहण (जबरन) के विरुद्ध आन्दोलन भी किसानों तथा आदिवासियों के द्वारा देखे जा रहे हैं।

भारत में औद्योगीकरण के निम्न परिणाम दृष्टिगत हुए हैं–

1. उत्पादन का व्यापारीकरण हुआ है।
2. जीवन निर्वाह अर्थव्यवस्था समाप्ति की ओर।
3. मशीनी उत्पादन की प्रधानता बढ़ी है।
4. खेती पर निर्भर श्रमिकों के अनुपात में गिरावट आई है।
5. नगरीकरण में वृद्धि हुई है।
6. शिक्षा का प्रसार हुआ है।
7. जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में तकनीक एवं विज्ञान के प्रयोग में वृद्धि।
8. लोकतंत्र का विकास एवं प्रसार हुआ है।

सारांशत: यह कहा जा सकता है कि औद्योगीकरण ने समाज पर व्यापक प्रभाव डाला है जो निश्चित रूप से प्राचीन एवं मध्य युगीन समाज से भिन्न प्रकार का है। औद्योगीकरण के कारण लोगों का जीवन स्तर सुधरा है साथ ही इसके कारण बहुत प्रकार की नवीन समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं।

नगरीकरण– नगरीकरण से अभिप्राय ऐसी प्रक्रिया से है जिसके माध्यम से–

1. प्रव्रजन/देशान्तरण के माध्यम से शहरी जनसंख्या में वृद्धि हो।
2. खेती आधारित व्यवसायों के स्थान पर औद्योगिक व्यवसायों की ओर रुझान हो।
3. कृषि प्रधान ग्रामीण एवं प्रकृति से जुड़े भूदृश्य से नगरीय भूदृश्य की तरफ परिवर्तन।
4. कुल जनसंख्या में ग्रामीण की तुलना में शहरी आबादी में तेजी से बढ़ोतरी।
5. जनसंख्या के बड़े भाग द्वारा नगरीय जीवनशैली को अपनाना।
6. प्राचीन नगरों की जनसंख्या में वृद्धि तथा नवीन नगरों की उत्पत्ति होती है।

नगरीकरण की विशेषताएँ– नगरीकरण की प्रक्रिया की निम्न विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं–

1. श्रम विभाजन तथा श्रम विशिष्टीकरण।
2. मशीनों द्वारा उत्पादन एवं कार्य सम्पादन।
3. जीवन में द्वितीयक समूहों तथा संगठनों की भूमिका में वृद्धि।
4. सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि।
5. व्यवहार में कृत्रिमता, दिखावा तथा परिवर्तन।
6. संचार तथा आवागमन के आधुनिकतम साधन।
7. भागदौड़ भरा तथा मशीनी जीवन।
8. पहचान का संकट।
9. समझौतावादी एवं समायोजनवादी मानवीय प्रवृत्ति।
10. प्रस्थितिगत असंतोष एवं अस्थिरता।
11. अविश्वास तथा हर समय ठगे जाने के भय से आक्रान्त।
12. प्रत्येक कार्य लिखित संविदा के माध्यम से।
13. सुरक्षा के लिए चिन्ताग्रस्त।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

14. प्रदूषण एवं अवसादजनित तथा जीवन शैली से सम्बन्धित शारीरिक समस्याएँ।
15. कर्तव्य के स्थान पर अधिकारों के प्रति ज्यादा संवेदनशीलता।
16. बेहतर चिकित्सा सुविधाएँ।

उपर्युक्त विशेषताएँ नगरीय आबादी को ग्रामीण आबादी से अलग करती हैं।

भारत की जनगणना 2011 के अनुसार भारत में कुल आबादी का 31.16फीसदी नगरीय आबादी है जो कि आजादी के बाद की प्रथम जनगणना 1951 में 17.29 फीसदी थी। इस प्रकार पिछले 60 वर्षों में (2011त क)भ ारतक ेक ुलआ बादीम ेंग्रामीणआ बादीक ाहिस्सा लगातार कम हो रहा है एवं नगरीय आबादी का हिस्सा बढ़ रहा है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में एक लाख एवं इससे अधिक तथा दस लाख से कम की आबादी वाले शहरों की संख्या 412 थी। दस लाख से 1 करोड़ के बीच की आबादी वाले महानगरों की संख्या 53 थी तथा 1 करोड़ से अधिक की आबादी वाले महा-महानगर (MegaCities/ Megalopolis) की संख्या 3 थी। एक करोड़ (10 मिलियन) से अधिक की जनसंख्या वाले मेगा सिटी निम्न प्रकार हैं–

1. ग्रेटर मुम्बई	1,83,94,912
2. दिल्ली	1,63,49,831
3. कोलकाता	1,40,35,959

(**स्रोत :** भारत की जनगणना-2011)

भारत में नगरीकरण के प्रभाव– आधुनिक नगरीकरण ने विश्व स्तर पर हमारी संस्कृति को व्यापक ढंग से प्रभावित किया है। लोगों के मानदण्ड एवं मूल्य बदले हैं। परम्परावादी के स्थान पर वैज्ञानिक सोच का विकास हुआ है। शहरों में एक प्रकार की कोस्मोपोलिटन (सर्वदेशीय) सोच तथा मिश्रित संस्कृति का विकास हो रहा है। भारत के नगरों में नगरीय सामाजिक संरचना में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं–

1. जातिगत व्यवसाय में परिवर्तन– परम्परागत जाति व्यवस्था शहरोंम ेंअ भीभ ीव िद्यमानह ैज ातिक ीप ेशागतव िशेषताम ेंउ तना अधिक परिवर्तन दिखाई नहीं पड़ता जितना अपेक्षित था। ब्राह्मण, बनिया, खाती, सुनार, लुहार, धोबी, मोची, नाई जैसी सैकड़ों जातियाँ शहरों में अपनेप रम्परागतव ्यवसायोंक ेम ाध्यमस ेज ीवन-यापनक रर हीह ैं। आंशिक व्यवसायगत परिवर्तन दिखलाई पड़ता है जैसे कुछ ऊँची जाति वाले लोगों ने जूते की दुकान, सैलून अथवा लॉण्ड्री खोली है। व्यापार पर अब वैश्यों (बनियों) का एकाधिकार नहीं रहा है। ब्राह्मणों के व्यवसाय पर अभी भी उनका एकाधिकार बना हुआ है।

2. अस्पृश्यता की भावना में कमी– भारत में सामाजिक दूरी की अवधारणा प्रचलित रही है। मानव के शरीर के स्पर्श की तो दूर की बात है, उसकी छाया तक से दूर रहने की परम्परा रही है। ऊँची जातियों द्वारा निम्न जातियों के साथ किये जाने वाले भेदभावपूर्ण व्यवहार में शहरों में बदलाव आया है। आज ब्राह्मण एवं दलित एक ही होटल में खाना खाते हैं। एक ही वाहन में यात्रा करते हैं। दलित अधिकारी के मातहत ब्राह्मण कर्मचारी काम करते हैं। इस प्रकार आधुनिक शिक्षा, विज्ञान, औद्योगीकरण तथा नगरीकरण के कारण समाज में व्यापक बदलाव देखने को मिल रहे हैं।

3. जातिवादी भावना में अभिवृद्धि– नगरीकरण के कारण जहाँ एक ओर अस्पृश्यता तथा जातिगत व्यवसायों में बदलाव देखने को मिला है, वहीं जातिवाद रूपान्तरित स्वरूप में अधिक कठोर होकर उभरता प्रतीत हो रहा है। पढ़े-लिखे लोगों द्वारा जाति के आधार पर संगठन एवं सभाएँ निर्मित की जा रही हैं।

4. परिवार के स्वरूप एवं आकार में बदलाव– गाँवोंक ी तुलना में शहरों में संयुक्त तथा विस्तृत परिवार का विघटन ज्यादा हुआ है। नगरों में एकाकी परिवार ज्यादा प्रचलित है। शहरों में नातेदारी के बंधन ढीले पड़ रहे हैं, परिणामस्वरूप परिवार छोटे होने लग गए हैं। भारत की जनगणना के प्रतिवेदनों से स्पष्ट है कि शहरी परिवार आकार में छोटे होने की ओर अग्रसर हैं।

5. ग्रामीण-शहरी सम्बन्ध– भारतीय शहरों में ग्रामीण जीवन भी जहाँ-तहाँ देखने को मिल ही जाता है। जितना छोटा शहर उतना ही अधिक ग्रामीण प्रभाव। भारत में ग्रामीण तथा नगरीयता दोनों साथ-साथ दिखाई पड़ते हैं।

6. द्वितीयक समूहों तथा संस्थानों के प्रभाव में वृद्धि– नगरीय क्षेत्रों में प्राथमिक समूहों तथा संस्थाओं का प्रभाव सामाजिक जीवन में कम हो रहा है तथा द्वितीयक समूहों एवं संस्थाओं का प्रभाव बढ़ता दिखाई दे रहा है। शहरी आबादी की अधिकाँश आवश्यकताओं की पूर्ति द्वितीयक समूहों व संस्थाओं के माध्यम से होती है तथा जीवन में परिवार, पड़ौस, समुदाय की भूमिका कम हो रही है। शहरों में सामुदायिक भावना अथवा हम की भावना के स्थान पर व्यक्तिवादी भावना में वृद्धि हो रही है।

7. इन्द्रियपरक संस्कृति का प्रभाव– नगरीय जीवन में खाओ-पीओ, मौज उड़ाओ की संस्कृति अथवा चार्वाक संस्कृति हावी होती जा रही है। भारतीय जीवन-दर्शन में परम्परागत रूप से लोगों की जीवनशैली आध्यात्मिक रही है, लेकिन नगर के विकास एवं प्रसार ने पश्चिमी मूल्यों को बढ़ावा दिया है जिससे रुग्ण उपभोक्तावादी, भौतिकवादी जीवनशैली का विकास हुआ है।

8. नवीन व्यवसायों की उत्पत्ति तथा खेती में व्यावसायीकरण में वृद्धि– नगरीकरण के प्रभाव से शहरी क्षेत्र के आसपास के गाँवों में नये व्यवसायों का प्रादुर्भाव हुआ है। मत्स्य पालन, मुर्गी-पालन, दुग्ध व्यवसाय, फल एवं सब्जी उत्पादन, फूलों की खेती के साथ-साथ छोटे-छोटे मशीनी उद्योग भी अस्तित्व में आए हैं।

9. उपभोक्ता संस्कृति का प्रसार– नगरीकरण की प्रक्रिया के विस्तार ने उपभोक्ता संस्कृति का प्रसार किया है। वर्तमान में गाँवों में टीवी, फ्रिज, कूलर, मोटरगाड़ी, सिलाई मशीन, विद्युत चलित कृषि यंत्र, फैंसी वस्त्र, प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ, शीतल पेय (बहुराष्ट्रीय कम्पनी निर्मित) आसानी से उपलब्ध हैं। शहरी प्रभाव ने गाँवों में भौतिक सुख-सुविधाओं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

में वृद्धि की है तथा लोगों में उपभोग की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है।

10. आधुनिक एवं अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव– नगर आधुनिक एवं अंग्रेजी शिक्षा के केन्द्र हैं। इनके प्रभाव से गाँवों में भी आधुनिक औपचारिक शिक्षा का प्रभाव बढ़ा है। गाँव के लोग भी शिक्षा प्राप्त कर सरकारी नौकरी में आकर अपनी जीवन की दशाओं में बदलाव चाहते हैं। इस आकांक्षा ने जिसमें वे शहरी सुख-सुविधाओं वाले जीवन को जीना चाह रहे हैं, आधुनिक शिक्षा की मांग में वृद्धि की है।

11. जजमानी प्रथा की समाप्ति– नगरीकरण ने जजमानी प्रथा एवं सेवा के बदले सेवा तथा वस्तुविनिमय व्यवस्था को समाप्त कर दिया है। अब काम के बदले नकद पारिश्रमिक तथा मुद्रा विनिमय का प्रचलन हो गया है। जजमानी प्रथा में सेवा करने वाली जातियों ने अपने पेशों का आधुनिकीकरण कर दिया है। नगरीकरण ने जातिगत पेशों में बदलाव किया है। शहरों में व्यवसाय सम्बन्धी गतिशीलता बढ़ी है।

12. अंधविश्वासों में कमी– भारत में परम्परागत समाज में अंधविश्वासों की बहुलता दैनिक जीवन में पाई जाती थी। आधुनिक वैज्ञानिक सोच तथा तकनीक के प्रयोग ने जो आधुनिक नगरों की पहचान है, अंधविश्वासों में कमी की है। शहर के साथ-साथ गाँव भी नवीन विचार एवं वैज्ञानिक सोच से ओत-प्रोत हो रहे हैं।

13. आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से परम्परावादी सोच में बदलाव– नगरीकरण के माध्यम से आधुनिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो रहा है, जिसके परिणामस्वरूप शहर एवं गाँव में बहुआयामी परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। शिक्षा के प्रसार एवं प्रभाव ने छोटा परिवार, विधवा विवाह, वयस्क विवाह, स्त्री-पुरुष समानता, व्यवसायों के चयन की स्वतंत्रता तथा आर्थिक गतिशीलता के विचार को समर्थन तथा गति प्रदान की है। वर्तमान में जीवन-साथी चयन में लड़कियों की भूमिका बढ़ी है। निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं की सहभागिता में वृद्धि हुई है। अन्तर्जातीय विवाह, न्यायालयों में विवाह, तलाक के मामले बढ़े हैं। जीवन में नैतिक मूल्यों में गिरावट आई है, कालाबाजारी, घूसखोरी, मिलावटखोरी एवं बेईमानी में वृद्धि हुई है।

14. महिला सशक्तीकरण– महिलाओं की स्थिति में काफी बदलाव आया है। उच्च शिक्षा, रोजगार तथा प्रजातांत्रिक मूल्यों ने महिला स्वतंत्रता को प्रोत्साहन दिया है। शहरों में पर्दा प्रथा कम हो रही है। मुस्लिम सम्प्रदाय में भी उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं में बुर्का पहनने की प्रथा में कमी देखी जा रही है। सार्वजनिक जीवन में महिलाओं की उपस्थिति बढ़ी है। घरेलू मामलों में भी महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है। नगरीय क्षेत्रों में पितृसत्तात्मक मूल्यों में ह्रास देखने को मिला है तथा महिलाओं की भागीदारी बढ़ी है।

15. धर्म का राजनीति में हस्तक्षेप– नगरीकरण की प्रक्रिया में धर्म का सामाजिक क्षेत्र के स्थान पर राजनीतिक क्षेत्र में हस्तक्षेप बढ़ा है। वोट की राजनीति ने अपने स्वार्थों की (मत एवं समर्थन प्राप्त करने की) पूर्ति हेतु धर्म का उपयोग बढ़ता जा रहा है। राजनीतिक दल वोटों की खातिर तुष्टिकरण की राजनीति को बढ़ावा दे रहे हैं। धर्म व्यक्तिगत आस्था एवं विश्वास का मामला मात्र नहीं रह गया है।

16. कर्मकाण्ड के प्रभाव में कमी– नगरीकरण में आधुनिक शिक्षा के प्रभाव ने धर्म में कर्मकाण्ड की महत्ता को कम किया है। वर्तमान समय में शहरों में कर्मकाण्ड के स्थान पर भक्ति, श्रद्धा और उपासना में वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप धर्म पर धर्मगुरुओं का प्रभाव थोड़ा कम हुआ है। लोग अंधविश्वास के स्थान पर धर्म में भी तर्क ढूँढने लग गए हैं।

17. मेधा पलायन (Brain drain)– नगरीकरण ने मेधा-पलायन को बढ़ावा दिया है। गाँवों की अपेक्षा शहरों में आधारभूत सुविधाओं की उपलब्धता, नौकरी तथा आर्थिक उन्नति के अवसरों ने ग्रामीण मेधा को नगरों की तरफ आकर्षित किया है।

18. अर्थ पलायन (Economic-drain) को बढ़ावा– मेधा पलायन के साथ-साथ गाँवों से शहरों की तरफ अर्थ पलायन भी बढ़ा है। शहरों में प्रगति, विकास, विलासिता, सुख-सुविधाओं के साधनों की उपलब्धता, तरक्की के सपने आदि देखकर गाँव के लोग अपनी पूँजी का निवेश शहरों में कर रहे हैं जिससे गाँवों में पूँजी की निकासी तेज हुई है।

19. आर्थिक साम्राज्यवाद अथवा आर्थिक उपनिवेशवाद– धन की निकासी गाँव से शहर की ओर होने तथा गाँवों में पूँजी का अभाव होने से अब शहरी लोग ग्रामीण अर्थतन्त्र पर प्रभावी हो गए हैं। जो गाँव में अग्रणी पंक्ति (आर्थिक दृष्टि से) के लोग थे। वे अब शहरों में रहने लग गए हैं, वे अपनी ग्रामीण सम्पत्ति की देखभाल अथवा कृषि दूसरों को ठेके पर देने लग गए हैं।

20. विश्व्यापीकरण का प्रभाव– नगरीकरण की प्रक्रिया ने हमारे जीवन में विश्वव्यापीकरण को बढ़ावा दिया है। नगरों में आधुनिकतम तकनीक तथा संचार के साधनों (प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया) की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता ने वैश्विक दूरियों (ज्ञान एवं भौतिक सुविधाओं के संदर्भ में) को कम करके विश्व को एक ग्राम में तब्दील किया है। अब उपर्युक्त कारणों/विशेषताओं से ग्राम एवं शहर के मध्य की दूरियाँ कम हो रही हैं।

उपर्युक्त के अतिरिक्त नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के कुछ नकारात्मक अथवा दुष्कार्यात्मक परिणाम भी देखने को मिलते हैं। विभिन्न प्रकार की सफेदपोश बेईमानी, मादक द्रव्यों का प्रयोग, घूसखोरी, अपराध, तलाक, तस्करी, कालाबाजारी, मिलावटखोरी, जातीय एवं साम्प्रदायिक तनाव, प्राथमिक समूहों का विघटन, दुर्घटनाएँ, प्रदूषण, अपहरण आदि अनेक नकारात्मक घटनाओं के दर्शन होते हैं। शहरी जीवन तनावों एवं अशांति से भरपूर हो गया है। गाँवों की तुलना में शहरी आबादी में मानसिक रोग एवं हृदय तथा कर्क रोग जैसी जीवनशैली सम्बन्धित बीमारियाँ काफी देखने को मिल रही हैं। फिर भी बढ़ती हुई आबादी की सुख-सुविधाओं से सम्बन्धित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया निर्बाध गति से जारी है।

नगरीकरण एवं औद्योगीकरण व्यापक प्रक्रियाएँ हैं जिनके साथ,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास, आधुनिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार, पश्चिमीकरण, संस्कृतीकरण, आधुनिकीकरण तथा वर्तमान में उदारीकरण, निजीकरण एवं विश्वव्यापीकरण सम्बद्ध हैं। ये सभी नगरीकरण एवं औद्योगीकरण को प्रभावित कर रहे हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है।
- विगत दो शताब्दियों में भारतीय समाज की संरचना में व्यापक बदलाव हुए हैं।
- अंग्रेजों ने भारत में परम्परागत भू-स्वामित्व, फसल चक्र, फसल निर्धारण, उत्पादन प्रणाली, वितरण व्यवस्था में बदलाव किया।
- परम्परा में सामान्यत: परिवर्तन के प्रति विरोध पाया जाता है।
- एडवर्ड शील्स के अनुसार परम्परागत समाज न तो पूर्णतया परम्परागत है और न आधुनिक समाज पूर्णतया परम्परामुक्त।
- आधुनिकता सोचने-समझने का एक विशिष्ट दृष्टिकोण होता है।
- भारतीय समाज की प्रकृति लोकतांत्रिक हो रही है।
- भारत में नारी-मुक्ति आन्दोलन ने गति पकड़ी है परिणामस्वरूप सार्वजनिक जीवन के सभी पक्षों में महिलाओं की सहभागिता बढ़ी है।
- लोगों का विज्ञान की तरफ रुझान बढ़ा है।
- ऐश्वर्य एवं सम्पन्नता की चाह ने उपभोगवाद को बढ़ाया है।
- औद्योगीकरण ने ग्रामीण कुटीर उद्योग-धन्धों पर नकारात्मक प्रभाव डाला।
- जहाँ-जहाँ अंग्रेजों का प्रवेश शीघ्र तथा बड़ी संख्या में हुआ, वहाँ-वहाँ स्थानीय शिल्प एवं उद्योग शीघ्रता से समाप्त हो गये।
- अंग्रेजों ने प्रारम्भ में भारत में ब्रिटिश हितों की पूर्ति करने वाले उद्योग-धन्धे लगाये।
- अंग्रेजों ने भारत में ट्रांसपोर्ट ऑफ नेटिव लेबरर्स एक्ट के द्वारा भारतीय मजदूरों का शोषण किया।
- स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में औद्योगीकरण से जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में तकनीक एवं विज्ञान के प्रयोग में वृद्धि हुई है।
- 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में दस लाख से 1 करोड़ के मध्य की जनसंख्या वाले महानगरों की संख्या 53 हो गई है।
- वर्तमान में भारत में तीन मेगा सिटी-ग्रेटर मुम्बई, दिल्ली एवं कोलकाता हैं।
- नगरीकरण ने भारतीय परिवार के आकार में बदलाव किया है।
- नगरों में इन्द्रियपरक संस्कृति का प्रभाव देखने को मिलता है।
- नगरीकरण ने नवीन व्यवसायों को जन्म दिया है।
- नगरीय क्षेत्रों में अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव बढ़ता दिखाई दे रहा है।
- नगरीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जजमानी प्रथा समाप्ति की ओर है।
- वर्तमान भारत में महिलाओं की प्रस्थिति में सकारात्मक बदलाव आया है।
- नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के नकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिलते हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरीय आबादी में मानसिक रोग तथा हृदय एवं तनाव से सम्बन्धित समस्याएँ बढ़ी हैं।
- नगरीकरण एवं औद्योगीकरण ने प्राथमिक समूहों के स्थान पर द्वितीयक समूहों को बढ़ावा दिया है।

अभ्यासार्थ प्रश्न—

वस्तुनिष्ठ प्रश्न—

1. आजादी से पहले भारत के लोगों में गतिशीलता को किसने बढ़ाया?
   (अ) अंग्रेजों ने (ब) फ्रांसीसियों ने
   (स) पुर्तगालियों ने (द) डचों ने
2. 'मॉडर्नाईजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडीशन्स' पुस्तक के लेखक कौन हैं?
   (अ) श्रीनिवास (ब) योगेन्द्र सिंह
   (स) दुबे (द) इनमें से कोई नहीं
3. भारतीय सनातन परम्परा में जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या घोषित किया गया है?
   (अ) धर्म (ब) अर्थ
   (स) मोक्ष (द) काम
4. योगेन्द्र सिंह ने आधुनिकता के कितने लक्षण बताये हैं?
   (अ) एक (ब) दो
   (स) तीन (द) चार
5. तकनीक ने भौगोलिक दूरी को......................है।
   (अ) बढ़ाया (ब) कम किया
   (स) बदलाव नहीं (द) इनमें से कोई नहीं
6. पारिवारिक तनाव को किसने बढ़ाया है?
   (अ) नगरीकरण (ब) औद्योगीकरण
   (स) दोनों ने (द) इनमें से कोई नहीं
7. ब्रिटेन में औद्योगिक क्रान्ति का सूत्रपात कब हुआ?
   (अ) 1560 के आसपास (ब) 1460 के आसपास
   (स) 1760 के आसपास (द) 1860 के आसपास
8. लन्दन की आबादी बढ़ने का कारण क्या था?
   (अ) पश्चिमीकरण (ब) संस्कृतिकरण
   (स) औद्योगीकरण (द) इनमें से कोई नहीं
9. ब्रिटिश भारत में औद्योगीकरण का प्रारम्भिक प्रभाव क्या पड़ा?
   (अ) ग्रामीण कारीगर कृषि की तरफ झुके
   (ब) कुटीर उद्योग-धन्धों का विकास
   (स) उपर्युक्त दोनों

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

10. आजादी के बाद भारत में सरकार ने कैसी आर्थिक नीति प्रारम्भ की?
(अ) सार्वजनिक क्षेत्र को प्रोत्साहन
(ब) निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन
(स) मिश्रित
(द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

11. भारत वर्तमान में कैसा देश है?
(अ) कृषि प्रधान (ब) उद्योग प्रधान
(स) सेवा प्रधान (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

12. व्यवहार में कृत्रिमता तथा दिखावा किस प्रक्रिया का परिणाम है?
(अ) नगरीकरण (ब) संस्कृतीकरण
(स) ब्राह्मणीकरण (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

13. जनगणना 2011 के अनुसार भारत में एक लाख से अधिक तथा दस लाख से कम आबादी वाले शहरों की संख्या कितनी है?
(अ) 408 (ब) 409
(स) 411 (द) 412

14. भारत में 2011 की जनगणना के अनुसार महा-महानगरों (मेगासिटी) की संख्या कितनी है?
(अ) दो (ब) तीन
(स) चार (द) एक

15. वर्तमान में भारत की सबसे बड़ी मेगासिटी कौनसी है?
(अ) दिल्ली (ब) कोलकाता
(स) ग्रेटर मुम्बई (द) चेन्नई

16. उपभोक्ता संस्कृति के केन्द्र हैं-
(अ) नगर (ब) गाँव
(स) राज्य (द) इनमें से कोई नहीं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न-

1. भारतीय समाज एवं संस्कृति पर सर्वाधिक प्रभाव किस विदेशी संस्कृति का पड़ा है?
2. भारत में चाय बागानों का विकास किसने किया?
3. अंग्रेजों ने भारत में किस भाषा का प्रचार-प्रसार किया?
4. 'व्यक्ति पर समूह की प्रधानता को स्थापित' करने वाली परम्परा की विशेषता कौनसी है?
5. 'कर्म एवं पुनर्जन्म' की अवधारणा किसकी पोषक है?
6. भूत एवं वर्तमान के बीच कड़ी का काम कौन करती है?
7. 'धर्मनिरपेक्षता' किसका लक्षण है?
8. श्रम विभाजन के बढ़ने से विभिन्न समुदायों पर क्या प्रभाव पड़ा है?
9. सामाजिक पृथक्करण की भावना में कमी का क्या कारण है?
10. वर्तमान में कौनसी प्रस्थिति महत्त्वपूर्ण होती जा रही है?
11. वंशानुगत नेतृत्व कौनसे समाज की विशेषता रही है?
12. 'धर्मनिरपेक्षता' के मूल्य में वृद्धि का क्या कारण है?
13. लोगों का रुझान कृषि के स्थान पर किस क्षेत्र की ओर बढ़ रहा है?
14. मशीनों द्वारा उत्पादन बढ़ाने की प्रक्रिया को क्या कहते हैं?
15. बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विश्व का सबसे बड़ा नगर कौनसा था?
16. फोर्ट विलियम की स्थापना कब हुई थी?
17. भारत में चाय उद्योग का प्रारम्भ कब हुआ?
18. लोगों के जीवन स्तर में सुधार का क्या कारण है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न-

1. औपनिवेशिक काल में भारत में समाज की स्थिति कैसी थी?
2. योगेन्द्र सिंह के अनुसार भारत में परम्परा की विशेषताएँ बताइए।
3. परम्परा में परिवर्तन पर टिप्पणी कीजिए।
4. आधुनिकता के लक्षण कौन-कौनसे होते हैं? स्पष्ट कीजिए।
5. एन.के. सिंघी के अनुसार आधुनिकता में कौनसे तत्त्व होते हैं?
6. औद्योगीकरण के प्रारम्भ के बारे में संक्षेप में बताइए।
7. 'मेनचेस्टर प्रतियोगिता' क्या है?
8. जॉब चारनॉक ने कौनसे क्षेत्र पट्टे पर लिए थे?
9. भारत में चाय उद्योग पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
10. स्वतंत्रता पश्चात् भारत में कौन-कौनसे औद्योगिक क्षेत्र अस्तित्व में आए?
11. नगरीकरण की प्रक्रिया से क्या आशय है? समझाइए।
12. भारत में मेगासिटीज के नाम बताइए।
13. जजमानी प्रथा की समाप्ति के क्या कारण दिखाई देते हैं?
14. उपभोगवादी प्रवृत्ति में विकास के क्या कारण हैं?
15. इन्द्रियपरक संस्कृति को स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न-

1. परम्परा एवं आधुनिकता को स्पष्ट कीजिए।
2. परम्परा एवं आधुनिकता के मध्य क्या सम्बन्ध हैं? व्याख्या कीजिए।
3. औद्योगीकरण का भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है? प्रकाश डालिए।
4. भारत में नगरीकरण पर एक निबन्ध लिखिए।

उत्तरमाला

1. (अ)	2. (ब)	3. (स)	4. (द)	5. (ब)
6. (स)	7. (स)	8. (स)	9. (अ)	10. (स)
11. (अ)	12. (अ)	13. (द)	14. (ब)	15. (स)
16. (अ)				

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 5

सांस्कृतिक परिवर्तन, पश्चिमीकरण, संस्कृतीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण

अध्ययन बिन्दु

- सांस्कृतिक परिवर्तन की अवधारणात्मक व्याख्या
- सांस्कृतिक परिवर्तन में समाज सुधार आंदोलन एवं संचार साधनों की भूमिका
- पश्चिमीकरण की व्याख्या एवं विशेषताएँ
- पश्चिमीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन
- संस्कृतीकरण की अवधारणात्मक व्याख्या एवं विशेषताएँ
- संस्कृतीकरण की आलोचनात्मक व्याख्या
- धर्म निरपेक्षीकरण के कारण एवं उद्‌भव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
- उत्तर-आधुनिकीकरण तथा आधुनिकीकरण की अवधारणा
- उत्तर-आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकतावाद

प्रस्तुत अध्याय में आप जान पाएँगे कि भारत में सामाजिक परिवर्तन लाने वाले विभिन्न कारक कौन से हैं?

- हमें सांस्कृतिक परिवर्तन को समझना होगा और यह जानना होगा कि क्यों सांस्कृतिक परिवर्तन को समझने के लिए संरचनात्मक परिवर्तन को जानने की आवश्यकता है।
- हम यह भी जानेंगे कि सांस्कृतिक परिवर्तनों में कैसे सामाजिक आंदोलनों तथा संचार साधनों ने अपनी भूमिका निभाई।
- पश्चिमीकरण की अवधारणा को समझते हुए हम भारतीय समाज पर इसके प्रभावों को जानने का प्रयास करेंगे।
- धर्मनिरपेक्षीकरण की अवधारणा एवं इसके उद्‌भव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जानने के साथ हम यह भी जानने की चेष्टा करेंगे कि धर्मनिरपेक्षीकरण का भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ा
- आधुनिकीकरण के अवधारणात्मक पहलू की व्याख्या एवं सामाजिकप रिवर्तनक ोप्रक्रियाके रू पम ें,उ सकीभ ूमिकाक ो समझना। उत्तर आधुनिकता एवं उत्तर आधुनिकीकरण के अवधारणात्मक पक्षों का विश्लेषण।

साँस्कृतिक परिवर्तन

साँस्कृतिकप रिवर्तनक ोअ वधारणाक ोह मत भीस हजतास े समझ सकते हैं जब हमें यह ज्ञात हो कि संरचनात्मक परिवर्तन क्या है? क्योंकि संरचनात्मक परिवर्तन की आधारभूमि पर खड़े होकर ही साँस्कृतिकप रिवर्तनअ ाकारल ेताह ै।स ामान्यअ र्थम ें 'संरचनात्मक परिवर्तन' समाज की संरचना में परिवर्तन है। अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि 'सामाजिक संरचना' क्या है? विभिन्न समाजशास्त्रियों के अनुसार सामाजिक संरचना का अर्थ 'लोगों के संबंधों की वह सतत् व्यवस्था है जिसे कि सामाजिक रूप से स्थापित प्रारूप अथवा व्यवहार के प्रतिमान के रूप में सामाजिक संस्थाओं और संस्कृति के द्वारा परिभाषित और नियंत्रित किया जाता है।' जब भी किसी समाज की संरचनात्मक व्यवस्था में परिवर्तन होता है तो स्वाभाविक रूप से साँस्कृतिक परिवर्तन भी होता है क्योंकि संरचनात्मक व्यवस्था में परिवर्तन, मनुष्य के आचार, व्यवहार और मनोभावों में परिवर्तन करता है। समाज गतिशील है इसलिए समय के साथ परिवर्तन अवश्यंभावी है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– भारत में साँस्कृतिक परिवर्तन के बारे में जानने के लिए देश के इतिहास के पन्नों का पलटना होगा। हमें यह भलीभांति विदित है कि देश में कालांतर में विभिन्न प्रकार के समूहों का उन विभिन्न क्षेत्रों पर शासन रहा है जो आज के आधुनिक भारत को निर्मित करते हैं लेकिन अन्य शासनों के इतर औपनिवेशक शासन अत्यधिक प्रभावशाली रहा और इसके कारण भारतीय सामाजिक व्यवस्था में गहरे परिवर्तन आए। उपनिवेशवाद चूँकि पूँजीवादी व्यवस्था पर आधारित था अत: इसने प्रत्यक्ष रूप से आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित किया। अपने आर्थिक हित लाभ के लिए रेल के शुरूआत की जिससे आमजन की आवाजाही बढ़ी, परिणामस्वरूप दूर बसने वाले लोगों का एक दूसरे से सम्पर्क बढ़ा। इसके साथ ही साथ रोजगार की तलाश में लोग सरलता से शहरों की ओर पलायन करने लगे। नतीजन औद्योगीकरण एवं नगरीकरण को बढ़ावा मिला। औद्योगीकरण का मतलब केवल मशीनों पर आधारित उत्पाद ही नहीं है बल्कि इसके फलस्वरूप नए सामाजिक संबंधों एवं नवीन सामाजिक समूहों का भी उद्‌भव एवं विकास भी है।

समाज सुधार आन्दोलन और साँस्कृतिक परिवर्तन– औपनिवेशिक शासन के प्रभाव की उत्पत्ति उन दो घटनाओं की परिणति है जो कि परस्पर संबंधित है। पहली घटना 19वीं शताब्दी के समाज सुधारकों एवं दूसरी प्रारंभिक 20वीं शताब्दी के राष्ट्रवादी नेताओं के सुनियोजितए वंअ थकप्रयासस ेज ुड़ीह ुईह ै।स माजस ुधारकोंए वं राष्ट्रवादी नेताओं का मूल उद्‌देश्य उन सामाजिक व्यवहारों में परिवर्तन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लाने का था जो महिलाओं एवं वंचित समूहों के साथ भेदभाव करते थे। समाज सुधारकों ने धार्मिक ग्रंथों को आधार बनाकर उन कुरीतियों पर कुठाराघात किया, जो कि धर्मग्रंथों की स्वार्थहित, अपूर्ण एवं अनर्थपूर्ण व्याख्याओं के कारण पूर्व में स्त्रियों एवं जातिगत भेदभाव का शिकार बनी जातियों के शोषण का कारण बनी थी। सती प्रथा, बाल-विवाह, विधवा पुर्नविवाह निषेध और जाति भेद कुछ इस प्रकार की कुरीतियाँ थीं जिन्होंने स्त्री और वंचित वर्ग से उनके मानवोचित अधिकारों को भी छीन लिया था। ऐसा नहीं है कि उपनिवेशवाद से पूर्व भारत में सामाजिक विभेदों के विरुद्ध आवाज न उठी हो। बौद्ध धर्म के केन्द्र में समानता के स्वर उठे। ऐसे ही कुछ प्रयास भक्ति एवं सूफी आंदोलनों के समय में भी हुए।

उन्नीसवीं सदी में हुए समाज सुधारों ने अपना प्रभाव इसलिए स्थापित किया क्योंकि उसमें आधुनिक विचारों को प्राचीन साहित्य से सार्थकता पूर्ण रूप से जोड़ने की चेष्टा की गई। जैसे राजाराम मोहन राय ने 'सती प्रथा' का विरोध करते हुए उसे मानवीय हितों के हनन के रूप में प्रस्तुत करने के लिए न केवल आधुनिक सिद्धान्तों का आश्रय लिया अपितु उन्होंने हिंदू शास्त्रों का भी संदर्भ दिया। इसी तरह रानाडे ने विधवा विवाह के समर्थन में शास्त्रों का संदर्भ दिया। उन्होंने वेदों के उन पक्षों को उल्लेखित किया जो विधवा पुनर्विवाह को स्वीकृति प्रदान करते हैं।

संचार माध्यम और साँस्कृतिक परिवर्तन– हमें यह समझना होगा कि समाजसुधारकों के अथक प्रयासों ने 19वीं सदी के सांस्कृतिक परिवर्तनों में एक महत्ती भूमिका निभाई तथा कथित परम्पराओं का आवरण ओढ़े, समाज की सोच को परिवर्तित कर उनके आचार और व्यवहार को समाजसुधारकों ने एक नवीन और सकारात्मक दिशा दी जो कि मूलतः सांस्कृतिक परिवर्तनों को परिलक्षित करता था। समाज सुधारकों के विचारों को समस्त भारत में फैलाने में संचार माध्यमों का योगदान उल्लेखनीय रहा। समाजशास्त्री सतीश सबरवाल ने औपनिवेशिक भारत में आधुनिक परिवर्तनों की रूपरेखा से जुड़े तीन पक्षों की चर्चा की–

1. संचार माध्यम
2. संगठनों के स्वरूप तथा
3. विचारों की प्रकृति

संचार के विभिन्न स्वरूपों को गति नवीन प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप प्राप्त हुई। प्रिंटिंग प्रेस, टेलीग्राफ तथा माइक्रोफोन ने जहाँ आमजन तक बुद्धिजीवियों, समाज सुधारकों एवं राष्ट्रवादी नेताओं के विचारों को पहुँचाया वहीं रेल के जरिये भी भारत के कोने-कोने तक बुद्धिजीवियों के विचार पहुँच रहे थे। भारत में पंजाब और बंगाल के समाजसुधारकों के विचार-विनिमय मद्रास और महाराष्ट्र के समाज सुधारकों से होने लगे। 1864 में बंगाल के केशवचन्द्र सेन ने मद्रास का दौरा किया। पंडिता रमाबाई ने जनजागृति उत्पन्न करने के लिए अनेक क्षेत्रों का दौरा किया। बौद्धिक आधारों ने सुधार आंदोलनों को वैचारिक धरातल प्रदान किया उनमें धार्मिक सार्वभौमिकता, मानववाद एवं तर्कवाद प्रमुख थे। नवीन प्रौद्योगिकी तथा संगठन जिन्होंने संचार के विभिन्न स्वरूपों को गति प्रदान की, ने सांस्कृतिक व्यवहारों में भी परिवर्तन किया। तत्कालीन समय में सक्रिय सामाजिक संगठनों ने जन जागृति के प्रयास किए। बंगाल में जहाँ ब्रह्म समाज की स्थापना हुई, वहीं पंजाब में आर्य समाज की। 1914 ई. में अंजुमन-ए-ख्वातीन-ए-इस्लाम की स्थापना हुई। ये भारत में मुस्लिम महिलाओं की राष्ट्र स्तरीय संस्था थी।

समाज सुधारकों ने सभाओं व गोष्ठियों के माध्यम से तो अपने विचारों को आमजन तक पहुँचाया ही परन्तु इसके साथ ही साथ जनसंचार के माध्यमों ने सामाजिक विषयों पर चर्चाएँ ज्वलंत रखीं। शनैः-शनैः समाजसुधारकों द्वारा कही गई बातें जनमानस की विचारधाराएँ बदल रही थीं। उनके लिखे हुए विचार, विभिन्न भाषाओं में अनुवादित होकर समस्त भारत को सामाजिक एवं मानवीय आधार पर विशेषकर वंचित समूहों को प्रथम श्रेणी पर लाकर खड़ा करने की सुदृढ़ आधारभूमि दे रहे थे। उदारवाद एवं स्वतंत्रता के नवीन विचार, परिवार रचना एवं विवाह से संबधित क्रांतिकारी विचारों ने सामाजिक संस्तरण में 'स्त्री' की प्रस्थिति को उच्च किया। महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि इन समाजसुधारकों ने प्राचीन परम्पराओं को संजोते हुए नवीन एवं आधुनिक विचारों को समावेशित करने का प्रयास किया। महिलाओं को शिक्षा का अधिकार मिले, इस विषय पर भी चिंतनमनन हुआ। ईश्वरचंद्र विद्यासागर, नारी शिक्षा के समर्थक थे। उनके प्रयास से ही कलकत्ता तथा अन्य स्थानों में अनेक बालिका विद्यालय खुले। सामाजिक कुप्रथाओं एवं वंचित लोगों के अधिकार का संघर्ष किसी धर्म सम्प्रदाय तक सीमित नहीं था। मुस्लिम समाज सुधारकों ने बहुविवाह और पर्दा प्रथा के विरोध में आवाज उठाई। जहाँआरा शाह नवास ने अखिल भारतीय मुस्लिम महिला सम्मेलन में, बहु विवाह के विरुद्ध प्रस्ताव प्रस्तुत किया। बहुविवाह के विरुद्ध लाए गए प्रस्ताव का पंजाब से निकलने वाली महिलाओं की एक पत्रिका 'तहसिब-ए-निसवान' ने समर्थन किया। इसी तरह सर सैयद अहमद खान ने इस्लाम की विवेचना की और उसमें स्वतंत्र अन्वेषण की वैधता (इजतिहाद) का उल्लेख किया। उन्होंने कुरान में लिखी गई बातों और आधुनिक विज्ञान द्वारा स्थापित प्रकृति के नियमों में समानता जाहिर की।

यह स्पष्ट है कि सामाजिक संगठनों एवं समाज सुधारकों ने उन सामाजिक कुरीतियों पर चोट की, जिन्होंने स्त्रियों और वंचित समूहों को समाज की मुख्यधारा से पीछे धकेल दिया। उन्नीसवीं सदी में हुए समाज सुधार आंदोलन ने आमजन की सोच को परिवर्तित किया। स्त्री शिक्षा के प्रति चेतनता, विधवा पुनर्विवाह, बाल विवाह के प्रति रुझान में कमी इसी बात का संकेत है। इस आंदोलन का एक महत्वपूर्ण पक्ष ये भी रहा कि इसने देश की आधी आबादी को उनके अधिकारों के प्रति ही जागरुक नहीं किया, बल्कि उन्होंने उनकी दबी हुई शक्तियों को पुनर्जीवित करने के लिए प्रेरित किया।

उन्नीसवीं सदी में हुए इन सामाजिक आंदोलनों ने देश के सांस्कृतिक स्वरूप को परिवर्तित कर दिया। नवीन विचारधाराओं,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मानवीय समन्वयता एवं समानता के भाव का संरक्षण एवं परिवहन, उदारतावाद का विकास भारतीय सांस्कृतिक परिवर्तन का उदाहरण बनकर उभरा और इन्हीं सांस्कृतिक व्यवहारों में हुए परिवर्तन को संस्कृतीकरण, आधुनिकीकरण, लौकिकीकरण तथा पश्चिमीकरण की प्रक्रियाओं के रूप में समझा जा सकता है।

पश्चिमीकरण

पश्चिमीकरण का तात्पर्य उस पश्चिमी उप सांस्कृतिक प्रतिमान से है जिसे भारत के कुछ लोगों ने आत्मसात किया। ये वे लोग थे जो पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आए थे। इसमें विशेषकर देश का मध्यमवर्गीय एवं बुद्धिजीवी वर्ग सम्मिलित था, जिसने न केवल पश्चिमी प्रतिमान चिंतन के प्रकार एवं जीवनशैली को अपनाया अपितु साथ ही साथ इसका समर्थन तथा विस्तार भी किया।

पश्चिमीकरण को परिभाषित करते हुए योगेन्द्र सिंह ने कहा था 'मानववाद तथा बुद्धिवाद पर जोर पश्चिमीकरण है, जिसने भारत में संस्थागत तथा सामाजिक सुधारों का सिलसिला प्रारम्भ कर दिया। वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं शिक्षण संस्थाओं की स्थापना राष्ट्रीयता का उदय, देश में नवीन राजनीतिक संस्कृति और नेतृत्व सब पश्चिमीकरण के उपोत्पादन है।'

पश्चिमीकरण की व्याख्या– एम. एन. श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण के संबंध में लिखा है–''अंग्रेजी शासन के कारण भारतीय समाज और संस्कृति में बुनियादी और स्थायी परिवर्तन हुए। यह काल भारतीय इतिहास के पिछले सभी कालों से भिन्न था, क्योंकि अंग्रेज अपने साथ नई औद्योगिकी, संस्थाएँ, ज्ञान, विश्वास और मूल्य लेकर आए थे। अंग्रेज अपने साथ छापेखाने भी लाए और इसने भारतीय जीवन और चिंतन में गंभीर तथा बहुविध परिवर्तन उत्पन्न किए।''

अंग्रेजों के शासन की लंबी कालावधि के फलस्वरूप भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था पर पड़े प्रभाव को श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण नाम क्यों दिया यह उन्होंने स्वयं स्पष्ट किया है। वे कहते हैं, ''उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजों ने जागरुक भारतीय जनमत के समर्थन में कुरीतियों को मिटाया, जैसे सती प्रथा (1829), बालिका हत्या, मानव बलि और दास प्रथा (1833)। संक्षेप में अंग्रेजों का भारत पर प्रभाव गहरा, बहुमुखी और फलदायी था। 150 वर्षों के अंग्रेजी राज के फलस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों के लिए मैंने पश्चिमीकरण शब्द का प्रयोग किया है और यह शब्द औद्योगिकी, संस्थाएँ, विचारधारा और मूल्य आदि विभिन्न स्तरों पर होने वाले परिवर्तनों को आत्मसात करता है। मैं यह कहना चाहता हूँ कि इसके अस्पष्ट और सर्वग्राही स्वरूप के बावजूद मैं जान बूझकर इसका प्रयोग कर रहा हूँ। किसी पश्चिमी देश के साथ दीर्घकालीन सम्पर्क के फलस्वरूप किसी गैर पश्चिमी देश में होने वाले परिवर्तनों के विश्लेषण में ऐसे शब्द की आवश्यकता है।''

सामान्य शब्दों में पश्चिमीकरण का अर्थ पश्चिमी देशों की सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक व्यवस्थाओं व मूल्यों का पूर्वी देशों द्वारा अपनायाज ाना इ सस ंदर्भम ेंअ गरह मभ ारतक ाब ातक रेंत ोअ न्य पश्चिमी देशों की अपेक्षाकृत भारतीय संस्कृति को इंग्लैण्ड ने प्रभावित किया और इसका कारण स्पष्ट था चूंकि अंग्रेज भारत वर्ष में एक बहुत लंबे अर्से तक रहे इसलिए जन मानस में उनकी जीवनशैली और संस्कृति का विशेष रूप से प्रभाव रहा।

पश्चिमीकरण की विशेषताएँ–

श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण की अनेक विशेषताओं का उल्लेख किया है–

1. श्रीनिवास का मानना था कि पश्चिमीकरण का प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र पर पड़ा है चाहे वह साँस्कृतिक क्षेत्र हो, राजनीतिक, धार्मिक या आर्थिक क्षेत्र।
2. श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक 'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन' में लिखा है ''पश्चिमीकरण एक अन्तर्भूतकारी संस्लिष्ट और बहुस्तरीय अवधारणा है। उसमें एक छोर पर पश्चिमीअ ौद्योगिकीस ेल गाकरद ूसरेछ ोरप रअ ाधुनिक विज्ञान और आधुनिक इतिहास लेखन तक विस्तृत क्षेत्र सम्मिलित हैं। उसकी अविश्वसनीय संस्लिष्टता इस बात से देखी जा सकती है कि पश्चिमीकरण के विभिन्न पक्ष कभी तो एक किसी प्रक्रिया विशेष को पुष्ट करते हैं, कभी एक दूसरे के विपरीत पड़ते हैं और कभी-कभी एक दूसरे से अलग रहते हैं।''
3. श्रीनिवास का मानना है कि पश्चिमीकरण का प्रभाव सभी पर समान मात्रा में नहीं पड़ता। यह एक ऐसी जटिल प्रक्रिया है कि किसी पर यह कितना प्रभाव डालेगी यह आंकलन नहीं किया जा सकता, स्वयं श्रीनिवास के शब्दों में ''पश्चिमीकरण का स्वरूप और गति एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में तथा जनसंख्या के एक भाग से दूसरे भाग में भिन्न-भिन्न रही है। लोगों का समूह अपनी वेशभूषा, भोजन के तरीकों, भाषा, खेलकूद और अपने द्वारा काम में ली जाने वाली वस्तुओं की दृष्टिस ेप श्चिमीकृतह ोग याहै ,ज बकिअ न्यस मूहोंन े पश्चिमी विज्ञान, ज्ञान तथा साहित्य को अपना लिया, जो बाह्य दृष्टि से पश्चिमीकरण से सापेक्ष रूप से मुक्त रहा।''
4. श्रीनिवास ने यह स्पष्ट किया है कि 'पश्चिमीकरण' शब्द का प्रयोग, मात्र परिवर्तन को दर्शाने के संबंध में प्रयुक्त हुआ है। इसका उद्देश्य अच्छे या बुरे को अभिव्यक्त करना नहीं है अर्थात् यह शब्द नैतिक दृष्टिकोण से तटस्थ है।
5. पश्चिमीकरण किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के एक पक्ष को आंशिक या पूर्ण से प्रभावित करता है तो उसी अवधि में उसके व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष पश्चिमीकरण से बिल्कुल प्रभावित नहीं होता। प्रो. श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक से ऐसे

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। श्रीनिवास ने 1952 में मैसूर के रामपुर गांव में एक सरकारी बुलडोजर के चालक को एक खेत में जमीन को समतल करते देखा। वह चालक मनोरंजन के लिए गांव में पारम्परिक खेल भी दिखाया करता था। स्पष्ट है कि मनोरंजन के लिए जादू-टोने से संबंधित पारस्परिक खेल और जीविकोपोर्जन के लिए बुलडोजर चलाने में, उसे कोई असामान्यता नहीं दिखती थी।

6. पश्चिमीकरणके प॒भावस दैवप॒त्यक्षरू पस`ठ यक्तिक ो प्रभावित करे ऐसा आवश्यक नहीं है। कई बार व्यक्ति इससे परोक्ष रूप से भी प्रभावित होते हैं।

पश्चिमीकरण और सामाजिक परिवर्तन– पश्चिमीकरण ने भारतीय समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित किया। पश्चिमीकरण के फलस्वरूप भारतीय समाज की परम्परागत संस्थाएँ प्रभावित हुई एवं नवीन संस्थाओं का जन्म हुआ। भारत में अंग्रेजी शासन व्यवस्था से पूर्व स्थापित शिक्षा के केन्द्र मूलत: पारम्परिक ज्ञान का प्रसार करते थे, परन्तु अंग्रेजी शासन के प्रभाव ने शिक्षा पद्धति को परिवर्तित किया, यद्यपि नवीन शिक्षा पद्धति का उद्देश्य एक ऐसे वर्ग को निर्मित करना था जो अंग्रेजी शासन की प्रशासनिक व्यवस्था में निचले स्तर पर कार्य कर सके तथापि इस शिक्षा पद्धति ने एक नवीन मध्यवर्ग का उदय करने में अपनी महत्ती भूमिका निभाई। एक ऐसा वर्ग जो परम्परागत संस्थाओं को परिवर्तित करने के लिए आतुर था।

भारतीय संस्कृति के पाश्चात्यकरण से पूर्व भोजन करने की परम्परा एक धामिक कृत्य मानी जाती थी। भोजन में पवित्रता के मानक स्थापित किए हुए थे। जैसे भोजन में प्रयुक्त पत्तलों को फेंक देने के पश्चात जूठी पत्तलों के स्थान को गोबर से लेपकर पवित्र किया जाता था। पश्चिमीकरण के फलस्वरूप कस्बों और शहरों में शिक्षा और पश्चिमीकृत समूहों ने जमीन पर बैठकर भोजन ग्रहण करने के बजाय टेबल और कुर्सी का प्रयोग शुरू कर दिया। स्वयं श्रीनिवास कहते हैं "जिस बात पर मैं जोर देना चाहता हूँ वह यह है कि भोजन का नया ढंग लौकिकीकरण की वृद्धि में योग देता है, क्योंकि भोजन के बाद मेज को गोबर से पवित्र नहीं किया जा सकता और भोजन के पहले और बाद के पारम्परिक कर्मकाण्ड को छोड़ देने की प्रवृत्ति बढ़ती है।"

पश्चिमीकरण के फलस्वरूप राजनीतिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में भी बदलाव आया। पश्चिमीकरण से न केवल राष्ट्रीयतावाद को अपितु जातिगत भेदभाव की शिथिलता को बल मिला साथ ही भाषायी चेतना और प्रादेशिकता के बीज भी प्रस्फुटित हुए।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में, सामाजिक परिवर्तन के संबंध में श्रीनिवास ने लिखा है "भारतवासियों का बहुत ही छोटा सा अंश अंग्रेजों या अन्य यूरोपवासियों के सीधे सम्पर्क में आया और जो ऐसे सम्पर्क में आए भी, वे सदा परिवर्तन में सहायक नहीं हुए। उदाहरण के लिए अंग्रेजों के भारतीय नौकर-चाकरों का संभवत: अपने रिश्तेदारों या स्थानीय जाति समूहों में कुछ प्रभाव होता था, पर दूसरों पर नहीं। इसी प्रकार हिन्दू धर्म छोड़कर ईसाई बनाने वालों का भी संपूर्ण भारतीय समाज पर कोई विशेष प्रभाव न था क्योंकि एक तो ये लोग भी खास तौर पर निचली जातियों के थे और दूसरे धर्म-परिवर्तन उन्हें अधिकाँश हिन्दू समुदाय से पृथक कर देता था। अंत में ईसाई बनने से अक्सर उनका धर्म ही बदलता था, रीति रिवाज, सामान्य संस्कृति अथवा धर्म परिवर्तन करने वालों की सामाजिक स्थिति नहीं।"

पश्चिमीकरण का भारतीय साहित्य पर गहरा प्रभाव परिलक्षित होता दिखाई दिया। हिन्दी भाषी लेखक पाश्चात्य साहित्यकारों की भाषा और शैली से प्रभावित हुए। पश्चिमीकरण ने स्थापत्य कला, नृत्य और संगीत कला, चित्रकला तथा ललित कला को प्रभावित किया।

पश्चिमीकरण ने समाज में एक नवीन वर्ग को जन्म दिया जोकि अभिजात वर्ग के नाम से जाना गया। इस संबंध में श्रीनिवास ने लिखा है, "पारम्परिक अभिजन और नए अथवा पश्चिमीकृत अभिजन के बीच कुछ निरंतरता है। यह निरंतरता दोहरे अर्थ में मौजूद है। एक पारम्परिक अभिजन के कुछ सदस्यों अथवा समुदायों ने अपने आपको नए अभिजन के रूप में ढाल लिया दूसरे पुराने और नए धंधों में भी कुछ निरंतरता है। निरंतरता के सरल उदाहरण ये है कि किसी ब्राह्मण पंडित के बेटे अपने पेशों में प्रवेश करें या किसी सरदार का बेटा भारतीय सेना में उच्च स्थान प्राप्त कर ले। यह सर्वथा स्वाभाविक है कि पश्चिमीकरण के पहले चरण में भारतीय अभिजन का प्रत्येक अंश पश्चिमीकरण का वह आदर्श चुने जो परम्परा से उसके सबसे समीप हो। उदाहरण के लिए बम्बई के पारसी नई परिस्थितियों का लाभ उठाने वाले सर्वप्रथम लोगों में थे, उन्होंने पेशों में, सरकारी नौकरियों में, उद्योग में, वाणिज्य और व्यवसाय में, विशेषकर शराब के व्यापार में प्रवेश किया और नागरिक तथा राष्ट्रीय जीवन में भी प्रमुख रहे।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि पश्चिमीकरण ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित किया परन्तु विभिन्न स्तरों पर इनकी प्रभावशीलता को देखना उचित होगा, स्वयं श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण शब्द के साथ प्रारम्भिक, माध्यमिक अथवा तृतीयक विशेषण प्रयुक्त किया। भारत में प्राथमिक पश्चिमीकरण का स्तर व्यतीत हो चुका है। देश का ग्रामीण क्षेत्र पश्चिमीकरण के माध्यमिक स्तर पर है तथा नगरीय क्षेत्र एवं महानगरीय संस्कृति ने पश्चिमीकरण के माध्यमिक एवं तृतीयक स्तर के मध्य से गुजर रही है। पूर्ण पश्चिमीकरण, भारतीय संस्कृति आत्मसात कर पाएगी ऐसा संदेहास्पद है क्योंकि भारतीय संस्कृति ने हजारों वर्षों से अपनी मौलिकता को बनाए हुए रखा है।

संस्कृतीकरण

भारतीय सामाजिक व्यवस्था की एक अद्वितीय विशेषता 'जाति व्यवस्था' को माना गया है। जाति प्रथा मूलत: संस्तरण पर आधारित भारतीय सामाजिक स्तरीकरण का एक प्रमुख स्वरूप है। अर्थात यहाँ एक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जाति दूसरी जाति की तुलना में उच्च या निम्न मानी गई है। इन्हीं जातियों के संबंध में एक विस्तृत अध्ययन देश के समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास ने किया। श्रीनिवास ने जातिगत संस्तरण व्यवस्था को विवेचित करने के लिए समाज के वंचित समूह के लिए 'निम्न जाति' शब्द का प्रयोग किया। श्रीनिवास ने दक्षिण भारत के कुर्ग लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन के विश्लेषण के लिए 1952 में संस्कृतीकरण की अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोगा कया।2 0वींश ाताब्दीके म ध्यत कज ाति० यवस्थाक ाम ूलत: अध्ययन वंशानुक्रम या शुद्धता और अशुद्धता की धारणा अथवा 'वर्ण व्यवस्था' पर आधारित प्रस्थिति के अर्थों में होता था,परन्तु श्रीनिवास ने जाति व्यवस्था को 'उर्ध्वमुखी गतिशीलता' के आधार पर विवेचित करने का प्रयास किया।

संस्कृतीकरण की अवधारणा से पूर्व यह माना जाता रहा था कि जाति व्यवस्था जन्म पर आधारित कठोर व्यवस्था है जिसमें परिवर्तन संभव नहीं है। इस तथ्य की पुष्टि एस. वी. केतकर के जाति के संबंध में की गई व्याख्या से होती है। केतकर ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इंडिया' में लिखा है कि ''एक जाति की सदस्यता केवल उन व्यक्तियों तक ही सीमित होती है जो कि उस जाति विशेष के सदस्यों से ही पैदा हुए हैं।'' कुछ इसी तरह के विचार समाजशास्त्री मजूमदार एवं मदान के भी हैं, उन्होंने कहा कि ''जाति एक बंद वर्ग है।'' इन सुस्थापित मान्यताओं के विपरीत श्रीनिवास ने माना कि जाति व्यवस्था लचीली व्यवस्था है, इसमें गतिशीलता संभव है और यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक जाति की स्थिति सदैव के लिए एक सी निश्चित हो।

संस्कृतीकरण की अवधारणा– श्रीनिवास ने संस्कृतीकरण को परिभाषित करते हुए कहा, ''एक ऐसी प्रक्रिया जिसके द्वारा निम्न जातियाँ उच्च जातियों, विशेषकर ब्राह्मणों के रीति रिवाजों, संस्कारों, विश्वासों, जीवन विधि एवं अन्य सांस्कृतिक लक्षणों व प्रणालियों को ग्रहण करती हैं।'' श्रीनिवास का मानना है कि ''संस्कृतीकरण की प्रक्रिया अपनाने वाली जाति, एक-दो पीढ़ियों के पश्चात् ही अपने से उच्च जाति में प्रवेश करने का दावा प्रस्तुत कर सकतीहै।''

श्रीनिवास यह भी कहते हैं कि ''किसी भी समूह का संस्कृतीकरण उसकी प्रस्थिति को स्थानीय जाति संस्तरण में उच्चता की तरफ ले जाता है। सामान्यता यह माना जाता है कि संस्कृतीकरण संबधित समूह की आर्थिक अथवा राजनीतिक स्थिति में सुधार है अथवा हिन्दुत्व की महान परंपराओं का किसी स्त्रोत के साथ संपर्क होता है। परिणामस्वरूप उस समूह में उच्च चेतनता का भाव उभरता है। महान परंपराओं के यह स्त्रोत कोई तीर्थस्थल हो सकता है, कोई मठ हो सकता है अथवा कोई मतांतर वाला संप्रदाय हो सकता है।''

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि संस्कृतीकरण एक ऐसी प्रक्रिया की ओर संकेत करता है जिसमें कोई जाति या समूह सांस्कृतिक दृष्टि से प्रतिष्ठित समूह के रीतिरिवाज एवं नामों का अनुकरण कर अपनी सामाजिक प्रस्थिति को उच्च बनाते हैं।

संस्कृतीकरण की विशेषताएँ–

1. श्रीनिवास ने यह स्पष्ट किया है कि संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में सदैव ब्राह्मण जाति का ही अनुकरण किया जाएगा ऐसा नहीं है, क्योंकि इस प्रक्रिया में स्थानीय प्रभुत्व सम्पन्न जाति भी बहुत महत्वपूर्ण है। स्पष्टत: संस्कृतीकरण की अवधारणा को आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभुत्व से भी जोड़ कर देखा गया एवं स्थानीय प्रबल जाति की भूमिका को परिवर्तन के सांस्कृतिक संचरण में विशेष महत्व दिया गया।
2. श्रीनिवास ने यह माना है कि संस्कृतीकरण दोतरफा प्रक्रिया है क्योंकि इस प्रक्रिया में उच्च जाति की प्रस्थिति को प्राप्त करने हेतु प्रयत्नशील जाति जहाँ उच्च जाति से बहुत कुछ प्राप्त करती है या सीखती है वही उसे कुछ प्रदान भी करती है। इस संबंध में श्रीनिवास ने उदाहरण देते हुए कहा है कि संपूर्ण भारत में, सर्वमान्य एवं प्रतिष्ठित देवी-देवताओं के अलावा कुछ स्थानीय देवताओं की पूजा भी ब्राह्मण करते थे। जिससे महामारियों से उनकी रक्षा हो सके तथा पशुधन, बच्चों के जीवन व अन्न आदि भी संरक्षित रहे।
3. संस्कृतीकरण सामाजिक गतिशीलता की व्यक्तिगत क्रिया न होकर एक सामूहिक प्रक्रिया है।
4. संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में केवल 'पदमूलक' परिवर्तन ही होते हैं। कोई संरचनात्मक मूलक परिवर्तन नहीं। अर्थात एक जाति अपने आसपास की जातियों से जातिगत संस्तरण में अपनी प्रस्थिति उच्च कर लेती है परन्तु इससे सामाजिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता।
5. संस्कृतीकरण की प्रक्रिया एक लंबी अवधि की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में उच्च जाति की प्रस्थिति को प्रयासरत जाति को एक लंबे समय तक प्रतीक्षा करनी होती है और इस अवधि में उसे अपने दावे के लिए निरंतर दबाव बनाए रखना पड़ता है।
6. संस्कृतीकरण के फलस्वरूप लौकिक तथा कर्मकाण्डीय स्थिति के मध्य पाए जाने वाली असमानता को दूर करना है। जब किसी जाति अथवा उसके एक भाग को लौकिकशक्ति प्राप्त हो जाती है, तो वह साधारणत: उच्च प्रस्थिति के परम्परागत प्रतीकों को प्राप्त करने का प्रयत्न भी करती है।

संस्कृतीकरण के प्रोत्साहन के कारक– संस्कृतीकरण की प्रक्रिया का संभव बनाने वाले अनेक कारक रहे हैं। ये वे कारक हैं जिन्होंने किसी न किसी प्रकार से संस्कृतीकरण को बल दिया।

1. संचार एवं यातायात के साधनों का विकास– संचार एवं यातायात के साधनों के विकास के फलस्वरूप दूर फैले लोगों का एक दूसरे से सम्पर्क बढ़ा, यहाँ तक कि अगम्य माने जाने वाले क्षेत्रों में भी अब प्रवेश संभव हो गया, जिसके चलते संस्कृतीकरण की प्रक्रिया तीव्र

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हो गई।

2. कर्मकांडी क्रियाओं में सुलभता– श्रीनिवास ने कर्मकाण्डी क्रियाओं से मंत्रोच्चारण की पृथकता को संस्कृतीकरण का एक प्रमुख कारक माना। मंत्रोच्चारण की पृथकता के कारण ब्राह्मणों के संस्कार सभी हिन्दू जातियों के लिए सुलभ हो गए। ब्राह्मणों द्वारा कथित निम्न (गैर द्विज) जातियों पर वैदिक मंत्रोच्चारण पर प्रतिबंध लगाया गया था। इस प्रकार निम्न जाति के लोग भी ब्राह्मणों के सामाजिक आचार-विचार को सरलता से अपना सके।

3. राजनीतिक प्रोत्साहन– श्रीनिवास के मतानुसार संसदीय प्रजातांत्रिक० यवस्थान`भ ीस ंस्कृतीकरणक ोब ढ़ावा ि दया।ध र्मए वं जातिगत आधार पर हर प्रकार के विभेद की समाप्ति ने वर्षों से निर्योग्यताओं से लादे गए वंचित समूहों को समाज की मुख्यधारा में लाकर खड़ा किया।

संस्कृतीकरण का आलोचनात्मक विश्लेषण– श्रीनिवास ने संस्कृतीकरण की अवधारणा की विशुद्ध विवेचना की परन्तु उनकी इस अवधारणा से अनेक विद्वानों ने अपनी असहमति प्रकट की। यहाँ तक कि स्वयं श्रीनिवास ने इस सत्य को स्वीकार किया कि संस्कृतीकरण की अवधारणा सहज नहीं है। वे लिखते हैं कि ''संस्कृतीकरण एक विषम एवं जटिल अवधारणा है। यह भी संभव है कि इसे एक अवधारणा मानने के बजाय अनेक अवधारणाओं का योग मानना अधिक लाभप्रद रहेगा। यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि व्यापक सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया के लिए यह केवल एक नाम है और हमारा प्रमुख कार्य इन प्रक्रियाओं की प्रकृति को समझना है। जैसे ही यह पता चले कि 'संस्कृतीकरण' शब्द विश्लेषण में सहायता पहुँचाने के बजाय बाधक है, उसे निस्संकोच और तुरन्त छोड़ दिया जाना चाहिए।''

संस्कृतीकरण की अवधारणा को विवेचित करते हुए श्रीनिवास ने स्पष्ट किया कि संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के द्वारा 'लम्बवत् सामाजिक गतिशीलता' संभव है यानि कि कोई भी निम्न जाति इस प्रक्रिया को अपनाकर अपनी स्थिति को ऊँचा उठा सकती है। इस संदर्भ में समाजशास्त्री डी. एन. मजूमदार ने अपनी पुस्तक 'कास्ट एंड कम्युनिकेशन इन एन इंडियन विलेज' में लिखा है, ''सैद्धांतिक एवं केवल सैद्धान्तिक रूप में ही ऐसा होता है जब हम विशिष्ट मामलों पर ध्यान देते हैं तो जाति गतिशीलता संबंधी हमारा ज्ञान एवं अनुभव ऐसी सैद्धान्तिक मान्यता की दृष्टि से सही नहीं प्रतीत होता...''

संस्कृतीकरण की अवधारणा को सांस्कृतिक परिवर्तन की स्पष्ट व्याख्या न मानते हुए एफ. जी. बैली ने अपनी पुस्तक 'कास्ट एण्ड द इकोनोमिक फ्रण्टियर' में कहा है कि ''संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के द्वारा सांस्कृतिक परिवर्तन की स्पष्ट व्याख्या नहीं की जा सकती।''

विभिन्न समाजशास्त्रियों द्वारा संस्कृतीकरण के अवधारणात्मक पहलुओं पर आलोचनात्मक टिप्पणियों के अलावा अनेक अन्य स्तरों पर भी इसकी आलोचना की गई। विशेषकर इस तथ्य पर कि संस्कृतीकरण की अवधारणा अप्रत्यक्ष रूप से समाज के उस प्रारूप को उचित बताती है जो अपवर्जन और असमानता पर आधारित है। इस अवधारणा से ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च जाति द्वारा निम्न जाति के प्रति भेदभाव, एक प्रकार का विशेषाधिकार है। इस तुच्छ दृष्टिकोण के साथ स्वाभाविक रूप से समानता के भाव की कल्पना करना संभव नहीं है।

असमानता का भेद इस रूप में भी और भी अधिक स्पष्ट होता है कि इस अवधारणा का मूल भाव उच्च जाति की जीवनशैली को उत्तम मानना है अत: उच्च जाति के लोगों की जीवनशैली को अनुकरणीय मानना उचित ठहराया गया है या ये कहें कि ऐसी इच्छा रखना स्वाभाविक वृत्ति है।

इन समस्त आलोचनाओं के पश्चात् भी हम संस्कृतीकरण की अवधारणाक ोए र्का सरेस`ख ारिजन हींक रस कतेक योंकिभ ारतीय सामाजिक व्यवस्था को समझने विशेषकर विभिन्न जातियों के मध्य पायी जाने वाली सामाजिक-संस्कृतिक गतिशीलता को एक विस्तृत रूप से विवेचित करने में इसने सहयोग दिया है।

धर्मनिरपेक्षीकरण

धर्मनिरपेक्षीकरण को परिभाषित करना दुष्कर कार्य है क्योंकि धर्म की अवधारणा को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से समझाया गया है। अर्थात् धर्म का भिन्न-भिन्न प्रकार से निर्वचन किया गया है। धर्म की व्याख्या को लेकर विद्वानों की कभी भी एक राय नहीं रही है। ब्रायन आर. विल्सन ने धर्मनिरपेक्षीकरण की व्याख्या करते हुए कहा ''यह एक ऐसी प्रक्रिया को इंगित करती है जिसके अंतर्गत विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ, धार्मिक अवधारणाओं की पकड़ या प्रभाव से बहुत हद तक मुक्त हो जाती है।'' अर्थात् धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत प्रतिदिन के जीवन पर धार्मिक नियंत्रण का कम होना, कर्मकाण्डीय प्रक्रिया का तर्क द्वारा स्थानापन्न किया जाना, धार्मिक विश्वासों के प्रति विरोधात्मक स्थितियों का विकास शामिल किया जाता है।

धर्मनिरपेक्षीकरण की व्याख्या– धर्मनिरपेक्षीकरण के सम्बन्ध में समाजशास्त्रियों ने कहा कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत धार्मिक विचार, रिवाज एवं संस्थाएँ अपनी सामाजिक महत्ता खो देती हैं। भारतीय संदर्भ में, धर्मनिरपेक्षीकरण को स्पष्ट करते हुए एम. एन. श्रीनिवास कहते हैं ''धर्मनिरपेक्षीकरण शब्द में यह बात निहित है कि जिसे पहले धार्मिक माना जाता था, वह अब वैसा नहीं माना जाता और उसमें विभेदीकरण की एक प्रक्रिया भी निहित है। जिसके परिणामस्वरूप समाज के विभिन्न आर्थिक, राजनीतिक, कानूनी और नैतिक पक्ष एक दूसरे के मामले में अधिकाधिक 'सावधान' होते जाते हैं।''

श्रीनिवास द्वारा दी गई धर्मनिरपेक्षीकरण की परिभाषा में तीन बातें मुख्य हैं–

1. धार्मिकता में कमी– श्रीनिवास के अनुसार जनमानस में जैसे-जैसे धर्मनिरपेक्षता या लौकिकता की भावना आगे बढ़ती है वैसे-

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वैसे लोगों की धार्मिक भावनाओं में सरलता आती है अर्थात् धार्मिक कठोरता के भाव लुप्त होने लगते हैं।

2. तार्किक चिन्तन की भावना में वृद्धि– परम्परागत समाज में व्यक्ति, धार्मिक विश्वासों एवं परम्पराओं से ही संचालित होता है उसकी जीवनशैली, गतिविधियाँ एवं समस्त कार्यप्रणाली का केन्द्र बिन्दु धार्मिक विश्वास होता है। यह स्पष्ट है कि धार्मिक विश्वासों का तर्क के आधार पर विश्लेषण संभव नहीं है। ज्ञान विज्ञान के प्रसार से समाज में तार्किकता में वृद्धि होती है।

3. विभेदीकरण की प्रक्रिया– एम. एन. श्रीनिवास ने धर्मनिरपेक्षीकरण के सम्बन्ध में यह स्पष्ट किया कि जैसे-जैसे लौकिकीकरणक ैप्रक्रियाब ढ़ेगीस माजम ें विभेदीकरणब ढ़ताच ला जाएगा। परम्परागत समाज में धर्म सामाजिक जीवन का अंग है, लेकिन विभेदीकरण के कारण समाज के विभिन्न पहलुओं जैसे राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं कानूनी व्यवस्था एक दूसरे से पृथक हो जाते हैं।

धर्मनिरपेक्षीकरण के लक्षण–

1. धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत इहलौकिकता में जन साधारण का विश्वास बढ़ता जाता है एवं अलौकिक तथा अधिप्राकृतिक सत्ता के प्रति आस्था क्षीण होती जाती है।
2. धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया में तर्कयुक्त चिंतन, स्वतंत्रता एवं विचारों पर बल होता है। परम्परागत विचारों को तर्क की कसौटी पर बिना झांके स्वीकार नहीं किया जाता है।
3. जीवन की समस्याओं के समाधान हेतु धर्म के मार्ग को अपनाने के लिए बजाय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के मार्ग का चुनाव किया जाता है। अर्थात् मानव जीवन के अध्ययन तथा समस्याओं के समाधान हेतु तार्किक एवं वैज्ञानिक सिद्धांतों में विश्वास पर बढ़ोतरी तथा धार्मिक विश्वासों का क्षीण होना है।
4. इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण लक्षण धर्म की सिद्धांतों को व्यावहारिक प्रक्रियाओं में परिवर्तित करना है, जिससे वह समाज के सदस्यों की बदलती आवश्यकताओं एवं समाज की बदलती स्थिति के अनुरूप स्वीकार्य हो सके।

धर्मनिरपेक्षीकरण के उद्भव की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि– धर्मनिरपेक्षीकरण का उद्भव यूरोप के दैनिक जीवन में धर्म या चर्च के प्रभाव के क्षय के रूप में हुआ माना जाता है। मध्यकाल का यूरोपीय समाज मूलत: एक धर्म प्रधान समाज था एवं सामाजिक जीवन की समस्त गतिविधियाँ धर्म से नियंत्रित होती थी,परन्तु स्थितियां जनसाधारण के लिए तब बहुत अधिक पीड़ादायक हो गई जब धर्म और राज्य के बीच के गठबंधन से धर्म में अनेक रूढ़ियाँ तथा कुरीतियाँ विकसित हो गईं, जिसने धर्म और राज्य द्वारा किए जाने वाले शोषण को अप्रत्यक्ष रूप से वैधता प्रदान की।

यूरोप के सामाजिक जीवन में धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया, को बल देने वाली अनेक घटनाएँ थीं, जिन्होंने धर्म के स्थान पर तर्क तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्थापित करने की चेष्टा की।

धर्मनिरपेक्षीकरण में पुनर्जागरण आंदोलन ने एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में कार्य किया पुनर्जागरण आंदोलन ने तर्क संगत ज्ञान में वृद्धि को संभव बनाया, जिससे ज्ञान के क्षेत्र में पुनर्व्याख्याएँ आरम्भ हुई तथा ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में तर्क संगत खोज का दौर शुरू हुआ।

यूरोप की वैज्ञानिक क्रांति ने धर्म के वर्षों से स्थापित एक छत्र साम्राज्य को भेद दिया। तर्कसंगत, पद्धतिबद्ध तथा प्रयोगसिद्ध ज्ञान के महत्व ने पारलौकिक व्याख्याओं एवं धारणाओं को शनै: शनै: क्षीण करना प्रारम्भ कर दिया। इस क्रांति ने प्रकृति एव विश्व में घटित सभी घटनाओं का तारतम्य, धर्म से जोड़े जाने की परम्परा को तोड़ा और उसके स्थान पर वस्तुनिष्ठ एवं तर्कसंगत ज्ञान में वृद्धि हुई।

ब्रायन विल्सन ने अपनी पुस्तक में, साम्यवाद जैसी विचारधारा और ट्रेड यूनियन जैसे संगठनों के विकास को भी धर्मनिरपेक्षीकरण के उद्भव के कारण के रूप में स्वीकार किया। उन्होंने यह माना कि ऐसे संगठनों तथा विचारधाराओं ने पुरातन धार्मिक व्याख्याओं को चुनौती दी तथा तर्कसंगत विचारों को संरक्षण दिया।

भारत में धर्मनिरपेक्षीकरण के कारक

I. सामाजिक व धार्मिक आंदोलन– साामाजिक व धामिक आंदोलनों के उद्भव का उद्देश्य ही परंपरागत धार्मिक रीति रिवाजों के उस स्वरूप का विरोध करना था जो तार्किकता से परे, मानव जीवन को कष्टकारी बना रहे थे, विशेषकर मानवीय समानता के विरोधी तत्व। इन आंदोलनों ने धार्मिक कुरीतियों का विरोध करते हुए समानता, मानवता एवं मानवीय अधिकारों को स्थापित करने हेतु, वैज्ञानिकता एवं तार्किकता का आधार लिया जिसके फलस्वरूप, जनमानस की रुचि स्वतंत्रता एवं तर्कयुक्त चिंतन की ओर बढ़ी।

II. पश्चिमीकरण– पश्चिमीकरण ने भारत की सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था के कई पक्षों को प्रभावित किया। विशेषकर धर्म, कला, साहित्य तथा सामाजिक जीवन को। पश्चिमीकरण के प्रभाव के चलते आम व्यक्ति का जीवन के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ। उसका अलौकिकए वंअ धिप्राकृतिकस त्ताके प्ति वश्वासक मह् आत था इहलौकिकता में विश्वास बढ़ा।

III. धार्मिक संगठनों का अभाव– लौकिकीकरण के विकास में धार्मिक संगठनों के अभाव ने एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में कार्य किया। श्रीनिवास का भी यह मानना था कि चूँकि हिंदू धर्म का कोई एक केन्द्रीय देशव्यापी संगठन तथा उसका कोई प्रधान नहीं रहा जो देश के सभी सदस्यों को समान रूप से धार्मिक स्तर पर, एक केन्द्रीय मंच पर संचालित एवं नियन्त्रित कर सके इसलिए उनके विचारों पर बाहरी प्रभावी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

ताकतों का प्रभाव तेजी से बढ़ा।

IV. नगरीकरण– श्रीनिवास का मानना है कि लौकिकीकरण की प्रक्रिया गाँवों की तुलना में शहरों में, अशिक्षित की तुलना में शिक्षित लोगों के बीच ज्यादा तेजी से चलती है ऐसा इसलिए होता है क्योंकि गाँव की अपेक्षाकृत शहरों में वैज्ञानिक तथा तर्कपूर्ण चिंतन अधिक प्रभावी होता है।

V. यातायात के संचार के साधनों में उन्नति– आवागमन एवं संचार के साधनों ने दूरस्थ लोगों को समीप ला दिया। सहजता से आवागमन एवं संचार के साधनों से, बुद्धिजीवियों एवं राष्ट्रवादियों के विचारों का समस्त भारत में सम्प्रेषण परम्परा की बेड़ियों में जकड़े समाज में एक क्रांतिकारी कदम सिद्ध हुआ। धर्म, जाति एवं राज्य के नाम पर विभक्त लोग करीब आए। इस सान्निध्य ने नवीन विचारों को प्रचारित एवं प्रसारित किया, जिससे लौकिकीकरण को बल मिला।

V. मध्यम वर्ग का उदय– देश में व्यापार एवं वाणिज्य के विकास तथा औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप मध्यम वर्ग का उदय हुआ। इस मध्यमवर्ग ने अपने अस्तित्व को स्थापित करने की प्रक्रिया में उन परम्परागत विचारधाराओं का विरोध किया, जिनके मूल में धार्मिक विश्वास था। वे एक ऐसी व्यवस्था के प्रति चेतन थे जो तार्किक और वैज्ञानिक विचारधारा पर खड़ी हो।

भारतीय समाज पर धर्मनिरपेक्षीकरण का प्रभाव

एम.ए न.श्र ीनिवासन`अ पनीप ुस्तक' सोशलच`ेंजइ नम ॅाडर्न इंडिया' में धर्मनिरपेक्षीकरण के संदर्भ में हुए अनेक परिवर्तनों की चर्चा की है। श्रीनिवास का विश्वास था कि धर्मनिरपेक्षीकरण ने पवित्रता तथा अपवित्रता की धारणा को परिवर्तित किया। धर्मनिरपेक्षीकरण ने व्यक्ति की संकुचित मानसिकता को वृहद किया। जनमानस के जीवन का केन्द्र बिन्दु शुद्धि-अशुद्धि की भावना से कहीं अधिक स्व: विकास हो गया। धन, सत्ता एवं वर्चस्व प्राप्ति की आशंकाएँ बलवती हो गई जिसने जातिगत भेदभाव को शिथिल कर दिया।

जनसाधारण का विश्वास अलौकिक सत्ता से कहीं अधिक इहलौकिकता की ओर बढ़ा। इसका तात्पर्य यह नहीं था कि भक्ति और श्रद्धा का भाव पूर्णत: क्षीण हो गया। अब ईश्वर प्राप्ति का मार्ग, व्यक्ति, मंदिर पूजन से कहीं अधिक मानव के माध्यम से प्राप्त करने के प्रति चैतन्य हुआ और यही कारण रहा कि शिक्षा संस्थाओं, आश्रमों, चिकित्सालयों तथा समाजसेवी संगठनों को लोगों ने अधिकाधिक दान देना शुरू किया।

धर्मनिरपेक्षीकरण के फलस्वरूप देश की ग्रामीण व्यवस्था भी प्रभावित हुई। समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग को सदियों से पंच मानने की परम्परा का हनन हुआ। श्रीनिवास ने कहा है, ग्रामीण समुदायों में राजनीतिकरण की प्रक्रिया का आरम्भ हुआ।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि धर्मनिरपेक्षीकरण ने सामाजिक विचारधाराओं की पुनर्व्याख्या की। तर्कसंगत ज्ञान का महत्व बढ़ा। धार्मिक व्याख्याओं को तर्क के आधार पर आंका जाने लगा।

उत्तर-आधुनिकीकरण

भारतीय समाज में उत्तर-आधुनिकीकरण के संदर्भ में गंभीरता से विचार किया जाए परन्तु उससे पूर्व हमें यह समझने की आवश्यकता है कि आधुनिकीकरण क्या है? और आधुनिकीकरण को तभी समझा जा सकता है जब हम जाने कि 'आधुनिकता' क्या है?

रुडॉल्फ और रुडॉल्फ ने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा ''आधुनिकता का मतलब ये समझ में आता है कि इसके समक्ष सीमित-संकीर्ण स्थानीय दृष्टिकोण कमजोर पड़ जाते हैं और सार्वभौमिक प्रतिबद्धता और विश्वजनीय दृष्टिकोण (यानी कि समूचे विश्व का नागरिक होना) ज्यादा प्रभावशाली होता है, इसमें उपयोगिता, गणना और विज्ञान की सत्यता को भावुकता, धार्मिक पवित्रता और अवैज्ञानिक तत्वों के स्थान पर महत्व दिया जाता है, इसके प्रभाव में सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर व्यक्ति को प्राथमिकता दी जाती है न कि समूह को, इसके मूल्यों के मुताबिक मनुष्य ऐसे समूह-संगठन में रहते और काम करते हैं जिसका चयन जन्म के आधार पर नहीं बल्कि इच्छा के आधार पर होता है। इसमें भाग्यवादी प्रवृत्ति के ऊपर ज्ञान तथा नियंत्रण क्षमता को प्राथमिकता दी जाती है और यही मनुष्य को उसके भौतिक तथा मानवीय पर्यावरण से जोड़ता है; अपनी पहचान को चुनकर अर्जित किया जाता है न कि जन्म के आधार पर; इसका मतलब यह भी है कि कार्य को परिवार, गृह और समुदाय से अलग कर नौकरशाही संगठन में शामिल किया जाता है...।''

स्पष्ट है कि आधुनिकता का अर्थ एक ऐसी विचारधारा से है जो कि किसी सीमा में नहीं बंधी हो। व्यक्ति की सोच, उसके कार्य किसी परिपाटी से न बंधे होकर, उसकी स्वयं की इच्छा से निर्धारित होते हों।

आधुनिकता का अर्थ स्पष्ट होने पर हमें आधुनिकीकरण को समझना सहज होगा।

आधुनिकीकरण की अवधारणा– आधुनिकीकरणक ोए क निश्चित परिभाषा देना सहज नहीं है क्योंकि विभिन्न समाज विज्ञानियों ने इस शब्द को विभिन्न अर्थों एवं संदर्भों में प्रयुक्त किया है। आधुनिकीकरण कोई जड़ वस्तु नहीं है। यह एक प्रक्रिया है। मूरे ने अपनी पुस्तक 'सोशल चेंज' में लिखा है कि ''आधुनिकीकरण के अन्तर्गत के परम्परागत अथवा पूर्ण आधुनिक समाज का पूर्ण परिवर्तन उस प्रकार की औद्योगिकी एवं उससे सम्बन्धित सामाजिक संगठन के रूप में हो जाता है जो पश्चिमी दुनिया के विकसित, आर्थिक दृष्टि से समृद्धशाली और राजनैतिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक स्थिर राष्ट्रों में पाई जाती है।'' वहीं योगेन्द्र सिंह के अनुसार, ''आधुनिकीकरण एक संस्कृति प्रत्युत्तर के रूप में है जिनमें उन विशेषताओं का समावेश है जो प्राथमिक रूप से विश्वव्यापक एवं उद्विकासीय है।''

योगेन्द्र सिंह के विचारानुसार ''आधुनिकीकरण को सांस्कृतिक-सर्वव्यापी जैसा कहा जा सकता है। आधुनिकीकरण का आशय केवल प्राविधिक उन्नति से ही नहीं है, बल्कि वैज्ञानिक विश्व दृष्टिकोण,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समकालीन समस्याओं के लिए मानवीकी का आन्तरीकरण एवं विज्ञान का दार्शनिक दृष्टिकोण होना आवश्यक है।''

स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण, आधुनिक एवं नवीन ज्ञान, विश्वास, मूल्य एवं बौद्धिकता को महत्ता देना है।

आधुनिकीकरण की विशेषताएँ– अलातास ने आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में कहा था यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान का समाज में प्रचार एवं प्रसार होता है, जिससे समाज में व्यक्तियों के स्तर में सुधार होता है और समाज अच्छाई की तरफ बढ़ता है।

लर्नर ने अपनी पुस्तक 'दि पासिंग ऑफ ट्रेडीशनल सोसायटी' में आधुनिकीकरण की सात विशेषताओं का उल्लेख किया है–

1. वैज्ञानिक भावना।
2. नगरीकरण में वृद्धि।
3. संचार साधनों में क्रांति।
4. शिक्षा का प्रसार।
5. राजनैतिक साझेदारी या मतदान व्यवहार में वृद्धि।
6. प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि।
7. व्यापक आर्थिक साझेदारी।

उपर्युक्त विशेषताओं का केन्द्र बिन्दु जीवन के सभी पक्षों में सुधार, दृष्टिकोण की व्यापकता,नवीनता के प्रति लचीलापन एवं परिवर्तन के प्रति स्वीकारोक्ति है।

हमें यह समझना होगा कि आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया है। इस सम्बन्ध में डब्ल्यू जे. स्मिथ ने जोर देते हुए कहा है कि 'आधुनिकीकरण कोई उद्देश्य नहीं है बल्कि एक प्रक्रिया है, वह कोई अपनाई जाने वाली वस्तु नहीं है कि जिसे कोई रखता हो, बल्कि यह वह है जिसे अपनाया जाता है, चाहे अच्छी हो या बुरी।'

उत्तर-आधुनिकीकरण की अवधारणा– उत्तर–आधुनिकीकरण को आधुनिकीकरण के एक विकल्प के तौर पर देखा जा रहा है। सर्वप्रथम अरनाल्ड टोयन्बी ने अपनी पुस्तक 'पोस्ट मॉडर्न कन्डीशन' में 'उत्तर–आधुनिकता' की अवधारणा को प्रयोग में लिया। समाज वैज्ञानिकों का मानना है कि समाज उत्तर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में दाखिल हो चुका है।

आधुनिकीकरण के 20वीं शताब्दी के प्रथम भाग में आधुनिक तकनीकी का विकास हुआ और दुनिया को एक आधुनिक आकार मिला। शताब्दी का दूसरा भाग उत्तर आधुनिकीकरण का है।

समाजशास्त्रियों ने उत्तर आधुनिकीकरण को प्रक्रियात्मक ज्ञान एवं संस्कृति की एक दशा मानते हुए यह स्पष्टत: इंगित किया कि इसमें आधुनिक सामाजिक संस्थाएँ कमजोर होती जाती है तथा यह एक भूमण्डलीय समाज का निर्माण करती है।

समाज वैज्ञानिक ने उत्तर–आधुनिकीकरण को उत्तर–आधुनिकता का प्रकार्यात्मक पक्ष मानते हुए उत्तर–आधुनिकता के संदर्भ में विस्तार से चर्चा की है। समाजशास्त्री रिचार्ड गोट ने उत्तर–आधुनिकता को परिभाषित करते हुए कहा, ''उत्तर–आधुनिकता आधुनिकता से मुक्ति दिलाने वाला एक स्वरूप है। यह एक विखंडित आंदोलन है, जिसमें सैकड़ों फूल खिल सकते हैं। उत्तर–आधुनिक में बहु–संस्कृतियों का निवास हो सकता है।''

उत्तर–आधुनिकता का तात्पर्य एक ऐतिहासिक काल से है। यह काल आधुनिकता के काल की समाप्ति के बाद प्रारम्भ होता है। उत्तर–आधुनिकतावाद का संदर्भ सांस्कृतिक तत्वों से है। यह सम्पूर्ण अवधारणा सांस्कृतिक है। उत्तर–आधुनिकता आधुनिकता के बाद का, समाज का विकास है।

डेविड हारवे ने अपनी पुस्तक 'कन्डीशन ऑफ पोस्ट मोडर्निटी' में उत्तर–आधुनिकता के सम्बन्ध में जो भी विश्लेषण किए उसके आधार पर निम्नांकित लक्षण को विवेचित किया जा सकता है–

1. उत्तर–आधुनिकतावाद एक सांस्कृतिक पैराडिम है, इसमें आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं का सम्मिश्रण है। इसकी अभिव्यक्ति जीवन की विभिन्न शैलियों में यथा साहित्य, दर्शन कला आदि में दृष्टिगोचर होता है।
2. उत्तर–आधुनिकता विखण्डन में दिखाई देती है। यह समानता की अपेक्षा विविधता को स्वीकार करती है।
3. उत्तर–आधुनिकता बहुआयामी है। यह एक ऐसी संस्कृति है, जिसमें बहुलता है। उत्तर–आधुनिकता के केन्द्र अपेक्षित महिलाएँ, हाशिए पर रहने वाले लोग हैं।
4. उत्तर–आधुनिकता का आग्रह है कि स्थानीय स्तर पर हुई समस्त प्रक्रियाओं को विश्लेषित किया जाना चाहिए।
5. जेमेसन, जो कि मार्क्सवादी उत्तर–आधुनिकवेत्ता है, का कहना है कि पूँजीवादी विकास का एक बहुत बड़ा चरण उत्तर–आधुनिकता की संस्कृति है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उत्तर–आधुनिकता संस्कृति प्रधान है इसी संस्कृति का अंग अति उपभोक्तावाद है। उत्तर–आधुनिकता कोई नवीन जीवनशैली नहीं है और न ही कोई नवीन विचारधारा। समाज की जटिलता तथा औद्योगीकरण की उन्नत अवस्था ने विचारों को कहीं अधिक तर्कसंगत बना दिया। इसलिए समाज का उत्तर आधुनिक स्वरूप में परिवर्तित होना अपरिहार्य हो गया। उत्तर–आधुनिकतावादियों का यह विश्वास है कि पर्यावरण की विकट स्थिति आधुनिक समाज की देन है। मैक्कीबेन का कहना है कि 'आधुनिक समाज ने प्रकृति का ही अंत कर दिया है।' उच्च तकनीकी, करियर–भावना, अधिकारी तंत्र, उदार प्रजातंत्र और अवैयक्तिक जीवन आधुनिकीकरण की देन रहे हैं। सत्य तो यह है कि आधुनिकीकरण ने मनुष्य जीवन का यंत्रीकरण कर दिया है वह क्या पहनेगा, कैसे अभिवादन करेगा यहाँ तक कि क्या पढ़ेगा, ने उसके जीवन को पीड़ादायक बना दिया है। आधुनिकता के अकादमिक अनुशासन, नियबद्ध जीवन पद्धति को तोड़ने का प्रयास ही उत्तर–आधुनिकता है।

सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि उत्तर–आधुनिकता को

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सभीस माजशास्त्रियोंने स्वीकार्र कयाह ोए ेसान हींहै ास मकालीन समाजशास्त्री जो प्रकार्यवाद और मार्क्सवाद के प्रणेता हैं, इसे स्वीकार नहीं करते। कैलिनिकोस ने अपनी पुस्तक 'अगेंस्ट पोस्ट मोडरनिटी ए मार्क्सीस्ट क्रिटिक' में यह बताने की चेष्टा की कि उत्तर-आधुनिकता और कुछ न होकर केवल यह बताती है कि समाज के कुछ सफेदपोश लोग अत्यधिक उपभोग करते हैं और इस अर्थ में यह अवधारणा एक पूंजीवादी अवधारणा है। सारांशत: समाजशास्त्र के एक विषय के रूप में अब तक की यात्रा के इस पड़ाव पर उत्तर-आधुनिकता के सम्बन्ध में कोई निर्णायक समीक्षा करना दुष्कर कार्य है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

हमने इस अध्याय में सांस्कृतिक परिवर्तन एवं संबंधित अवधारणाओं के बारे में जाना उनको स्मरण करने की आवश्यकता है–

- जब भी किसी समाज की संरचनात्मक व्यवस्था में परिवर्तन होता है तो स्वाभाविक रूप से सांस्कृतिक परिवर्तन भी होता है।
- समाज सुधारकों के अथक प्रयासों ने 19वीं सदी के सांस्कृतिक परिवर्तनों में एक महत्ती भूमिका निभाई।
- उन्नीसवीं सदी में उदारवाद एवं स्वतंत्रता के नवीन विचार, परिवार रचना एवं विवाह से सम्बन्धित क्रांतिकारी विचारों ने सामाजिक 'संस्तरण में स्त्री की प्रस्थिति को ऊँचा किया।'
- अंग्रेजों के शासन के फलस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों को श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण नाम दिया।
- पश्चिमीकरण के फलस्वरूप जातिगत भेदभाव में शिथिलता आई, साथ ही भाषायी चेतना और प्रादेशिकता के बीज प्रस्फुटित हुए।
- श्रीनिवास ने दक्षिण भारत के कुर्ग लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन के विश्लेषण के लिए 1952 में संस्कृतीकरण की अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग किया।
- श्रीनिवास ने जाति व्यवस्था को 'उर्ध्वमुखी गतिशीलता' के आधार पर विवेचित किया है। किसी भी समूह का संस्कृतीकरण उसकी प्रस्थिति को स्थानीय जाति संस्तरण में उच्चता की तरफ ले जाता है।
- धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत प्रतिदिन के जीवन पर धार्मिक नियंत्रण का कम होना, कर्मकाण्डीय प्रक्रिया का तर्क द्वारा स्थानापन्न किया जाना है।
- भारत में सामाजिक व धार्मिक आंदोलन, पश्चिमीकरण, धार्मिक संगठनों के अभाव, नगरीकरण तथा यातायात एवं संचार साधनों में उन्नति ने धर्मनिरेक्षीकरण को बढ़ावा दिया।
- धर्मनिरपेक्षीकरण ने पवित्रता और अपवित्रता की धारणा को परिवर्तित किया।
- 'आधुनिकता' का सम्बन्ध केवल प्राविधिक उन्नति से नहीं है बल्कि वैज्ञानिक, विश्व दृष्टिकोण, समकालीन समस्याओं के लिए मानवीकी का अंतरीकरण एवं विज्ञान के दार्शनिक दृष्टिकोण से भी है।
- आधुनिकीकरण के 20वीं शताब्दी के प्रथम भाग में आधुनिक तकनीकी का विकास हुआ। शताब्दी का दूसरा भाग उत्तर आधुनिकीकरण का है।
- उत्तर-आधुनिकतावाद का संदर्भ सांस्कृतिक तत्वों से है। यह सम्पूर्ण अवधारणा सांस्कृतिक है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. मुस्लिम महिलाओं की राष्ट्रस्तरीय संस्था 'अंजुमन-ए-ख्वातीन-ए-इस्लाम' की स्थापना किस वर्ष हुई?
   (अ) 1920 (ब) 1916
   (स) 1914 (द) 1918
2. पश्चिमीकरण का प्रभाव जीवन के किस क्षेत्र पर पड़ा?
   (अ) सांस्कृतिक क्षेत्र (ब) राजनीतिक क्षेत्र
   (स) धार्मिक क्षेत्र (द) उपर्युक्त सभी
3. भारत में धर्म निरपेक्षीकरण के कारक कौन से हैं?
   (अ) पश्चिमीकरण
   (ब) सामाजिक व धार्मिक आंदोलन
   (स) नगरीकरण
   (द) उपर्युक्त सभी
4. 'सोशल चेंज एन मॉडर्न इंडिया' पुस्तक के लेखक कौन हैं?
   (अ) एबरक्रॉमी (ब) जी.एस. घुर्ये
   (स) एम.एन. श्रीनिवास (द) डी.एन. मजूमदार
5. लर्नर ने आधुनिकीकरण की किस विशेषता का उल्लेख किया है?
   (अ) शिक्षा का प्रसार (ब) नगरीकरण में वृद्धि
   (स) वैज्ञानिक भावना (द) उपर्युक्त सभी
6. 'पोस्ट मॉडर्न कंडीशन' पुस्तक के लेखक कौन हैं?
   (अ) अरनाल्ड टॉयन्बी (ब) डेविड हारवे
   (स) एम.एन. श्रीनिवास (द) रिचार्ड गोट

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. किस समाज सुधारक ने अखिल भारतीय मुस्लिम महिला सम्मेलन में, बहु विवाह के विरुद्ध प्रस्ताव प्रस्तुत किया।
2. 'अंग्रेजी शासन के कारण भारतीय समाज और संस्कृति में बुनियादी और स्थायी परिवर्तन हुए।...' यह कथन किस समाजशास्त्री का है?
3. पश्चिमीकरण ने समाज में किस नवीन वर्ग को जन्म दिया?
4. श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण के कितने स्तरों की चर्चा की है?
5. समाजशास्त्र की कौन सी अवधारणा जाति प्रथा संस्तरण पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण की व्याख्या करती है।
6. किस समाजशास्त्री ने जाति व्यवस्था को 'ऊर्ध्वमुखी गतिशीलता' के आधार पर विवेचित किया था?
7. हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इंडिया पुस्तक के लेखक कौन हैं?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

8. 'कास्टए ंडक म्युनिकेशनइ नए नइ ंडियर्न वलेज 'प ुस्तकके लेखक कौन हैं?
9. धर्मनिरपेक्षीकरण 'एक ऐसी प्रक्रिया को इंगित करती है जिसके अंतर्गत विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ, धार्मिक अवधारणाओं की पकड़ या प्रभाव से बहुत हद तक मुक्त हो जाती है।' यह कथन किस विद्वान ने दिया?
10. 'आधुनिकता का मतलब ये समझ में आता है कि इसके समक्ष सीमित संकीर्ण स्थानीय दृष्टिकोण कमजोर पड़ जाते हैं...।' यह कथन किसका है?
11. 'आधुनिकीकरण कोई उद्देश्य नहीं है बल्कि एक प्रक्रिया है, कोई अपनाई जाने वाली वस्तु नहीं है बल्कि उसमें सम्मिलित होना है...' यह कथन किस विद्वान का है?
12. 'आधुनिक समाज ने प्रकृति का ही अंत कर दिया है।' यह कथन किस विद्वान का है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. 'संरचनात्मक परिवर्तन' शब्द किस परिवर्तन को बताता है?
2. औपनिवेशिक शासन के प्रभाव की उत्पत्ति किन दो घटनाओं की परिणति है जो कि परस्पर सम्बन्धित हैं?
3. सतीश सबरवाल ने औपनिवेशिक भारत में आधुनिक परिवर्तन के किन तीन पक्षों की चर्चा की?
4. संचार के उन साधनों के नाम लिखे जिन्होंने समाज सुधारकों एवं राष्ट्रवादी नेताओं के विचारों को प्रचारित और प्रसारित किया।
5. पश्चिमीकरण का अर्थ लिखिए।
6. पश्चिमीकरण का प्रभाव जीवन के किन क्षेत्रों पर पड़ा?
7. भारतीय संस्कृति की भोजन-शैली को पश्चिमीकरण ने किस रूप में प्रभावित किया।
8. श्रीनिवास ने संस्कृतीकरण का सिद्धांत देने से पूर्व किस समाज का अध्ययन किया था?
9. एस.वी. केतकर ने संस्कृतीकरण की क्या परिभाषा दी?
10. संस्कृतीकरण एक प्रोत्साहन के तीन कारकों का उल्लेख करें।
11. लम्बवत सामाजिक गतिशीलता से क्या तात्पर्य है?
12. धर्मनिरपेक्षीकरण के सम्बन्ध में एवरक्रामी ने क्या कहा?
13. श्रीनिवास ने धर्मनिरपेक्षीकरण की परिभाषा में तीन कौन से मुख्य तत्वों का उल्लेख किया।
14. ब्रायन विल्सन ने धर्मनिरपेक्षीकरण के उद्भव के किन मुख्य दो कारकों का उल्लेख किया है?
15. योगेन्द्र सिंह द्वारा आधुनिकीकरण की दी गई परिभाषा लिखें।
16. लर्नरद्व ाराअ ाधुनिकीकरणक ेद ेग ईवि शेषताओंम ेंस ेच ार विशेषताओं का उल्लेख करें।
17. उत्तर-आधुनिकीकरण क्या है संक्षिप्त में लिखें।
18. उत्तर-आधुनिकता की अवधारणा के सम्बन्ध में कोलिनिकोस ने क्या लिखा है?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. समाज सुधार आंदोलन किस प्रकार उन्नीसवीं सदी में, भारत में सांस्कृतिक परिवर्तन के उत्तरदायी कारक बने, विवेचित कीजिए।
2. भारत में पश्चिमीकरण के फलस्वरूप हुई सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा करें।
3. संस्कृतीकरण की अवधारणा का आलोचनात्मक विश्लेषण करें।
4. भारत में धर्मनिरपेक्षीकरण के उद्भव के कारकों की विस्तार से व्याख्या करें।
5. आधुनिकीकरण की विशेषताएँ बताते हुए उत्तर-आधुनिकरण के बारे में बताएँ।

उत्तरमाला

1. (स) 2. (द) 3. (द) 4. (स) 5. (द) 6. (अ)।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 6

ग्रामीण समाज में परिवर्तन के उपकरण– पंचायतीराज, राजनैतिक दल, दबाव समूह

ग्रामीण समाज में परिवर्तन किन कारकों से अर्थात् किन कारणों से आता है? परिवर्तन लाने वाले जो कारक हैं, उन्हीं को परिवर्तन के उपकरण भी कह सकते हैं। प्रस्तुत अध्याय में जिन उपकरण की चर्चा हम करेंगे, वे एक प्रकार से संस्थागत अभिकरण के रूप में हैं। इसलिए स्पष्ट हो जाना चाहिए कि ग्रामीण समाज में परिवर्तन के उपकरण केवल कारक अथवा कारण ही नहीं हैं। उनके साथ में संस्थाओं के रूप में भी हैं। अतः हम उन तीन महत्त्वपूर्ण संस्थागत अभिकरणों की विवेचना करेंगे जो भारतीय समाज में परिवर्तन के कारक कहे जा सकते हैं।

पंचायतीराज

भारत गाँवों का देश है। गाँवों की प्रगति एवं उन्नति पर ही भारत की प्रगति एवं उन्नति निर्भर करती है। गाँधीजी ने ठीक ही कहा था कि यदि गाँव नष्ट होते हैं तो भारत नष्ट हो जाएगा। इसलिए संविधान के अनुच्छेद 40 में राज्यों को पंचायतों के गठन का निर्देश दिया गया है। इसके साथ ही संविधान की 7वीं अनुसूची (राज्य सूची) की प्रविष्टि–5 में ग्राम पंचायतों को शामिल करके उनके सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार भी राज्य को दिया गया। 1993 में संविधान में 73वाँ संशोधन करके पंचायतीराज संस्था को संवैधानिक मान्यता दी गई और संविधान में भाग 9 को पुन: जोड़कर तथा इस भाग में 16नये अनुच्छेदों और संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़कर पंचायत के गठन, पंचायत के सदस्यों का चुनाव, सदस्यों के लिए आरक्षण तथा पंचायत के कार्यों के सम्बन्ध में व्यापक प्रावधान किए गए।

स्वतंत्रता के पश्चात् सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की सफलता को परखने के लिए 1957 में श्री बलवन्त राय मेहता अध्ययन दल का गठन किया गया। अध्ययन दल को सौंपे गए कार्यों में, एक कार्य जिसका कि दल को अध्ययन करना था, कि कार्य सम्पादन में अधिक तीव्रता लाने के उद्देश्य से कार्यक्रम का संगठनात्मक ढाँचा तथा कार्य करने के तरीके कहाँ तक उपयुक्त थे। इस दल ने सरकार को बताया कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम की बुनियादी त्रुटि यह है कि जनता का इसमें सहयोग नहीं मिला। अध्ययन दल ने सुझाव दिया कि एक कार्यक्रम को, जिसका लोगों के दिन–प्रतिदिन के जीवन से सम्बन्ध है, केवल उन लोगों के द्वारा ही क्रियान्वित किया जा सकता है। इस अध्ययन दल की रिपोर्ट में कहा गया कि जब तक स्थानीय नेताओं को जिम्मेदारी व अधिकार नहीं सौंपे जाते, संविधान के निर्देशक सिद्धान्तों का विकास सम्बन्धी लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता है। मेहता अध्ययन दल ने 1957 के अन्त में अपनी रिपोर्ट दी। रिपोर्ट में यह सिफारिश की गई कि लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने हेतु पंचायतीराज संस्थाओं की तुरन्त शुरुआत की जानी चाहिए। अध्ययन दल ने इसे **'लोकतंत्रीय विकेन्द्रीकरण'** का नाम दिया।

इस प्रकार लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और विकास कार्यक्रमों में जनता का सहयोग लेने के ध्येय से पंचायतीराज की शुरुआत की गई। इनके स्वरूप में विभिन्न राज्यों में कुछ अन्तर था, मगर कतिपय विशेषताएँ एक–सी थीं।

(1) पंचायतीराज की तीन सीढ़ियाँ थीं–ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद्।

(2) पंचायतीराज प्रणाली में स्थानीय लोगों को काम करने की आजादी थी और देखरेख उच्च स्तर से होता था।

(3) सामुदायिक विकास कार्यक्रम की भाँति यह शासकीय ढाँचे का अंग नहीं था। पंचायतीराज संस्थाएँ निर्वाचित होती थीं और उसके कर्मचारी जनप्रतिनिधियों के अधीन काम करते थे।

(4) साधन जुटाने और जनसहयोग संगठित करने का भी इन संस्थाओं को पर्याप्त अधिकार था।

पंचायतीराज की आवश्यकता तथा महत्त्व– पंचायतें पुराने समय में भी विद्यमान थीं मगर वर्तमान पंचायती संस्थाएँ इस मामले में भी नई हैं कि उनको पर्याप्त अधिकार, साधन और जिम्मेदारियाँ सौंपी गई हैं। नाम पुराना है मगर संस्थाएँ नई हैं। इनका महत्त्व एवं आवश्यकता निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट है–

1. भारतीय समाज में स्वच्छ/स्वस्थ प्रजातांत्रिक परम्पराओं को स्थापित करने के लिए पंचायत व्यवस्था ठोस आधार प्रदान करती है। इसके माध्यम से शासन–सत्ता जनता के हाथों में चली जाती है। यह संस्था ग्रामवासियों में प्रजातांत्रिक संगठनों के प्रति रुचि स्थापित करती है।
2. ये संस्थाएँ भावी भारत का नेतृत्व तैयार करती हैं। विधायकों, मंत्रियों एवं जनप्रतिनिधियों को प्राथमिक अनुभव एवं प्रशिक्षण

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रदान करती हैं, जिससे वे ग्रामीण सामाजिक समस्याओं से अवगत होते हैं। इस प्रकार ग्रामीण विकास कार्यों में जनता की रुचि बढ़ाने में पंचायतों का प्रभावी योगदान है।

3. पंचायतीराज संस्थाएँ केन्द्र एवं राज्य सरकारों को स्थानीय समस्याओं के भार से हल्का करती हैं। उनके द्वारा शासकीय शक्तियों एवं कार्यों का विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है। शासकीय सत्ता गिनी-चुनी संस्थाओं में न रहकर गाँव की पंचायत के कार्यकर्ताओं के हाथों में पहुँच जाती है।
4. पंचायतों के कार्यकर्ता और पदाधिकारी स्थानीय समाज व राजनीतिक व्यवस्था के बीच की कड़ी हैं। इन स्थानीय पदाधिकारियों के बिना ऊपर से प्रारम्भ किये गये राष्ट्र निर्माण के क्रियाकलापों का चलना मुश्किल हो जाता है। पंचायतों के सहयोग के बिना सरकारी अधिकारियों का कार्य भी कठिन हो जाता है।
5. पंचायतें नागरिकों को अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रयोग की शिक्षा देती हैं साथ ही उनमें नागरिक गुणों के विकास करने में भी मदद करती हैं।
6. ग्रामीण समाज इन संस्थाओं के माध्यम से शासन-सत्ता के बहुत करीब पहुँच जाता है। जनता व शासन में एक-दूसरे की कठिनाइयों को समझने की भावनाएँ पैदा होती हैं। इससे दोनों में परस्पर सहयोग बढ़ता है जो ग्रामीण/सामाजिक उत्थान के लिए बहुत ही आवश्यक है।

संक्षेप में पंचायतों का मूल उद्देश्य ग्रामीण समाज के विकास के प्रयासों और जनता के बीच तारतम्य स्थापित करना है। वस्तुत: पंचायतीराज की सफलता पर ही भारतीय ग्रामीण समाज का भविष्य निर्भर है।

पंचायतीराज का नया प्रतिमान : 73वां संविधान संशोधन– संविधान के 73वें संशोधन द्वारा पंचायतीराज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई है। संविधान में नया अध्याय-9 जोड़ा गया है। अध्याय-9 द्वारा संविधान में 16अनुच्छेद और एक अनुसूची-ग्यारहवीं अनुसूची जोड़ी गई है। 25 अप्रैल, 1993 से 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम 1993 लागू किया गया। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. ग्रामसभा– ग्रामसभा गाँव के स्तर पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगी और ऐसे कार्यों को करेगी जो राज्य विधानमण्डल विधि बनाकर उपबंध करे।

2. पंचायतों का गठन– अनुच्छेद 243 ख में त्रिस्तरीय पंचायतीराज का प्रावधान है। प्रत्येक राज्य में ग्राम-स्तर, मध्यवर्ती-स्तर और जिला-स्तर पर पंचायतीराज संस्थाओं का गठन किया जायेगा, परन्तु उस राज्य में जिसकी जनसंख्या 20 लाख से अधिक नहीं हो, वहाँ मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों का गठन करना आवश्यक नहीं होगा।

3. पंचायतों की संरचना– पंचायतों के सभी स्थान पंचायत राज क्षेत्र के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने गये व्यक्तियों से भरे जायेंगे। सभी स्तर के पंचायतों के सभी सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्षत: तथा मध्यवर्ती एवं जिला-स्तर के पंचायत के अध्यक्ष का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से किया जाएगा।

4. पंचायतों में आरक्षण– पंचायत के सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के लिए उनको जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण प्रदान किया जाएगा। ऐसे स्थानों को प्रत्येक पंचायत में चक्रानुक्रम से आवंटित किया जाएगा। आरक्षित स्थानों में से एक-तिहाई स्थान (33 प्रतिशत) अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिए आरक्षित रहेगा।

5. पंचायतों का कार्यकाल– पंचायतीराज संस्थाओं का कार्यकाल 5 वर्ष का होगा। किसी पंचायत के गठन के लिए निर्वाचन 5 वर्ष की अवधि पूर्ण होने से पूर्व और विघटन की तिथि से 6माह की समाप्ति से पूर्व करा लिया जाएगा।

6. वित्त– पंचायतों की वित्तीय स्थिति के पुनर्निरीक्षण के लिए राज्य के राज्यपाल द्वारा एक वित्त आयोग का गठन किया जायेगा, जो पंचायतों की वित्तीय स्थिति में सुधार के उपाय, राज्य संचित निधि से पंचायतों को अनुदान एवं कर (Tax) निर्धारण की सिफारिश करेगा।

पंचायतों के कार्य– 11वीं अनुसूची में 29 विषय ऐसे हैं जिन पर पंचायतें विधि/कानून बनाकर इन कार्यों को कर सकेंगी, जैसे-कृषि, जल प्रबन्ध, भूमि सुधार, पशुपालन, मछली पालन, वनोद्योग, लघु उद्योग, कुटीर उद्योग, ग्रामीण आवास, पेयजल, ईंधन, चारा, विद्युतीकरण, ऊर्जा, गरीबी उपशमन, शिक्षा, पुस्तकालय, बाजार व मेले, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, परिवार कल्याण, महिला एवं बाल विकास, समाज कल्याण, लोक वितरण प्रणाली इत्यादि।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि देश में पंचायतीराज व्यवस्था की शुरुआत एक ऐतिहासिक घटना थी, जिसका प्रभाव भारतीय ग्रामीण विकास एवं सामाजिक परिवर्तन में देखा जा सकता है।

राजस्थान में पंचायतीराज– ग्रामीण सामाजिक परिप्रेक्ष्य में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरणए वंस ामुदायिक विकासके क ार्यक्रमोंक ो सफल बनाने हेतु पंचायतीराज संस्थाएँ मील का पत्थर साबित हुईं। जनता की सहभागिता सुनिश्चित करने एवं सहयोग प्राप्त करने के लिए पंचायतीराज की त्रिस्तरीय व्यवस्था शुरू की गई।

राजस्थान की विधानसभा में 2 सितम्बर, 1959 को पंचायतीराज अधिनियम पारित किया गया और इस नियम के प्रावधानों के आधार पर 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायतीराज का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा किया गया। इसके बाद 1959 में आन्ध्र प्रदेश में, 1960 में असम, तमिलनाडु व कर्नाटक, 1962 में महाराष्ट्र, 1963 में गुजरात तथा 1964 में पश्चिम बंगाल में विधानसभाओं द्वारा पंचायतीराज अधिनियम पारित करके पंचायतीराज व्यवस्था को

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रारम्भ किया गया। इसका प्रभाव ग्रामीण समाज के विकास एवं क्रियाकलापों पर प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दे रहा है।

अगस्त, 1997 में पंचायतीराज संस्थाओं को अधिकार सौंपने के मसले पर सम्पन्न हुए राज्य के मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री भैरोंसिंह शेखावत ने संविधान के 73वें संशोधन पर पुनर्विचार की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए कहा कि सरपंच को पंचायत समिति का तथा प्रधान को जिला परिषद् का सदस्य बनाया जाना चाहिए। इससे ग्राम पंचायत, पंचायत समिति व जिला परिषद् में बेहतर सामंजस्य हो सकेगा। उनके अनुसार पंचायत समितियों एवं जिला परिषदों के सदस्यों का सीधा चुनाव करने से जो एक खर्चीली व्यवस्था राज्य सरकारों पर लादी गई है, उसका अविलम्ब निराकरण किया जाना चाहिए।

राजस्थान में पंचायतीराज की त्रिस्तरीय व्यवस्था

पंचायतीराज का त्रिस्तरीय ढाँचा– 73वेंस 'विधानस 'शोधन अधिनियम प्रवर्तन के पश्चात् सभी राज्यों ने अपने अधिनियमों में संशोधन कर संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप नियम निर्धारित किये जिससे पूरे देश में पंचायतीराज व्यवस्था का नया ढाँचा सामने आया। राजस्थान में भी 1994 में पूर्व पंचायतीराज अधिनियमों में संशोधन कर नया पंचायतीराज अधिनियम, 1994 बनाया गया, जिसमें मूल रूप से त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था के अतिरिक्त एक और स्तर ग्रामसभा का सृजन किया गया। (1) जिला परिषद (2) पंचायत समिति (3) ग्राम पंचायत (4) ग्राम सभा।

उक्त चार स्तरों में से वर्तमान में 3 इकाइयाँ ही सक्रिय हैं। चौथी इकाई ग्राम सभा का अध्यक्ष भी ग्राम पंचायत का सरपंच होता है तथा गाँव के सभी वयस्क नागरिक जिनका नाम मतदाता सूची में है एवं ग्राम पंचायत के चयनित पंच इसके सदस्य होते हैं। ग्राम सभा की बैठकों में जिला कलेक्टर द्वारा नामित अधिकारी भी उपस्थित रहते हैं परन्तु वे विचार-विमर्श में भाग नहीं लेते हैं। चूँकि ग्राम सभा का अध्यक्ष भी सरपंच होता है, अतः हम यहाँ ग्राम पंचायत के गठन एवं कार्यों पर विशेष चर्चा करेंगे।

ग्राम पंचायत

भारत की त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था का धरातल स्तर ग्राम पंचायत के नाम से जाना जाता है। वास्तव में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का व्यावहारिक स्वरूप ग्राम पंचायत ही है। अतः इसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्र में पंचायतों की संरचना एवं कार्यों में एकरूपता लाने का प्रयास किया गया। पंचायत की संरचना एवं कार्यों के निर्धारण के लिए राज्यों ने भी अपने-अपने अधिनियम में संशोधन किया है।

ग्राम पंचायत की संरचना– राजस्थान में नवीन पंचायतीराज अधिनियम, 1994 में पंचायत की संरचना के सम्बन्ध में प्रावधान किये गये, जिसमें 1999 एवं सन् 2000 में भी संशोधन किया गया। वर्तमान में पंचायत की संरचना निम्नानुसार है–

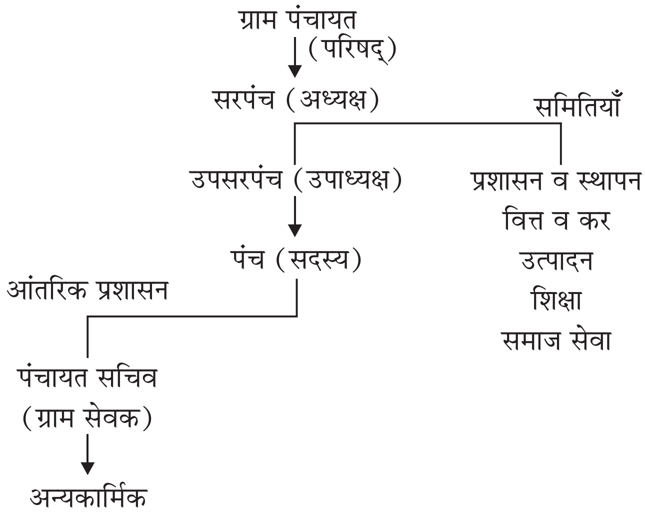

ग्राम पंचायत में निर्वाचित सदस्यों की एक परिषद् होती है। निर्वाचित परिषद् में एक अध्यक्ष होता है, जिसे सरपंच कहा जाता है। सरपंच का चुनाव प्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा किया जाता है। सरपंच के चुनाव के साथ ही वार्ड पंचों का चुनाव भी प्रत्यक्ष रूप से जनता करती है। ग्राम पंचायत में एक उपसरपंच भी होता है, जिसका चुनाव निर्वाचित सदस्यों के द्वारा किया जाता है। पंच एवं सरपंच के निर्वाचन में संविधान के7 3वेंस 'शोधनके अ नुरूपअ नुसूचितज ाति,अ नुसूचितज नजाति, पिछड़े वर्ग एवं महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किये गये हैं। महिलाओं के लिए कुल निर्वाचित होने वाले स्थानों में एक-तिहाई स्थान और अन्य वर्गों के लिए उनकी जनसंख्या के आधार पर चक्रानुक्रम में स्थान आरक्षित किये जाते हैं। राजस्थान में सन् 2010 में हुए पंचायतीराज संस्थाओं के आम चुनाव में समस्त वर्गों के सभी स्तर पर महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत पद आरक्षित किये गये। ग्राम पंचायत का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। सदस्यों की योग्यता के लिए भी अधिनियम में प्रावधान किया गया है।

सरपंच ग्राम पंचायत का अध्यक्ष होता है। वह ग्राम पंचायत के कार्य के संचालन का भी उत्तरदायी होता है। सरपंच की अनुपस्थिति में उपसरपंच, सरपंच के सभी शक्तियों एवं कार्यों का प्रयोग करता है।

सरपंच की शक्तियाँ– अधिनियम की धारा 32 के अनुसार सरपंच निम्न कार्यों को निष्पादित करता है–

1. पंचायत की बैठकों की अध्यक्षता करना।
2. पंचायत की बैठकों को आमंत्रित करना व संचालन करना।
3. पंचायत की प्रशासनिक व्यवस्था पर नियंत्रण करना।
4. पंचायत की वित्तीय व्यवस्था पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण करना।
5. पंचायत के अभिलेखों की रक्षा करना।
6. पंचायत के कर्मचारियों पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण करना।
7. ग्राम सभा की बैठकों को आमंत्रित करना एवं अध्यक्षता करना।
8. राज्य/केन्द्र सरकार द्वारा दिये गये अन्य समस्त कार्य जो अधिनियम के माध्यम से सौंपे गए हों।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

ग्राम पंचायतों के कार्य– पंचायतीराज अधिनियम 1994 की प्रथम अनुसूची में ग्राम पंचायत के कार्यों के सम्बन्ध में प्रावधान किए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. सामान्य कार्य–

1. पंचायत क्षेत्र के विकास के लिए योजनाओं का क्रियान्वयन करना।
2. पंचायत का वार्षिक बजट तैयार करना।
3. सार्वजनिक सम्पत्तियों से अतिक्रमण हटाना।
4. प्राकृतिक आपदाओं में मदद पहुँचाना।
5. पंचायत क्षेत्र से सम्बन्धित सांख्यिकी का आकलन करना।

2. प्रशासनिक कार्य–

1. जनगणना करना।
2. आवास स्थलों का संख्यांकन करना।
3. कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु योजना बनाकर जिला परिषद को प्रस्तुत करना।
4. कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु वित्त का अनुमान तैयार करना।
5. सार्वजनिक स्थलों पर नियंत्रण।
6. जिन मामलों में पंचायत निर्णय नहीं कर सकती, उन्हें उच्च स्तर तक पहुँचाना।
7. पंचायत के अभिलेखों का संरक्षण करना।
8. जन्म, मृत्यु एवं विवाह का पंजीयन करना।

3. कृषि के क्षेत्र में कार्य–

1. कृषि विकास हेतु ग्रामीण नागरिकों को प्रोत्साहित करना।
2. बंजर भूमि विकास कर कृषि योग्य बनाना।
3. अधिक उपज प्राप्त करने हेतु उन्नत खाद एवं बीज की व्यवस्था करना।

4. लघु उद्योगों से सम्बन्धित कार्य–

1. लघु उद्योग जैसे–पशुपालन, मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन, डेयरी इत्यादि की स्थापना के लिए नागरिकों को प्रोत्साहित करना।
2. लघु उद्योगों से सम्बन्धित प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना।

5. निर्माण सम्बन्धी कार्य–

1. ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों का निर्माण करना।
2. आवास स्थलों का निर्माण करना।
3. पीने के पानी की व्यवस्था, जलाशय एवं कुओं का निर्माण करना।
4. जलमार्ग एवं अन्य संचार साधनों की व्यवस्था करना।

6. शिक्षा सम्बन्धी कार्य–

1. ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना।
2. साक्षरता कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।
3. अनौपचारिक शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहित करना।

7. सामाजिक विकास सम्बन्धी कार्य–

1. कमजोर एवं पिछड़े वर्गों के कल्याण के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।
2. विशेष आवश्यकता वाले (दिव्यांग) के कल्याण हेतु कार्य करना।
3. महिला एवं बाल विकास के कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।

उक्त कार्यों के अतिरिक्त अधिनियम में ग्रामीण लोगों के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना, प्रदर्शनियों एवं मेलों का आयोजन करना, सिंचाई की व्यवस्था करना, सरकारी सम्पत्तियों के रखरखाव आदि का भी प्रावधान किया गया है।

ग्राम पंचायत की संरचना एवं कार्यों से यह स्पष्ट होता है कि ग्राम पंचायत पंचायतीराज की सबसे निचले स्तर की एक महत्त्वपूर्ण संस्था है। ग्रामीण क्षेत्रों की जनता की अधिक से अधिक सहभागिता के कारण ग्रामीण विकास से सम्बन्धित सभी कार्यों का संचालन इसी संस्था के द्वारा किया जाता है। इस संस्था ने समाज के सभी वर्गों की विकास में सहभागिता को सुनिश्चित किया है। ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन में ग्राम पंचायत सबसे सशक्त उपकरण सिद्ध हो रहा है।

पंचायत समिति

त्रिस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था का सबसे महत्त्वपूर्ण स्तर पंचायत समिति को माना गया है। पूरे जिले को कुछ खण्डों में विभाजित कर प्रत्येक खण्ड स्तर पर पंचायत समिति की स्थापना की गई। इस प्रकार की राजस्थान में कुल 237 पंचायत समितियाँ हैं, जो योजनाओं एवं कार्यक्रमों को अपने क्षेत्र में संचालित करती हैं।

पंचायत समिति की संरचना–नवीन पंचायतीराज अधिनियम, 1994 एवं संशोधन 1999, 2000 के अन्तर्गत पंचायत समिति की संरचना निम्नानुसार है–

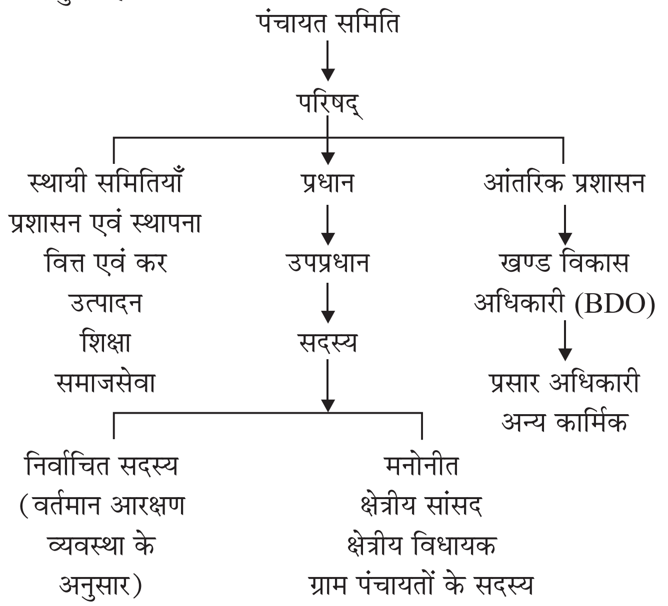

पंचायत समिति की संरचनात्मक व्यवस्था को निम्नानुसार समझा जा सकता है–

1. परिषद्– प्रत्येक पंचायत समिति में एक सर्वोच्च स्तर की परिषद् होती है, जिसमें दो प्रकार के सदस्य पाये जाते हैं–

(1) निर्वाचित सदस्य– अधिनियम के तहत पंचायत समिति

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

क्षेत्र को कुछ वार्डों में विभक्त किया जाता है। प्रत्येक वार्ड से एक सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होता है। अधिनियम में यह प्रावधान किया गया है कि एक लाख तक की जनसंख्या वाले पंचायत समिति क्षेत्र में कुल 15 वार्ड बनाये जायेंगे। एक लाख से अधिक जनसंख्या होने पर प्रत्येक 15 हजार की जनसंख्या पर 2 सदस्यों की वृद्धि की जाएगी। पंचायत समिति परिषद् सदस्योंके च ुनावके ि लएअ नुसूचितज ाति,अ नुसूचितज नजातिक ी उसकी संख्या के अनुपात में तथा अन्य पिछड़े वर्ग को 21 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था को चक्रानुक्रम में लागू किया गया है। सन् 2010 से राजस्थान में महिलाओं को सभी पदों पर 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था लागू की गई है।

पंचायत समिति के कार्य संचालन के लिए जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों में से अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष का निर्वाचन किया जाता है। अध्यक्ष को प्रधान तथा उपाध्यक्ष को उपप्रधान कहते हैं। इन पदों पर भी आरक्षण चक्रानुक्रम में किया जाता है। पंचायत समिति का प्रधान परिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है एवं प्रशासनिक तन्त्र पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण भी करता है। प्रथम बैठक जिला कलेक्टर द्वारा आमंत्रित की जाती है। शेष सभी बैठकें जो माह में एक बार प्रधान द्वारा आयोजित की जाती हैं। एक-तिहाई सदस्यों के लिखित अनुरोध पर भी बैठक आयोजित की जा सकती है। बैठक का कोरम तब पूरा माना जाता है जब कुल सदस्यों के एक-तिहाई सदस्य बैठक में उपस्थित हों। बैठक में सभी निर्णय बहुमत के आधार पर लिए जाते हैं।

अधिनियम में प्रधान, उपप्रधान एवं सदस्यों को हटाने का भी प्रावधान है। कोई भी सदस्य स्वयं त्यागपत्र देकर हट सकता है। अविश्वास प्रस्ताव पास कर हटाया जा सकता है। राज्य सरकार को भी अधिकार है कि वह किसी भी सदस्य या पदाधिकारी को निलम्बित कर सकती है।

(2) मनोनीत सदस्य– अधिनियम में पंचायत समिति परिषद् में कुछ मनोनीत सदस्यों का भी प्रावधान है। मनोनीत सदस्य बैठक में उपस्थित रहकर सुझाव तो दे सकते हैं परन्तु निर्णय लेते समय मत देने का अधिकार इनको नहीं होता है। इस श्रेणी के निम्न सदस्य हैं–

(1) पंचायत समिति क्षेत्र के सांसद

(2) पंचायत समिति क्षेत्र के विधानसभा सदस्य (विधायक)

(3) पंचायत समिति क्षेत्र की समस्त ग्राम पंचायतों के अध्यक्ष/सरपंच

पंचायत समिति की शक्तियाँ– पंचायत समिति की शक्तियों को 2 शीर्षकों में समझा जा सकता है–

1. सामान्यकालीन शक्तियाँ– अधिनियम के प्रावधानानुसार सामान्यकालीन परिस्थितियों में विकास अधिकारी इन कार्यों को निष्पादित करता है। जैसे–

1. पंचायत समिति एवं स्थायी समितियों की बैठकों के सम्बन्ध में सूचना जारी करना।
2. बैठक में उपस्थित रहकर कार्यवाहियों को अभिलेखित करना।
3. बैठक में विचार-विमर्श के समय अपना सुझाव प्रस्तुत करना।
4. प्रधान के निर्देश पर पंचायत समिति कोष से धन निकलवाना।
5. ग्राम सभा, वार्ड सभा की बैठक निर्धारित कर आयोजित करवाना।
6. पंचायत समिति के कार्यों का अनुमोदन करना।
7. पंचायत समिति के समस्त दस्तावेजों को प्रमाणित करना।
8. लेखा परीक्षण प्रतिवेदन की अनियमितताओं को दूर करवाना।
9. पंचायत समिति के धन सम्पत्ति के दुरुपयोग की सूचना उच्चाधिकारियों को देना।
10. विकास कार्यों हेतु स्वैच्छिक संगठनों को प्रेरित कर सहयोग प्राप्त करना।
11. राज्य सरकार एवं उच्चाधिकारियों द्वारा चाही गई सूचना उपलब्ध कराना।
12. पंचायत समिति के अधिकारियों, कर्मचारियों पर नियंत्रण करना।
13. पंचायत समिति की वित्तीय स्थिति का निरीक्षण करना।
14. पंचायत समिति क्षेत्र की ग्राम पंचायतों का अवलोकन।
15. अन्य कार्य जो राज्य एवं केन्द्र सरकार द्वारा दिए जाते हैं।

2. आपातकालीन शक्तियाँ– आपातकालीन परिस्थितियों जैसे–बाढ़, आग, महामारी इत्यादि के समय पंचायत समिति कोष से धन व्यय कर सकता है। इसे जिला परिषद से स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती है।

पंचायत समिति के कार्य– राजस्थान में पंचायत समिति निम्न कार्यों का निष्पादन करती है–

1. सामान्य प्रतिवेदन– जिला परिषद द्वारा निर्मित योजनाओं का क्रियान्वयन करना, प्रतिवेदन तैयार कर जिला परिषद को प्रस्तुत करना तथा ग्राम पंचायतों के कार्यों का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण करना।

2. कृषि सम्बन्धी कार्य– कृषि विकास हेतु उन्नत बीज, खाद, कृषि सामग्री की व्यवस्था करना एवं कृषकों के प्रशिक्षण एवं भ्रमण आयोजित करना।

3. भूमि सुधार सम्बन्धी कार्य– कृषिभ ूमिक ीि मट्टीक ा परीक्षण एवं भूमि सुधार योजनाओं की क्रियान्विति करना।

4. सिंचाई– ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई हेतु तालाब, कुएं, बावड़ी इत्यादि का निर्माण करना।

5. औद्योगिक विकास– ग्रामीण क्षेत्रों में पशुपालन, मुर्गीपालन, मत्स्य पालन, डेयरी, खादी जैसे लघु उद्योगों के विकास एवं प्रोत्साहन का कार्य करना।

6. सामान्य नागरिक सुविधाओं को उपलब्ध करवाना–सामान्य नागरिक सुविधाएँ जैसे आवास, पीने का पानी, सड़क, गली, नाली, जलमार्ग, संचार साधनों का निर्माण एवं रखरखाव करना।

7. सामाजिक विकास– समाज के पिछड़े एवं कमजोर वर्गों

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग, महिलाओं, बच्चों, अनाथों, दिव्यांगों के विकास हेतु विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन करना।

8. शिक्षा सम्बन्धी कार्य– राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रारम्भिक स्तर तक की शिक्षा के विकास एवं प्रबन्धन का दायित्व भी पंचायत समितियों का ही है।

इसके अतिरिक्त पंचायत समितियाँ, सांस्कृतिक विकास, परिवार कल्याण एवं सांख्यिकी संकलन आदि कार्यों का भी निष्पादन करती है।

जिला परिषद

राजस्थानप ॅचायतीराजअ धिनियम,1 994म ेंि जलाप रिषदके सम्बन्ध में प्रावधान किये गये हैं। संविधान संशोधन के माध्यम से जिला परिषद को केवल 'एक नीति निर्माण की इकाई' ही माना है। नीतियों के क्रियान्वयन का दायित्व जिला परिषद को नहीं दिया गया है। 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् सभी राज्यों के जिला परिषदों की संगठनात्मक व्यवस्था में एकरूपता लाई गई है जो निम्नानुसार है–

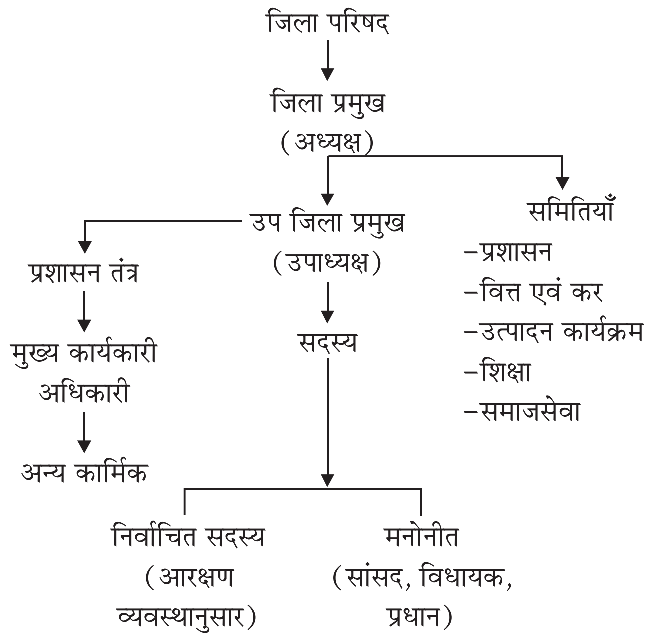

अर्थात् हम कह सकते हैं कि जिला परिषद में सर्वोच्च स्तर पर एक परिषद होती है जिसमें निम्नलिखित सदस्य होते हैं–

– निर्वाचन क्षेत्रों से निर्वाचित सदस्य

– जिला परिषद क्षेत्र के अन्तर्गत प्रतिनिधित्व करने वाले लोकसभा एवं राज्य विधानसभा के सभी सदस्य

– जिला परिषद क्षेत्र के अन्तर्गत निर्वाचकों के रूप में पंजीकृत राज्यसभा के सभी सदस्य

– जिला परिषद क्षेत्र के सभी पंचायत समितियों के प्रधान।

राज्य सरकार जिला परिषद के लिए निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या निर्धारित करती है। सामान्यतया 4 लाख की जनसंख्या वाले परिषद क्षेत्र में 17 निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था की जाती है। 4 लाख से अधिक जनसंख्या वाले जिले में 4 लाख से अधिक के प्रत्येक एक लाख से अधिक की जनसंख्या पर 2 सदस्यों की वृद्धि की जाती है।

निर्वाचन के लिए आरक्षण की व्यवस्था 73 संविधान संशोधन के अनुरूप ही है, जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्ग एवं महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किए गए हैं। महिलाओं के लिए कुल निर्वाचित होने वाले स्थानों के एक–तिहाई स्थान और अन्य वर्गों के लिए उनकी जनसंख्या के आधार पर स्थान चक्रानुक्रम के आधार पर आरक्षितर् कएग एह ॅ ïर ïजस्थानप ॅचायतीराजअ ïमच ुनाव2 010म ॅ पंचायतीराज की सभी संस्थाओं में 50 प्रतिशत पद सभी वर्गों के सभी स्तर पर महिलाओं हेतु आरक्षित किए गए।

परिषद का कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित किया गया है। अधिनियम में प्रावधान किए गए योग्यताधारी सदस्य सीधे जनता के द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। ये निर्वाचित सदस्य परिषद् का निर्माण करते हैं। परिषद का एक अध्यक्ष एवं एक उपाध्यक्ष परिषद के निर्वाचित सदस्यों में से निर्वाचित सदस्यों द्वारा ही चुना जाता है। अध्यक्ष को जिला प्रमुख एवं उपाध्यक्ष को उप जिला प्रमुख कहा जाता है। जिला प्रमुख जिला परिषद का मुखिया होता है, जो जिला परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करता है तथा आन्तरिक प्रशासन पर भी नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण रखता है। जिला प्रमुख की अनुपस्थिति में उप जिला प्रमुख उनकी शक्तियों का प्रयोग करता है।

जिला प्रमुख की शक्तियाँ– नवीन पंचायतीराज अधिनियम 1994 में जिला प्रमुख की शक्तियों के सम्बन्ध में निम्न प्रावधान किए गए हैं–

1. जिला परिषद की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण रखना
2. जिला परिषद की बैठक आमंत्रित करना, अध्यक्षता करना एवं संचालन करना
3. प्राकृतिक आपदाओं के समय वित्तीय एवं प्रशासनिक स्वीकृति देना
4. जिला परिषद की वित्तीय प्रशासन को नियंत्रित एवं पर्यवेक्षित करना
5. विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करने हेतु योजनाओं का निर्माण करना
6. जिले में ग्रामीण विकास की योजनाओं को संचालित करना
7. जिले की सभी पंचायतीराज संस्थाओं पर नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण करना
8. अन्य कार्य जो समय–समय पर राज्य सरकार द्वारा दिए जाएँ।

अधिनियम में यह प्रावधान है कि जिला परिषद की बैठकें 3 माह में एक बार आयोजित की जाएँगी, जो जिला परिषद मुख्यालय पर होती हैं। निर्वाचन के पश्चात् प्रथम बैठक मुख्य कार्यकारी अधिकारी (CEO) द्वारा आयोजित की जाती हैं। शेष सभी बैठकें जिला प्रमुख आमंत्रित करते

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हैं तथा उनकी अध्यक्षता एवं संचालन भी करते हैं। परिषद के एक–तिहाई सदस्यों के लिखित माँग के आधार पर जिला प्रमुख उचित समझे तो विशिष्ट बैठक को भी आमंत्रित कर सकता है। अधिनियम में जिला परिषद की बैठक के लिए कुल सदस्यों के एक–तिहाई सदस्य की उपस्थिति अनिवार्य है। अन्यथा बैठक को स्थगित कर आगामी तिथि में पुन: आयोजित की जाती है। इस बैठक में एक–तिहाई सदस्यों की उपस्थिति होने पर विचार नहीं किया जाता है। बैठक में जिला प्रमुख की अनुपस्थिति पर उप जिला प्रमुख द्वारा अध्यक्षता एवं संचालन किया जाता है। यदि दोनों ही अनुपस्थित हों तो बैठक में उपस्थित सदस्य अपने सदस्यों में से ही अध्यक्षता के लिए एक सदस्य का चुनाव करते हैं, जिसे हिन्दी पढ़ने–लिखने का ज्ञान होना आवश्यक है। बैठक में सभी निर्णय बहुमत के आधार पर लिए जाते हैं। अध्यक्ष को निर्णायक मत देने का अधिकार होता है। बैठक की सम्पूर्ण कार्यवाहियों का अभिलेखन एवं लिये गये निर्णयों को सम्बन्धित व्यक्ति अथवा संस्था तक पहुँचाने का दायित्व मुख्य कार्यकारी अधिकारी का होता है।

जिला परिषद के कार्य– 73वें संविधान संशोधन अधिनियम एवं राजस्थान नवीन पंचायतीराज अधिनियम में जिला परिषद को **नीति निर्माण करने वाली इकाई** माना है। अर्थात् जिला परिषद को क्रियान्वयन सम्बन्धी दायित्व नहीं दिये गये हैं। अत: जिला परिषद के कार्यों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझ सकते हैं–

1. सामान्य कार्य– जिले के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए योजनाओं का निर्माण करना एवं उनका क्रियान्वयन सुनिश्चित करना।

2. सिंचाई कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई के पानी की व्यवस्था हेतु नीतियाँ एवं कार्यक्रम जिला परिषद द्वारा बनाये जाते हैं। नये एवं पुराने जलस्रोतों के विकास की योजनाएँ बनाना एवं उनके रखरखाव की नीति निर्धारण का कार्य करना।

3. कृषि कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि विकास हेतु जैसे–कृषि उत्पादन, कृषि उपकरण, कृषि पद्धति, कृषकों का प्रशिक्षण, भूमि सुधार, भूमि संरक्षण इत्यादि हेतु नीतियों का निर्माण एवं उसके क्रियान्वयन पर पर्यवेक्षण रखना।

4. बागवानी सम्बन्धी कार्य– जिला परिषद द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में पार्क व उद्यान लगाने हेतु समय–समय पर नीतियों का निर्माण किया जाता है। इस हेतु वन विभाग एवं अन्य संस्थाओं के साथ समन्वयन स्थापित करना।

5. सांख्यिकी सम्बन्धी कार्य– जिले में पंचायतीराज संस्थाओं से सूचनाएँ एवं आँकड़े एकत्रित कर उन्हें प्रकाशित करवाना।

6. ग्रामीण विद्युतीकरण– ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण हेतु राज्य सरकार के ऊर्जा विभाग द्वारा ग्रामीण विद्युतीकरण नामक योजना का क्रियान्वयन कर मूल्यांकन करना।

7. भूमि सम्बन्धी कार्य– कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में मृदा परीक्षण, मृदा संरक्षण एवं बंजर भूमि सुधार के कार्यक्रमों का संचालन करवाना।

8. प्रशिक्षण कार्यक्रमों की व्यवस्था करना– ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास हेतु नीति निर्धारण करना एवं उसी के अनुरूप प्रशिक्षण की योजना तैयार कर प्रशिक्षण दिलवाना।

9. निर्माण सम्बन्धी कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों, भवनों के निर्माण एवं रखरखाव सम्बन्धी योजनाएँ तैयार करना, स्वीकृति देना एवं पर्यवेक्षण का कार्य करना।

10. स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराने हेतु योजनाओं का निर्माण करना तथा केन्द्र व राज्य सरकारों के स्वास्थ्य कार्यक्रमों को जिले में क्रियान्वित करवाना।

11. आवास सम्बन्धी कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में आवास सुविधाओं के विकास हेतु नीति निर्माण एवं क्रियान्वयन करवाना।

12. शिक्षा सम्बन्धी कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में प्रारम्भिक शिक्षा के विकास के लिए कार्यरत शिक्षण संस्थाओं के पर्यवेक्षण का कार्य करना।

13. समाज कल्याण सम्बन्धी कार्य– समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन का मूल्यांकन करना।

14. समाज सुधार सम्बन्धी कार्य– ग्रामीण क्षेत्रों में समाज सुधार के लिए की जाने वाली क्रियाओं पर नियंत्रण रखना तथा उनके क्रियान्वयन के लिए आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध कराना।

15. दिशा निर्देश– आपातकालीन परिस्थितियों में सहायता कार्य के लिए जिले की पंचायतीराज संस्थाओं हेतु आवश्यक दिशा निर्देश जारी करना।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जिला परिषद पंचायतीराज की सर्वोच्च इकाई है जो कि ग्रामीण प्रशासन की विभिन्न नीतियों व योजनाओं के निर्माण व उनके क्रियान्वयन पर पर्यवेक्षण रखती है।

ग्रामीण विकास एवं सामाजिक परिवर्तन में पंचायतीराज की भूमिका–1993 से लेकर आज तक लगभग 22 वर्षों के कार्यकाल में पंचायतीराज ने निश्चित तौर पर कई महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों को हासिल किया है और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के नये आयाम को प्रस्तुत कर भारत के ग्रामीण, सामाजिक, आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका दर्ज की है। जैसे–

1. पंचायतीराज ने सत्ता व शक्ति का विकेन्द्रीकरण ग्रामीण स्तर तक विस्तृत करके लोकतंत्र को मजबूत किया है।
2. पंचायतीराज के माध्यम से परम्परागत ग्रामीण शक्ति संरचना में परिवर्तन आया है और ऊँची जातियों का एकाधिकार कमजोर हुआ है। जाति, धर्म एवं परम्परागत भावनाओं में समानता की दिशा में परिवर्तनस म्भवह ुआह ै ाि नचलेस तरक ीज ातियाँस ंख्यात्मक शक्ति के आधार पर प्रभुजाति को चुनौती दे रही हैं और अपनी परिस्थिति सुधार की दिशा में क्रियाशील हैं।
3. पंचायतीराज ने महिलाओं के लिए एक–तिहाई (33 प्रतिशत)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आरक्षण प्रदान करके महिला सशक्तिकरण को प्रोत्साहित किया है। परिणामस्वरूप कर्नाटक में 46प्रतिशत तथा पश्चिम बंगाल में 35 प्रतिशत महिलाएँ इन पदों पर आसीन हैं।

4. पंचायतीराज के कारण आज गाँवों में नये प्रतिमान का उदय हुआ है और इस क्षेत्र में अधिक आयु, धर्म और जाति की उच्चता का महत्त्व कम हो रहा है।
5. पंचायतीराज व्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि ग्रामीण आर्थिक विकास एवं स्रोतों का समुचित उपयोग है। जहाँ श्रमदान औरस हकारिताके म ाध्यमस`अ ार्थिकि वकासक ीस ामूहिक भावना को भी प्रोत्साहन मिल रहा है।
6. ग्रामीण भारत में राजनैतिक जागरूकता को उत्पन्न करके लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को सफल बनाने और लोकतंत्र को मजबूत करने में भी पंचायतीराज संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान है।
7. पंचायतीराज के माध्यम से विकास कार्यों में अधिकतम जन हिस्सेदारी सुनिश्चित की जा रही है।

बहुत कुछ उपलब्धियों के बाद भी पंचायतीराज संस्थाएँ ग्रामीण जनता में नई आशा एवं विश्वास पैदा करने में असफल रही हैं। वस्तुत: जब तक ग्रामीण जनता में चेतना नहीं आती, ये संस्थाएँ सफल नहीं हो सकतीं। इसका तात्पर्य ये बिल्कुल नहीं है कि पंचायतीराज संस्थाएँ असफल हो गई हैं। कुछ राज्यों तथा कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में इन संस्थाओं ने सराहनीय कार्य किया है। यह कार्य मुख्यत: ग्रामीण जनसुविधाओं के सम्बन्ध में हुआ है। परन्तु कुछ समस्याएँ भी हैं, जिनका निराकरण करना आवश्यक है।

1. सत्ता का विकेन्द्रीकरण– राज्य सरकारें पंचायतीराज संस्थाओं को अपने आदेशों की पालना करने का एजेन्ट मात्र न समझें इसके लिए नौकरशाही की मनोवृत्ति में परिवर्तन की आवश्यकता है, तभी पंचायतीराज संस्थाएँ स्वायत्त शासन की शक्तिशाली इकाइयाँ बन सकेंगी।

2. अशिक्षा व निर्धनता की समस्या– ग्रामीणों में अशिक्षा एवं निर्धनता के कारण ग्रामीण नेतृत्व का विकास नहीं हो रहा है। वे संकीर्ण दायरे से ऊपर नहीं उठ रहे हैं।

3. दलगत राजनीति– पंचायतीराज की सफलता में सबसे बड़ी बाधा दलगत राजनीति है। पंचायतें राजनीति का अखाड़ा बन रही हैं। छोटी–छोटी बातों को लेकर झगड़े हुआ करते हैं, जिससे समय नष्ट होता है। अत: राजनीतिक दलों को पंचायत चुनाव में अपना हस्तक्षेप बन्द करना चाहिए।

4. धन की समस्या–पंचायतीराज संस्थाओं को स्वतंत्र आर्थिक स्रोत नहीं दिए गए हैं। परिणामत: संस्थाओं को शासकीय अनुदानों पर ही जीवित रहना पड़ता है।

5. राजनीतिक जागरूकता में कमी– ग्रामीण नागरिकों में राजनीतिक जागरूकता की कमी है। उनका अधिकांश समय जीवन–यापन एवं परिवार के पालन–पोषण पर ही खर्च हो जाता है।

6. विकास कार्यों की उपेक्षा–शासकीय अधिकारियों एवं जनप्रतिनिधियों के सहयोग के अभाव में विकास कार्यों की लगातार उपेक्षा हो रही है।

भारत के गाँव आर्थिक समृद्धि का प्रतीक हैं और गाँवों का सर्वांगीण विकास पंचायतीराज संस्थाओं की सफलता के द्वारा ही सम्भव है। पंचायतीराज संस्थाओं की सफलता के लिए निम्न सुधारात्मक कार्य किया जाना चाहिए–

1. पंचायतीराज संस्थाओं में व्याप्त गुटबंदी को समाप्त करना।
2. पंचायत चुनाव में मतदान अनिवार्य करना।
3. पंचायत में विकास कार्य हेतु वित्तीय व्यवस्था करना।
4. शासकीय अधिकारियों एवं जनप्रतिनिधियों को मार्गदर्शन के रूप में सहयोग करना।
5. निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों को प्रशिक्षण देना।

पंचायतीराज संस्थाओं द्वारा ग्रामीण समाज में परिवर्तन–पंचायतीराज संस्थाओं के अब भारतीय संविधान का हिस्सा बन जाने से अब कोई भी पंचायतों को दिये गये अधिकारों, दायित्वों व वित्तीय साधनों को छीन नहीं सकता। 73वें संविधान संशोधन के पश्चात् पंचायतीराज संस्थाओं में एकरूपता लाने का प्रयास किया गया, जिसका ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन में निम्न योगदान रहा है–

1. ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में सत्ता का विकेन्द्रीकरण हुआ है।
2. सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा का बड़ा योगदान है। पंचायतीराज व्यवस्था लागू होने के पश्चात् दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों तक शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ है।
3. पंचायतीराज संस्थाओं में समाज के कमजोर वर्गों यथा–अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या के अनुपात में हिस्सेदारी बढ़ी है। अनिवार्य एवं चक्रिक आरक्षण से ग्रामीण समाज में परिवर्तन की स्थिति स्पष्ट दिखाई दे रही है।
4. पंचायतीराज संस्थाओं में एक–तिहाई (33 प्रतिशत) महिला आरक्षण लागू होने से महिलाओं की संख्या बढ़ी है। जो अनुभव के आधार पर अपनी समस्याओं का निराकरण करती है। समाज में महिलाओं की स्थिति में अभूतपूर्व परिवर्तन दिखाई दे रहा है।
5. पंचायतीराज निचले स्तर पर लोकतंत्र का कारगर उपकरण साबित हुआ है।
6. पंचायतीराज संस्थाओं द्वारा सार्वजनिक स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिये जाने के कारण बीमारियों में कमी आई है। ग्रामीण समाज में स्वच्छता और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ी है। जीवनरक्षक औषधियाँ एवं प्राथमिक उपचार गाँव में उपलब्ध हैं। महिलाएँ प्रसव के समय स्वास्थ्य केन्द्रों का उपयोग कर रही हैं। बच्चों के टीकाकरण पर भी विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। परिणामस्वरूप बाल एवं मातृ मृत्युदर में कमी आई है। स्वास्थ्य सुविधाओं के कारण औसत आयु में भी वृद्धि हुई है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

7. अस्पृश्यता, छूआछूत की भावना में कमी आई है।
8. ग्रामीण क्षेत्रों में सार्वजनिक प्रकाश व्यवस्था, स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराना, गली-नालियों का पक्का निर्माण, स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना, कृषि में विकास कार्यक्रम, आपदा प्रबन्धन, पशुधन संरक्षण इत्यादि क्षेत्रों में विकास होने के कारण सामाजिक वातावरण में अभूतपूर्व परिवर्तन आ रहा है।
9. भूजल संरक्षण, ग्रामीण विद्युतीकरण एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध कराये जाने के कारण ग्रामीण जीवन स्तर में सुधार हो रहा है।
10. ग्रामीण क्षेत्रों के नागरिक अपने अधिकारों की चर्चा एवं माँग करने लगे हैं क्योंकि पंचायतीराज ने सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया है।

अन्तम ेंह मक हस कतेह ैंि कग्ा्रमीणस माजम ेंप रिवर्तनके उपकरणके रू पम ेंप ंचायतीराजस ंस्थाओंक ा रगरए वंम हत्त्वपूर्ण योगदान है।

राजनैतिक दल

प्रत्येक लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था में राजनीतिक दल अपरिहार्य है। सामाजिक व्यवस्था में एक राजनीतिक दल विचारों, अभिमतों तथा पद्धतियों के वाहक के रूप में कार्य करते हैं। राजनीतिक दल, समाज व सरकार के मध्य तथा मतदाता और प्रतिनिधात्मक संस्थाओं के बीच कड़ी का काम करते हैं। वास्तव में एक सफल लोकतन्त्र एवं सामाजिक व्यवस्था को अपने पोषण के लिए एक स्वस्थ दलीय व्यवस्था की आवश्यकता होती है। राजनीतिक दल सामाजिक परिवर्तन के ऐसे उपकरण हैं, जिनके माध्यम से नागरिक उन प्रतिनधियों को चुनते हैं जो सरकार बनाते हैं और अपने नीतियों और निर्णयों को लागू कराने का प्रयास करते हैं, जिसका यथार्थ प्रभाव समाज पर पड़ता है।

राजनीतिक दल का अर्थ– किसी भी देश में हजारों लोग देश की समस्याओं पर सोचते हैं, चिंतन व मंथन करते हैं। जब उनके विचारों व दृष्टिकोणों को दलीय आवरण द्वारा क्रमबद्ध व्यवस्थित किया जाता है तो राजनीतिक दल बनते हैं। राजनीतिक दल राजनीतिक प्रक्रिया को जोड़ने, सरल करने तथा स्थिर बनाने का कार्य करते हैं।

''एक स्वतंत्र समाज में राजनीतिक दल नागरिकों के उस व्यवस्थित समुदाय को कहते हैं जो शासन तंत्र को नियंत्रित करना चाहता है और उनके लिए जन सहमति में भाग लेकर अपने कुछ सदस्यों को सरकारी पदों पर भेजने का प्रयास करता है।''

''राजनीतिक दल नागरिकों के उस संगठित समुदाय को कहते हैं जिनके सदस्य समान राजनीतिक विचार रखते हैं और जो एक राजनीतिक इकाई के रूप में कार्य करते हुए शासन को अपने हाथ में रखने की चेष्टा करते हैं।''

मानव जाति ने अपने आपको समूह व इससे बड़े रूपों में संगठित किया है। राजनीतिक दल ऐसे ही मानव संगठनों में से एक है। आधुनिक युग में आदर्श सरकार को किसी न किसी प्रतिनिधात्मक संस्था के माध्यम से चलाया जाता है। इसलिए सभी प्रतिनिधात्मक संस्थाओं और सरकारों के लिए राजनीतिक दलों का होना आवश्यक भी है। राजनीतिक दल लोगों की एक संगठित संस्था है, जिनके देश व समाज की राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में सर्वमान्य सिद्धांत व लक्ष्य होते हैं। राजनीतिक दलों का मुख्य उद्देश्य राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करना एवं उसे बनाये रखना होता है। सरकार चलाने वाले राजनीतिक दल को शासक दल कहते हैं। एक संयुक्त सरकार में कार्यों, विशिष्ट मुद्दों पर आलोचना व विश्लेषण करने वाले राजनीतिक दल को विपक्षी दल कहते हैं। एक राजनीतिक दल में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिए–

1. यह औपचारिक सदस्यता वाली लोगों की एक संगठित संस्था होनी चाहिए।
2. इसकी स्पष्ट नीतियाँ और कार्यक्रम होने चाहिए
3. इसके सदस्यों को इनके सिद्धान्तों, नीतियों एवं कार्यक्रमों से सहमत होना चाहिए।
4. इसका लक्ष्य लोकतान्त्रिक तरीके से सत्ता प्राप्त करना होना चाहिए।
5. इसका स्पष्ट व स्वीकार्य नेतृत्व होना चाहिए।
6. इसको विस्तृत मुद्दों व व्यापक सरकारी क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।
7. इसको किसी वर्ग, जाति, धर्म, सम्प्रदाय के हित की अपेक्षा राष्ट्र हित व राष्ट्र गौरव की अभिवृद्धि हेतु चेष्टा करनी चाहिए।

राजनीतिक दलों के गठन/उत्पत्ति के आधार निम्नलिखित हैं–

1. मनोवैज्ञानिक– समान विचार वाले व्यक्ति राजनीतिक कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के उद्देश्य से विभिन्न दलों में संगठित हो जाते हैं। इस तरह समाज में चार प्रकार की सोच वाले व्यक्ति पाये जाते हैं। **पहला** वे जो प्राचीन संस्थाओं एवं रीति रिवाजों में वापस लौटना चाहते हैं। उन्हें प्रतिक्रियावादी कहते हैं। **दूसरा** वे जो वर्तमान में किसी तरह का परिवर्तन करना नहीं चाहते हैं। उन्हें अनुदारवादी कहते हैं। **तीसरा** वे जो वर्तमान परिस्थितियों में सुधार करना चाहते हैं। उन्हें उदारवादी कहते हैं और **चौथा** वे व्यक्ति जो वर्तमान संस्थाओं का उन्मूलन करना चाहते हैं। उन्हें उग्रवादी कहते हैं। इस प्रकार जैसे-जैसे लोगों की सोच व स्वभाव होगा वैसे-वैसे प्रतिक्रियावादी, अनुदारवादी, उदारवादी तथा उग्रवादी राजनीतिक दल बन जायेंगे।

2. वातावरण का प्रभाव– बालक जिस प्रकार के सामाजिक वातावरण में रहता है, उसका व्यापक प्रभाव उसकी सोच व स्वभाव पर पड़ता है तथा आगे चलकर वह उसी राजनीतिक दल का अनुयायी बन जाता है।

3. धार्मिक आधार– समाज में कुछ लोगों का लक्ष्य अपने धर्म के अनुयायियों की रक्षा करना होता है। उसी के आधार पर वे राजनीतिक दल बना लेते हैं। भारत में 'मुस्लिम लीग, जमात-ए-इस्लामी, अकाली दल, हिन्दू महासभा' का निर्माण इसी आधार पर हुआ।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. आर्थिक कारण–एक राजनीतिक दल राष्ट्रीय महत्व तभी प्राप्त कर सकता है जब उसके कोई आर्थिक कार्यक्रम हों। बिना आर्थिक कार्यक्रम के कोई भी राजनीतिक दल अधिक दिनों तक नहीं टिक सकता। शिक्षित जनता एवं समाज पर आर्थिक नीतियों का व्यापक प्रभाव पड़ता है।

5. नेतृत्व– प्रायः राजनीतिक दल अपने उच्चतम नेता के व्यक्तित्व की छाया होते हैं। वह जिन आदर्शों को आगे बढ़ाना चाहता है, उसके अनुयायी बिना सोचे समझे उसी सोच में ढलते जाते हैं।

6. विचारधारा– एक राजनीतिक आन्दोलन को जीवित रखने के लिए विचारधारा का होना अत्यावश्यक है। विचारधारा की अनुपस्थिति में आन्दोलनअ न्धकारत थाअ निश्चितताम ें भ टकज ाताह ै ।स ामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विचारधारा में आम सहमति दल के सदस्यों को आपस में जोड़े रखती है तथा दल मजबूत बना रहता है।

7. क्षेत्रीयता– क्षेत्रीय समानता के आधार पर भी कई जगह पर राजनीतिक दलों का निर्माण हुआ है। जिन्होंने विशिष्ट क्षेत्र की समान समस्याओं को मुद्दा बनाकर जनमत समर्थन का प्रयास किया है। (झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, तेलंगाना राष्ट्र समिति आदि)

8. भाषायी आधार पर– विभिन्न राज्यों में कई क्षेत्रीय दलों के निर्माण में भाषायी आधार भी महत्व रहे हैं, जिसके आधार पर किसी भाषा विशेष के लोगों का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। (अकाली दल, डीएमके, एआईडीएमके, तृणमूल कांग्रेस)

उपर्युक्त तत्त्व निश्चित तौर पर भारत के राजनीतिक दलों के सामाजिक आधार के रूप में सक्रिय रहे हैं। परन्तु इसमें से जाति, धर्म, क्षेत्र की महत्ता वर्तमान राजनीति में अधिक बढ़ गई है और इन आधारों पर निर्मित बहुदलीयता भी बढ़ी है। यद्यपि वर्तमान भारत में राजनीतिक दलों के ये सामाजिक आधार जातिवाद, भाषावाद, क्षेत्रवाद, और सम्प्रदायवाद जैसी समस्याओं को भी उत्पन्न करने में सहायक रहे हैं और राष्ट्रीय विकास के मार्ग को भी अवरुद्ध किया है। तथापि इसका दूसरा पक्ष यह है कि ये आधार एक लम्बे समय से उपेक्षित रहे जातियों, क्षेत्रों तथा इनके संदर्भ में हुए असंतुलित विकास को दूर करने और अपने धार्मिक और क्षेत्रीय हितों को सुनिश्चित करके लोकतन्त्र को मजबूत करने में भी सहायक रहे हैं।

राजनीतिक दलों के कार्य– लोकतंत्रीय सामाजिक व्यवस्था में राजनीतिक दल अपरिहार्य हैं। राजनीतिक दल जो कार्य करते हैं, वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मेरियम के अनुसार इनके पांच प्रमुख कार्य हैं–(1) पदाधिकारियों का चुनाव करना, (2) नीति निर्धारण, (3) शासन का संचालन तथा उसकी रचनात्मक आलोचना, (4) राजनीतिक प्रचार व शिक्षण, (5) व्यक्ति व शासन के मध्य मधुर सम्बन्धों की स्थापना करना। उक्त के आधार पर राजनीतिक दलों के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

1. सार्वजनिक नीतियों का निर्माण– राजनीति दल जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए अपनी नीतियों व योजनाओं का जोरदार प्रचार करते हैं। वे राजनीति, आर्थिक व सामाजिक समस्याओं के विभिन्न पहलुओं से जनता को परिचित कराते हैं तथा भ्रान्तिपूर्ण वातावरण में समस्याओं का चयन करके वरीयता के आधार पर जनता की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करते है, जिसके आधार पर सार्वजनिक नीतियों का निर्धारण होता है।

2. शासन का संचालन– राजनीतिक दल चुनावों में बहुमत प्राप्त करके सरकार का निर्माण करते हैं तथा विभिन्न विधियों से अपने चुनावी घोषणा पत्र के वायदों को पूरा करने का प्रयास करते हैं।

3. शासन की आलोचना–निर्वाचन में बहुमत न प्राप्त करने वाले दल प्रतिपक्ष के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। शासन को सचेत रखते हैं। सरकार की रचनात्मक आलोचना कर वैकल्पिक नीतियाँ प्रस्तुत करते हैं। विपक्षी दल शासन की कमजोरियों को जनता के सामने रखकर उनके विरुद्ध लोकमत तैयार करते हैं।

4. चुनावों का संचालन–राजनीतिक दलों से ही चुनावों की सार्थकता प्रकट होती है। वे चुनाव के समय अपने घोषणा पत्र तैयार करते हैं। उनका प्रचार करते हैं। अपने प्रत्याशी खड़ा करते हैं तथा हर तरह से चुनाव जीतने का प्रयत्न करते हैं।

5. लोकमत का निर्माण– शासित व्यक्तियों की सहमति से सत्ता को प्राधिकार अर्जित करना है, शासन की नीतियों पर लोकमत प्राप्त करना है तो राजनीतिक दल अपरिहार्य है। इनकी अनुपस्थिति में जनसमुदाय एक दिशाहीन भीड़ के अतिरिक्त कुछ नहीं होगी। इसलिए लोकमत निर्माण में राजनीतिक दलों का बड़ा योगदान है।

6. शासन व जनता के मध्य, मध्यस्थ का कार्य–राजनीतिक दल जनता की आकांक्षाओं व समस्याओं को सरकार के सामने रखते हैं तथास रकारक ीि स्थतिस ेज नताक ोअ वगतक रातेह ैं ।इ सप ्रकार राजनीतिक दल जनता व सरकार के मध्य, मध्यस्थता का कार्य करते हैं।

7. सामाजिक एवं साँस्कृतिक कार्य– अधिकाँश राजनीतिक दल जनता के सामाजिक और साँस्कृतिक जीवन को उन्नत करने का भी कार्यक रतेह ैं ।स्व ाधीनताके प श्चात्ग ्रामीणस ामाजिकउ त्थानह ेतु शासन द्वारा अनेक कल्याणकारी योजनाओं की शुरुआत की गई।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ग्रामीण सामाजिक उत्थान में राजनीतिक दल सक्रिय भूमिका अदा करते हैं।

भारत में राजनीतिक दलों के सामाजिक आधार का भारतीय लोकतन्त्र पर प्रभाव–भारत में राजनीतिक दलों के इन सामाजिक आधारों ने भारतीय लोकतंत्र को कई रूपों में प्रभावित किया है, जैसे–

1. आर्थिक आधार पर गठित राजनीतिक दलों ने लोकतन्त्र को धनी वर्गों की कठपुतली नहीं बनने दिया और गरीबों के हितों को लामबन्द कर उनकी सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित किया और समतामूलक समाज के निर्माण में सकारात्मक योगदान दिया। परन्तु दूसरी तरफ इसने वर्गीय द्वेष, तनाव एवं संघर्ष को बढ़ाकर भारत की राष्ट्रीय एकता और लोकतन्त्र के समक्ष चुनौती को भी पेश किया है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. राजनीतिक दलों ने जाति आधारित राजनीति के माध्यम से भारत जैसे जाति-प्रधान देश में निम्न जातियों में राजनीतिक समाजीकरण एवं राजनीतिक जागरूकता पैदा करके उनको मतदान हेतु प्रेरित किया। उनकी सत्ता में सहभागिता को सुनिश्चित किया है, लोक निर्णयों में उनके हितों को शामिल कराया है और परम्परागत सामाजिक असमानता को कमजोर करके लोकतन्त्र को मजबूत किया है। परन्तु दूसरी ओर इसमें समाज को विभिन्न जातीय समूहों में विभक्त कर दिया है, जिसका परिणाम जातीय तनाव एवं जातीय संघर्ष के रूप में सामने आया है। इसने जातिवाद का प्रयोग करके योग्यता को हतोत्साहित किया है और सत्ताधारी समूहों के लोक निर्णयों को उनके जातीय समूहों के हितों के पक्ष में उन्मुख करके लोकतन्त्र को कमजोर किया है।
3. धर्म के आधार पर गठित राजनीतिक दलों ने सरकारी निर्णय प्रक्रिया को धार्मिक आधार पर संतुलन बनाये रखने हेतु विवश किया है, जिससे लोकतन्त्र मजबूत हुआ है, परन्तु दूसरी ओर इसने भारत के धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक चरित्र को कमजोर भी किया है।
4. क्षेत्रीय एवं भाषायी आधार पर गठित राजनीतिक दलों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रीय एवं भाषायी समूहों में सत्ता का विकेन्द्रीकरण करके, लोक नीतियों में उनके हितों को शामिल करके संतुलित विकासक ोस ंभवब नाकरभ ारतके ि वविधताम ेंए कताअ ौर लोकतन्त्र को मजबूत किया है। परन्तु दूसरी ओर इसने देश को क्षेत्रीय एवं भाषायी समूहों में विभाजित करके भाषावाद व क्षेत्रवाद जैसी समस्याओं को प्रोत्साहित भी किया है। सत्ताधारी दलों ने लोक नीतियों के निर्माण तथा विकास कार्यों के क्रियान्वयन के किसी क्षेत्रीय भाषायी हितों को विशेष प्राथमिकता प्रदान करने को प्रेरित करके लोकतन्त्र को कमजोर भी किया है।

अत: ये स्पष्ट है कि भारत में राजनैतिक दलों के सामाजिक आधारों ने भारतीय लोकतन्त्र को नकारात्मक तथा सकारात्मक दोनों रूपों में प्रभावित किया है। नकारात्मक प्रभावों का आधारभूत कारण राजनेताओं तथा राजनीतिक दलों द्वारा इन सामाजिक विशिष्टताओं का प्रयोग अपने संकुचित एवं स्वार्थपूर्ण हितों की पूर्ति रहा है। वर्तमान में भारतीय परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक दलों के विभिन्न सामाजिक आधारों के बीच दूरियां कम हुई हैं और इनमें सहमति बढ़ती जा रही है। जैसे नई आर्थिक नीति पर पिछड़ी जातियों के राजनीतिक व सामाजिक दावे पर, देश के शासन में प्रान्तीय दलों की भूमिका पर और विचारधारा की जगह कार्य सिद्धि पर विभिन्न राजनीत दल एक दूसरे के निकट आये हैं। ये नये बदलाव भी राजनीति दलों के सामाजिक आधारों पर लोकतन्त्र पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों को सीमित कर रहे हैं।

भारतीय राजनीतिक दलों की समकालीन चुनौतियाँ–राजनीतिक दल लोकतांत्रिक शासन प्रणाली का आधार होता है, जिसकी दक्ष क्रियाशीलता लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत बनाती है और जिसका आधार इसको कमजोर करती है। वर्तमान भारत में राजनीतिक दल कई चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। जैसे–

1. राजनीतिक दलों के भी कमजोर आंतरिक लोकतन्त्र ने दलों में किसी विशेष व्यक्ति को सर्वसत्ताधारी बना दिया है।
2. दलों में परिवारवाद एवं वंशवाद के प्रभाव ने कुशलता के महत्व की अनदेखी कर दी है।
3. राजनीतिक दलों में धन के बढ़ते महत्व ने आर्थिक रूप से कमजोर व्यक्तियों की भागीदारी सीमित कर दी है।
4. राजनीतिक दलों में अपराधीकरण के परिणामस्वरूप योग्य व ईमानदार लोगों की राजनीति के प्रति उदासीनता बढ़ी है।
5. राजनीतिक दलों के बीच विकल्पहीनता की स्थिति अर्थात् विभिन्न दलों की नीतियों एवं कार्यक्रमों में घटते अन्तर ने मतदाताओं को इन दलों के संदर्भ में भ्रमित किया है।

भारतीय राजनीतिक दलों को इन समकालीन चुनौतियों का सामना करने हेतु कई प्रयास किये गये जैसे दलबदल विधेयक द्वारा कानून बनाकर नेताओं द्वारा दल परिवर्तन पर रोक लगाई गई। नेताओं की सम्पत्ति का ब्यौरा प्रस्तुत करने की बाध्यता द्वारा भ्रष्टाचार पर रोक लगाने का प्रयास किया गया। चुनाव आयोग द्वारा सभी राजनीतिक दलों के लिए चुनाव आचार संहिता का पालन करना और आयकर रिटर्न भरना आवश्यक कर दिया गया है।

परन्तु इन प्रयासों के बावजूद आज लोकतांत्रिक व्यवस्था हेतु इन राजनैतिक दलों के बाध्यता से सम्बन्धित कानून अधिक प्रभावी नहीं हैं। आज भी राजनीतिक दलों में पूरी तरह से लोकतंत्र कायम नहीं हो रहा है। प्रत्येक राजनीतिक दल में कोई व्यक्ति या समूह सर्वसत्ताधारी बना हुआ है। वर्तमान राजनीतिक दलों पर परिवार एवं वंशवाद की छाया स्पष्ट दिखाई दे रही है। इन समस्याओं के समाधान हेतु निम्न सुझावों पर अमल किया जा सकता है/किया जाना चाहिए–

1. राजनीतिकद लोंम ेंअ ान्तरिकल ोकतंत्रक ीस् थापनाके ि लए कानून का निर्माण किया जाना चाहिए।
2. चुनाव में होने वाले व्यय की एक निश्चित सीमा बनाई जानी चाहिए तथा चुनाव का खर्च सरकार द्वारा वहन किया जाना चाहिए।
3. राजनीति में अपराधीकरण को रोकने हेतु कठोर कानून बनाया जाना चाहिए।
4. प्रत्येकर ाजनीतिकद लके द्व ाराम हिलाओंक ोए कन िश्चित अनुपात में टिकट देना अनिवार्य कर दिया जाये। इस दिशा में कार्य न करने वाले दल की मान्यता रद्द करने की कार्यवाही की जानी चाहिए।
5. राजनीतिक दलों पर जनता के अंकुश को मजबूत करने का प्रयास किया जाना चाहिए और चुनाव के साथ वापस बुलाने के अधिकार को भी मान्यता देनी चाहिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

6. सुधार की इच्छा रखने वाले लोगों को स्वयं राजनीतिक दल में शामिल होकर सक्रिय प्रयास करने चाहिए।

इस प्रकार सकारात्मक एवं कुछ नकारात्मक प्रभावों के बीच राजनीतिक दलों की उपस्थिति अनिवार्य है। भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन में इनका बड़ा योगदान है, परन्तु विभिन्न विचारधाराओं एवं निजी स्वार्थों के आधार पर गठित राजनीतिक दलों की अपेक्षा देश में सुस्पष्ट विचारधाराओं पर आधारित दो या तीन अखिल भारतीय स्तर के दलों की आवश्यकता है, जिसके सदस्य साफ-सुथरी छवि के लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास रखने वाले एवं राष्ट्र विकास और राष्ट्र गौरव को अन्तर्राष्ट्रीय पहचान दिलाने वाले हों।

दबाव समूह (Pressure Groups)

सामाजिक परिवर्तन में दबाव समूहों का विशिष्ट महत्त्व है। एक समय ऐसा भी था जब दबाव तथा हित समूहों को अनैतिक माना जाता था। 'लॉबी' शब्द को हेय दृष्टि से देखा जाता था और इसे धोखा, भ्रष्टाचार, बुराई आदि का प्रतीक माना जाता था। किन्तु वर्तमान समय में दबाव तथा हित समूहों को लोकतंत्र का पक्ष पोषक एवं सहयोगी माना जाने लगा है। विभिन्न देशों की राजनीतिक व्यवस्था में इन समूहों का महत्त्व और योगदान इतना अधिक बढ़ गया है कि इन्हें अब राजनीतिक क्रियाशीलता एवं सार्वजनिक नीतियों के प्रभावशाली क्रियान्वयन के लिए स्वास्थ्यजनक तत्व भी स्वीकार किया गया है। दबाव समूह सदा ही सभी प्रकार के समाज एवंश ाासनम ें विद्यमानर हेह ैंत थाए कस ामाजिकस ंस्थाक े रू पम ें सामाजिक बदलाव, सामाजिक परिवर्तन में सहयोग करते हैं। दबाव समूह ऐसे स्वयंसेवी समूह होते हैं जो जनता के विशेष हितों की समाज में रक्षा करते हैं। इनके सार्वजनिक एवं सामाजिक हित होते हैं। ये समूह सरकार की नीति-निर्धारक प्रक्रिया को बाहरी दबाव डालकर प्रभावित करते हैं।

दबाव समूहः अर्थ एवं परिभाषा– दबाव समूह को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है। हित समूह गैर सरकारी संगठन, लाबीज, अनौपचारिक संगठन, गुट इत्यादि शब्दों का प्रयोग दबाव समूह के लिए किया जाता रहा है। प्रत्येक देश व समाज में सैकड़ों/अनेकानेक हित समूह होते हैं, किन्तु जब वे सत्ता को प्रभावित करने के इरादे से राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय हो जाते हैं तो दबाव समूह बन जाते हैं।

प्रो. मदन गोपाल गुप्ता के अनुसार, "दबाव समूह वास्तव में एक ऐसा माध्यम है जिनके द्वारा सामान्य हित वाले व्यक्ति सार्वजनिक मामलों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। इस अर्थ में ऐसा कोई भी सामाजिक समूह जो प्रशासनिक व विधायी दोनों ही प्रकार के निर्णयकर्ताओं को, सरकार पर नियंत्रण प्राप्त करने हेतु कोई प्रयत्न किये बिना ही प्रभावित करना चाहता है, तो वह दबाव समूह कहलायेगा। वस्तुतः दबाव समूह एक ऐसा माध्यम है जिनके द्वारा सामान्य हित वाले व्यक्ति सार्वजनिक मामलों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। इस अर्थ में ऐसा कोई भी सामाजिक समूह जो प्रशासनिक व संसदीय दोनों प्रकार के पदाधिकारियों को, सरकार पर नियंत्रण प्राप्त करने हेतु कोई प्रयत्न किये बिना ही प्रभावित करना चाहते हैं तो दबाव समूह की श्रेणी में आयेंगे। दबाव व हित समूह पूरी तरह से संगठित समूह हैं, जिनके सार्वजनिक व सामाजिक होते हैं तथा ये समूह सरकार की नीति-निर्धारक प्रक्रिया को बाहरी दबाव डालकर प्रभावित करते हैं। दबाव समूहों की सदस्यता स्वैच्छिक होती है। इनका कार्य बहुत ही सीमित व संकीर्ण होता है। इनका चरित्र बहुत ही अनौपचारिक, संकीर्ण और गैरमान्यता प्राप्त होता है। ये दबाव समूह राजनीतिक दलों की तरह चुनाव में भाग नहीं लेते हैं परन्तु देश की राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ये अनेक तकनीकों के माध्यम से सरकार पर दबाव डालते हैं। इसी कारण इन्हें दबाव समूह कहा जाता है। ये जनमत को लामबंद करने में सहायक होते हैं।

दबाव समूहों का महत्त्व

1. **जनतांत्रिक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति के लिए दबाव समूह–** दबाव समूह को लोकतंत्र की अभिव्यक्ति का साधन माना जाता है। लोकतंत्र की सफलता के लिए लोकमत तैयार करना आवश्यक है ताकि विशिष्ट नीतियों का समर्थन अथवा विरोध किया जा सके।
2. **शासन के लिए सूचनाएँ एकत्रित करने वाले संगठन के रूप में–** दबाव समूह आँकड़े इकट्ठे करते हैं, शोध करते हैं तथा निष्कर्ष के आधार पर सरकार को कठिनाइयों से परिचित कराते हैं। इस प्रकार शासन की सूचनाओं के गैर-सरकारी स्रोत के रूप में दबाव समूह महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।
3. **शासन को प्रभावित करने वाले संगठन के रूप में–** दबाव समूह सामाजिक एवं सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिए सरकारी मशीनरी पर उपयोगी एवं सफल प्रभाव डालते हैं।
4. **सरकार की निरंकुशता को सीमित करना–** प्रत्येक शासन व्यवस्था में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बढ़ जाती है तो समूची शक्तियाँ सरकार के हाथों में केन्द्रित हो जाती है। अतः दबाव समूह अपने साधनों द्वारा सरकारी निरंकुशता को परिसीमित करते हैं।
5. **समाज व शासन में संतुलन स्थापित करना–** दबाव समूह के अस्तित्व का लाभ यह है कि विभिन्न सामाजिक हितों के बीच संतुलन-सा बना रहता है। कोई एकमात्र प्रभावशील सत्ता का उदय नहीं होता है।
6. **व्यक्ति व सरकार के मध्य संचार के साधन–** दबाव समूह लोकतांत्रिक राज्य व्यवस्था में व्यक्ति हितों का राष्ट्रीय हितों के साथ सामंजस्य स्थापित करते हैं। ये समूह नागरिक व सरकार के मध्य संचार साधन का कार्य करते हैं इसलिए इन्हें गैरसरकारी संचार सूत्र कहा जा सकता है।

दबाव समूहों का वर्गीकरण– जैसा कि हम पढ़ चुके हैं कि दबाव समूह संसार के सभी देशों में पाये जाते हैं। अपने हितों की पूर्ति के लिए सरकार द्वारा लिए गए निर्णयों को प्रभावित करते हैं। इनके उद्देश्यों

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

व लक्ष्यों के आधार पर इन्हें चार वर्गों में विभाजित किया गया है, जो निम्न हैं–

1. व्यावसायिक दबाव समूह– इस वर्ग में उन दबाव समूहों को शामिल किया जाता है, जिनका निर्माण किसी निश्चित पेशे या व्यवसाय के कर्मचारियों द्वारा अपने हितों की रक्षा के लिए किया जाता है। ऐसे बड़े व्यावसायिक घराने, जिनके पास संसाधनों की प्रचुरता है, तकनीकी व प्रबंधन के क्षेत्र में कर्मचारियों की उपलब्धता है तथा जिनके सरकार के संभ्रांत वर्गों, मीडिया, प्रशासन और विपक्षी दलों से अच्छी जान-पहचान व सम्बन्ध होते हैं, उनके नियंत्रण में सबसे संगठित व शक्तिशाली दबाव समूह होते हैं।

अनेक व्यावसायिक घरानों का प्रभाव भारतीय संसद तथा विधानमण्डल में है। उनके पास ऐसे प्रतिनिधि व जनसम्पर्क अधिकारी हैं, जो प्रशासन व उच्च नौकरशाही से सम्पर्क बनाये रखते हैं। उदाहरण के लिए फिक्की (FICCI)। फिक्की निजी क्षेत्र में सबसे बड़ा प्रभावशाली संगठन है। यह लगभग 40,000 प्रतिष्ठानों का प्रतिनिधित्व करता है। इसके साथ एक बड़ा व्यापारिक कारपोरेट जगत है। राजनीतिक दल निधि इत्यादि प्राप्त करने के लिए इन पर आश्रित हैं। इसके बदले में राजनीतिक दल इन्हें कारोबार शुल्क, पूँजी निवेश एवं अन्य करों में छूट देते हैं। आज के भूमण्डलीकरण एवं उदारवाद के दौर में फिक्की की भूमिका बढ़ गई है विशेषकर आर्थिक एवं वाणिज्यिक नीतियों सम्बन्धित मुद्दों पर सरकार इन समूह के विचार सुनती है तथा सलाह भी लेती है।

कुछ अन्य व्यावसायिक दबाव समूह हैं जैसे एसोसियेट चेम्बर ऑफ कॉमर्स, कनफेडरेशन ऑफ इण्डियन इण्डस्ट्री, टाटा ग्रुफ ऑफ इण्डस्ट्रीज, बिरला, डीसीएम, डालमिया, गोदरेज, हिंदुस्तान लीवर आदि। ये सभी सरकार की नीतियों व कानून को प्रभावित करते हैं।

पेशेवर दबाव समूह में किसान संगठन, अध्यापक व छात्र संगठन, ट्रेड यूनियन, अखिल भारतीय चिकित्सा परिषद्, अखिल भारतीय डाक एवं मजदूर इत्यादि। ऐसे संगठन सरकारी नीतियों को आंशिक रूप से प्रभावित करते हैं।

राजनीतिक दल अपने हितों की पूर्ति के लिए किसानों व काश्तकारों का भी इस्तेमाल करते हैं। ऐसे समय में वे एकजुट होकर अपने अधिकारों की माँग करते हैं। कृषि के क्षेत्र में अपने हितों की सुरक्षा चाहते हैं, जैसे पैदावार के उचित मूल्य, उर्वरकों पर सब्सिडी, ऋण एवं खाद की उपलब्धता आदि। हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पंजाब, कर्नाटक, राजस्थान आदि में प्रभावशाली किसान संगठन जैसे भारतीय किसान यूनियन; सरकार द्वारा कृषि के सम्बनध में लिये जाने वाले निर्णयों को प्रभावित करती है। इस प्रकार के संगठन राष्ट्रीय जागरूकता एवं वर्ग चेतना को सुनिश्चित आकार प्रदान करते हैं। इनके पास समाज के उपेक्षित व निर्धन वर्ग की बेहतरी के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति तथा एकात्मकता होती है किन्तु पूँजी की ताकत नहीं होती है।

शिक्षा एवं अन्य क्षेत्रों में भी छात्रों, अध्यापकों, गैर-व्यावसायिक कर्मचारी वर्गों का अपना संगठन है, जिनके द्वारा जनमत को लामबन्द करते हैं तथा अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए सरकार पर प्रभाव डालते हैं।

2. सामाजिक सांस्कृतिक दबाव समूह– ऐसे बहुत से सामाजिक सांस्कृतिक दबाव समूह हैं जो सामुदायिक सेवाओं से सरोकार रखते हैं तथा सम्पूर्ण समुदाय के हितों को बढ़ावा देने के लिए कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और दबाव समूह भी हैं जो भाषा एवं धर्म प्रचार के लिए कार्य करते हैं। जैसे आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, जनसेवा संघ, जमात-ए-इस्लामी, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधन कमेटी, पारसी अंजुमन, यंग मैन ईसाई, विश्व हिन्दू परिषद्, संस्कृत साहित्य अकादमी, पंजाबी अकादमी, मराठी संघ, भारतीय आदिम जाति संघ, शरणार्थी लोक समिति आदि।

3. संस्थागत दबाव समूह– ऐसे भी कई दबाव समूह हैं जो सरकारी ढाँचे के भीतर ही काम कर रहे हैं। ये दबाव समूह बिना राजनीतिक पद्धति में शामिल हुए, सरकार की नीतियों को अपने हितों के लिए प्रभावित करते हैं। जैसे-सिविल सर्विस एसोसिएशन, पुलिस वेलफेयर संगठन, गजेटेड ऑफिसर यूनियन, आर्मी ऑफिसर संगठन, डिफेन्स पर्सनल एसोसिएशन, रेडक्रॉस सोसायटी आदि। इन दबाव समूहों द्वारा स्थानान्तरण, अवकाश नियम, महँगाई भत्ता निर्धारण जैसे मामलों पर दबाव बनाया जाता है। वैसे तो इनके कार्य सार्वजनिक होते हैं परन्तु ये सरकारी तंत्र के भीतर रहकर ही सक्रिय बने रहते हैं।

4. तदर्थ दबाव समूह– कुछ दबाव समूह किसी विशेष मुद्दे को लेकर सरकार पर दबाव बनाने के उद्देश्य से बहुत थोड़े समय के लिए अस्तित्व में आते हैं तथा उद्देश्य पूर्ति के बाद समाप्त हो जाते हैं। प्राकृतिक आपदाओं की विषम स्थिति में ये दबाव समूह अपने हित में सरकार की नीतियों को प्रभावित करने के लिए दबाव डालते हैं। जैसे-उड़ीसा रिलीफ ऑर्गेनाइजेशन, भूदान अनुयोजना, कावेरी वाटर डिस्ट्रीब्यूशन एसोसिएशन, गुजरात रिलीफ ऑर्गेनाइजेशन इत्यादि।

दबाव समूह की भूमिका– दबाव समूहों की गतिविधियाँ 'लॉबी' नाम से प्रचलित हैं। 'लॉबी' एक अमरीकी शब्द है, लेकिन इसक प्रयोग आजकल यूरोप के देश जापान एवं अन्य देशों में भी किया जाता है। यह सदन के भीतर लॉबी की ओर इंगित करता है। जहाँ सदस्य व विधायक सदन से सम्बन्धित कार्यवाहियों पर चर्चा करते हैं।

भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक प्रणाली में दबाव समूह महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वहन करते हैं। ये जनता एवं राजनीतिक दलों के बीच एक कड़ी के रूप में तथा संचार के एक साधन के रूप में कार्य करते हैं। ये समाज के लोगों को बहुत से सामाजिक, आर्थिक मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाते हैं तथा उन्हें राजनीतिक रूप से शिक्षित भी करते हैं। ये बहुत ही प्रभावशाली नेतृत्व का निर्माण भी करते हैं तथा भविष्य के नेताओं को एक प्रशिक्षण मंच मुहैया कराते हैं। ये समाज के बहुत से परम्परागत मूल्यों के बीच के अन्तर को कम करने का प्रयास भी करते हैं। एकता एवं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अखण्डता की स्थापना ही दबाव समूह के कार्यों का परिणाम है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दबाव समूह सरकार व प्रशासन दोनों की नीतियों को प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार राज व्यवस्था में विदेशी लॉबी भी सक्रिय रहते हैं। विदेशों के सरकारी व गैर सरकारी हितों के संरक्षक प्रतिनिधि विदेशी लॉबी कहलाते हैं। राजनयिक प्रतिनिधि एवं जासूसी के कार्य करने वाले भी विदेशी लॉबी होते हैं। विश्व बैंक के तकनीकी विशेषज्ञ तथा आर्थिक मदद देने वाली विदेशी संस्थाओं के प्रतिनिधि भी लॉबिंग का कार्य करते हैं। वे अपनी विचारधारा का प्रचार करते हैं। राजनीतिक दलों को आर्थिक सहायता एवं प्रशासकों को विदेशी कम्पनियों में ऊँचे पद देकर सरकारी फैसले को प्रभावित करते हैं।

भारतीय दबाव समूह की विशेषताएँ– 'बिजनेस एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया' भारतीय राजनीति में व्यापारियों के दबाव समूहों की भूमिका का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत करता है। भारत में दबाव समूह की निम्न विशेषताएँ हैं–

1. भारतीय समाज में परम्परावादी दबाव समूह जैसे जाति, धर्म और प्रादेशिक गुट निर्णायक भूमिका अदा कर रहे हैं इसलिए अधिकाँश राजनीतिक दल जाति एवं समुदाय के आधार पर ही अपने अनुयायियों को संगठित कर राजनैतिक दल बनाते हैं और निर्णय को प्रभावित करते हैं।
2. अधिकांश समुदायात्मक दबाव समूहों पर राजनीतिक दलों का नियंत्रण है। उनका नेतृत्व राजनीतिक दलों के हाथ में है। परन्तु एक सत्य यह भी है कि व्यापार उद्योग हित समूह दलीय नियंत्रण से मुक्त है।
3. केन्द्र व राज्य में जब सत्ता शक्तिशाली होती है, तब दबाव समूह कमजोर होते हैं परन्तु जब सत्ता कमजोर होती है तो दबाव समूह शक्तिशाली होते हैं और अपने प्रभाव से निर्णयों को प्रभावित करते हैं।
4. विगत कुछ वर्षों में भारतीय संघ के राज्य भी संगठित होकर केन्द्र के नीतिगत फैसलों को प्रभावित करने लगे हैं।
5. विदेशी सहायता एवं विदेशी तकनीशियनों पर निर्भर होने के कारण विदेशी लॉबी भी हमारी नीतियों को प्रभावित करने हेतु दबाव डालते हैं।
6. समुदायात्मक एवं प्रदर्शनकारी दबाव समूह जनआन्दोलन, हड़ताल, हिंसा, अनशन और सत्याग्रह जैसे अवैधानिक साधनों का प्रयोग करते नहीं हिचकिचाते।
7. भारत में दबाव समूह मुख्यतया प्रशासकों को ही प्रभावित करने में लगे रहते हैं न कि नीति-निर्माताओं को। उन्हें यह विश्वास होता है कि महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक एवं आर्थिक कार्यक्रम यहाँ तक कि रचनात्मक संस्थाओं और कला एवं विज्ञान दोनों के ही विकास एवं उन्नयन का कार्य नौकरशाही के हाथों में है।
8. भारत में आम धारणा दबाव समूहों के कार्य पद्धति के प्रतिकूल है। यह अच्छा नहीं माना जाता है कि दबाव समूह नीति-निर्माताओं का मार्गदर्शन करें। ऐसा माना जाता है कि एक बार सरकार दबाव समूह के सामने झुक जाती है तो फिर कोई भी निर्णय सार्वजनिक हित में नहीं लिया जा सकता।

हमारी राज व्यवस्था की स्थिरता और समुच्चय शक्ति को बढ़ाने के लिए दबाव समूहों को उसमें समुचित स्थान दिया जाना चाहिए। हमारी सरकारी निर्णय प्रक्रिया में दबाव गुटों को स्थान देने के लिए निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते हैं–

1. नीति निर्माण के विभिन्न स्तरों पर शासन को प्रभावित हितों पर परामर्श करने की स्थायी एवं अधिकाधिक आदत डालनी चाहिए।
2. सरकार की परामर्शदात्री समितियों में दबाव समूह के सदस्यों को सहसदस्यता प्रदान की जानी चाहिए।
3. राज्यसभा एवं विधान परिषदों में दबाव समूह के सदस्यों का प्रतिनिधित्व निर्धारित किया जाना चाहिए। हालांकि इसके लिए संविधान में संशोधन की आवश्यकता पड़ेगी।
4. विभिन्न सरकारी विभागों के परामर्शदात्री समिति/निष्पादन समिति में भी दबाव समूह के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया जाना चाहिए।
5. स्थानीय प्रशासकों के निर्णय स्थानीय समुदाय को प्रभावित करते हैं। अतः स्थानीय प्रशासकों को भी किसी भी निर्णय के क्रियान्वयन से पूर्व दबाव समूह के सदस्यों को विश्वास में लेने की आदत डालनी चाहिए।

अन्त में दबाव दबाव समूहों से अपेक्षा की जाती है कि वे सामाजिक एवं सार्वजनिक हित की अवधारणा को स्वीकार करते हुए सार्वजनिक जीवन की अभिवृद्धि एवं उन्नति के लिए अपने आप को प्रस्तुत करेंगे। विदेशी 'लॉबी' का सामना करने के लिए राष्ट्रीय इच्छाशक्ति एवं राष्ट्रीय भावना विकसित करना अपरिहार्य है।

भारतीय राजनीति के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित दबाव समूहों की भूमिका के विश्लेषणोपरांत यह स्पष्ट है कि इन्होंने भारतीय राजनीति को प्रभावित कर अपने समूह की विशिष्ट हितों की पूर्ति में कमोबेश सफलता प्राप्त की है और अपने-अपने समूहों के हितों को सिद्ध करने के प्रयास में राजनीतिक निर्णयन प्रक्रिया में संतुलन स्थापित करके भारतीय लोकतंत्र को मजबूत किया है। परन्तु राजनीतिक दलों के साथ इनकी प्रत्यक्ष सम्बद्धता भारत में सफल लोकतंत्र के लिए इनकी वास्तविक भूमिका के मार्ग में बाधक रही है क्योंकि राजनीतिक दलों ने इनको कमजोर किया है और ये सरकार पर पूर्ण संगठित दबाव डाल पाने में अक्षम रहे हैं। इन तथ्यों को श्रमिक संगठनों, छात्र संगठनों एवं किसान संगठनों के हितों की हो रही उपेक्षा के रूप में स्पष्ट देखा जा सकता है।

अतः भारत में लोकतंत्र के कार्यचालन एवं ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन हेतु दबाव समूहों की भूमिका को और संगठित, स्वतंत्र तथा निष्पक्ष बनाये जाने की जरूरत है और यह कार्य राजनीतिक दलों एवं दबाव

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समूहों के मध्य प्रत्यक्ष सम्बद्धता को समाप्त करके ही सम्भव है। तभी भारतीय लोकतंत्र, ग्रामीण विकास एवं सामाजिक परिवर्तन के मार्ग में एक कदम और आगे बढ़ाया जा सकता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- पंचायतीराज ग्रामीण समाज में परिवर्तन का प्रमुख उपकरण है।
- संविधान के अनुच्छेद 40 में राज्यों को पंचायतों के गठन का निर्देश दिया गया है।
- संविधान की 7वीं अनुसूची (राज्य सूची) की प्रविष्ट-5 में ग्राम पंचायतों को शामिल करके उनके सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार राज्य को दिया गया है।
- संविधान के 73वें संशोधन में पंचायतीराज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता दी गई।
- सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की सफलता की जाँच हेतु 1957 में श्री बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल का गठन किया गया।
- पंचायतीराज व्यवस्था के तीन स्तर हैं। पहला ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत दूसरा खण्ड स्तर पर पंचायत समिति तथा तीसरा जिला स्तर पर जिला परिषद्।
- जिन राज्यों की जनसंख्या 20 लाख से अधिक नहीं है, वहाँ पर मध्यवर्ती स्तर अर्थात् खण्ड स्तर पर पंचायतों का गठन करना आवश्यक नहीं है।
- पंचायत के सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के सदस्यों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण प्रदान किया गया है, जो चक्रानुसार से आवंटित किया जायेगा।
- आरक्षित स्थानों में एक-तिहाई (33 प्रतिशत) स्थान महिलाओं हेतु आरक्षित रहेगा।
- पंचायतीराज संस्थाओं का कार्यकाल पाँच वर्ष की अवधि का होता है।
- 2 अक्टूबर, 1959 को नागौर जिले में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने पंचायतीराज का उद्घाटन किया।
- पंचायतीराज द्वारा सत्ता व शक्ति का विकेन्द्रीकरण हुआ है।
- **राजनीतिक दल–** एक स्वतन्त्र समाज में राजनीतिक दल नागरिकों के उस व्यवस्थित समुदाय को कहते हैं जो शासन तन्त्र को क्रियान्वित करना चाहता है और उसके लिए जनसहमति में भाग लेकर अपने कुछ सदस्यों को सरकारी पदों पर भेजने का प्रयास करता है।
- **राजनीतिकद लक ाग ठन–** राजनीतिक दलों का गठन निम्न आधार पर होता है–1. मनोवैज्ञानिक 2. वातावरण 3. धार्मिक 4. आर्थिक 5. नेतृत्व 6. विचारधारा 7. क्षेत्रीयता 8. भाषायी आधार।
- राजनीतिक दलों के कार्य–(1) सार्वजनिक नीतियों का निर्माण (2) शासन का संचालन (3) शासन की आलोचना (4) चुनावों का संचालन (5) लोकमत का निर्माण (6) शासन व जनता के बीच मध्यस्थता (7) सामाजिक व सांस्कृतिक कार्य।
- राजनीतिक दलों का सामाजिक आधार पर भारतीय लोकसत्ता पर प्रभाव–(1) आर्थिक आधार (2) जाति आधार (3) धर्म आधार (4) क्षेत्रीय एवं भाषायी आधार।
- भारतीय राजनीतिक दलों की चुनौतियाँ–(1) आन्तरिक लोकतंत्र (2) परिवारवाद एवं वंशवाद (3) धन का प्रभाव (4) अपराधीकरण (5) विकल्पहीनता।
- दबाव समूह एक ऐसा माध्यम है जो सामान्य हित वाले व्यक्ति सार्वजनिक मामलों को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं।
- दबाव समूह सार्वजनिक हित में सरकार के नीति निर्धारक प्रक्रिया को बाहरी दबाव डालकर प्रभावित करते हैं।
- दबाव समूहों की सदस्यता स्वैच्छिक होती है।
- दबाव समूह सभी प्रकार के समाज एवं शासन में विद्यमान हैं।
- दबाव समूह समाज व सत्ता के मध्य योजक कड़ी का कार्य करते हैं।
- दबाव समूह लॉबिंग द्वारा राजनीतिक दलों एवं प्रशासकों को भी प्रभावित करते हैं।
- दबाव समूह चार प्रकार के होते हैं–(1) व्यावसायिक दबाव समूह (2) सामाजिक एवं सांस्कृतिक दबाव समूह (3) संस्थागत दबाव समूह (4) तदर्थ दबाव समूह।
- केन्द्र व राज्यों में जब सत्ता शक्तिशाली होती है, तब दबाव समूह कमजोर होते हैं।
- दबाव समूह, जनआन्दोलन, हड़ताल, हिंसा, अनशन व सत्याग्रह जैसे अवैधानिक साधनों का भी प्रयोग करते हैं जबकि दबाव समूह को नीति-निर्माताओं का मार्गदर्शन करना चाहिए।
- राजनैतिक शुचिता एवं सामाजिक परिवर्तन हेतु दबाव समूह की सकारात्मक राष्ट्रीय विकास में सहायक होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. संविधान के कौनसे अनुच्छेद में राज्यों को पंचायतों के गठन का निर्देश दिया गया है–

   (अ) 42वाँ (ब) 41वाँ
   (स) 40वाँ (द) 39वाँ

2. श्री बलवन्त राय मेहता अध्ययन दल का गठन कब किया गया?

   (अ) 1953 (ब) 1954
   (स) 1956 (द) 1957

3. 73वाँ संविधान संशोधन कब किया गया?

   (अ) 1992 (ब) 1993
   (स) 1994 (द) 1995

4. पंचायती राज व्यवस्था कितने स्तर की है?

   (अ) एक (ब) दो
   (स) तीन (द) चार

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

5. भारत में राजनीतिक दलों के गठन का आधार निम्न में से क्या है–
   (अ) क्षेत्रीयता (ब) धर्म
   (स) भाषा (द) उपर्युक्त सभी
6. इनमें से क्षेत्रीयता पर आधारित दल कौनसा है?
   (अ) झारखण्ड मुक्ति मोर्चा
   (ब) भारतीय जनता पार्टी
   (स) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी
   (द) इनमें से कोई नहीं
7. इनमें से राष्ट्रीय दल कौनसा है?
   (अ) अकाली दल (ब) नेशनल कॉन्फ्रेंस
   (स) भारतीय जनता पार्टी (द) डी.एम.के.
8. कौनसे दबाव समूह अपनी माँगों को पूर्ण करने में सफल होते हैं?
   (अ) शक्तिशाली (ब) कमजोर
   (स) उदार (द) इनमें से कोई नहीं
9. दबाव समूह एक................होते हैं।
   (अ) राजनीतिक दल (ब) प्रशासक
   (स) स्वयंसेवी समूह (द) शासन व सत्ता

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. बलवन्त राय मेहता के अनुसार पंचायतीराज की चार विशेषताएँ लिखिए।
2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक..........है। (क्षेत्रीय/राष्ट्रीय)
3. दो राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के नाम लिखिए।
4. दो क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के नाम लिखिए।
5. दबाव समूह की परिभाषा एवं अर्थ स्पष्ट कीजिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. राजस्थान में पंचायतीराज की शुरुआत कब व कैसे हुई है?
2. 73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतीराज व्यवस्था में क्या प्रावधान किये गये?
3. ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में पंचायतीराज की क्यों आवश्यकता है?
4. राजनीतिक दलों की कोई 5 विशेषताएँ लिखिए।
5. राजनीतिक दलों के गठन के 5 आधार लिखिए।
6. राजनीतिक दल का अर्थ स्पष्ट करें।
7. दबाव समूहों का उदाहरण सहित वर्गीकरण कीजिए।
8. भारतीय दबाव समूह की विशेषताएँ लिखिए।
9. 'लॉबी' क्या है? ये सरकारी निर्णयों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. ग्रामीण विकास में पंचायतीराज की भूमिका की विस्तृत व्याख्या करें।
2. वर्तमान पंचायतीराज व्यवस्था की समस्याएँ एवं उसके समाधान के उपाय लिखो।
3. पंचायतीराज संस्थाओं द्वारा ग्रामीण समाज में हुए परिवर्तन पर लेख लिखो।
4. राजनीतिक दल की परिभाषा लिखते हुए उसके महत्त्वपूर्ण कार्यों की व्याख्या करें।
5. राजनीतिक दलों के सामाजिक आधार का लोकतंत्र पर प्रभाव की विवेचना कीजिए।
6. वर्तमान राजनीतिक दलों की चुनौतियाँ एवं समाधान हेतु अपने सुझाव व्यक्त कीजिए।
7. सार्वजनिक एवं सामाजिक हित में दबाव समूह के कार्यों की व्याख्या कीजिए।
8. वर्तमान राजनीति में दबाव समूह की आवश्यकता पर लेख लिखिए।

उत्तरमाला

1. (स) 2. (द) 3. (ब) 4. (स) 5. (द)
6. (अ) 7. (स) 8. (अ) 9. (स)।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 7

नगरीय समाज में परिवर्तन, विकास एवं चुनौतियाँ, आधारभूत संरचना, आव्रजन, नियोजन, आवास

समाजशास्त्रीय अध्ययनों का विषय क्षेत्र बेहद विस्तृत है और यही कारण है कि जब हम समाजशास्त्र की बात करते हैं तो हम यह विश्वास करके चलते हैं कि इस विषय की शाखा समाज के हर क्षेत्र तक फैली हुई है। विद्यार्थियों के लिए विश्वास करना सहज नहीं होता है कि समाजशास्त्र विषय के ही अभिन्न अंग हैं–नगरीय समाजशास्त्र, चिकित्सा समाजशास्त्र, अपराधशास्त्र आदि। नगरीय समाजशास्त्र के तत्वों को समझना हमारे लिए इसलिए आवश्यक हो जाता है क्योंकि बीते कुछ दशकों में नगरों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है जिससे समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप में आमूलचूल परिवर्तन हुआ है। नगरीय समाजशास्त्र एक गहन अध्ययन का विषय है परन्तु चूँकि हम प्रथम बार इसका अध्ययन करेंगे अतः इस विषय के महत्त्वपूर्ण पक्षों की संक्षिप्त जानकारी हमारे लिए आवश्यक है।

अध्याय में हम जिन महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा करेंगे वह निम्नाँकित है–

- नगरीय समाज में परिवर्तन के विभिन्न पक्ष,
- नगरों में विकास एवं चुनौतियाँ,
- नगरीय आधारभूत संरचना,
- नगरों की ओर आव्रजन,
- नगरीय नियोजन तथा
- नगरीय आवास

उपर्युक्त सभी विषय आपस में एक–दूसरे से इस तरह जुड़े हुए हैं कि एक की चर्चा करते हुए, दूसरे पक्ष को जोड़े बगैर, उसे समझना सहज नहीं होगा। जैसे नगरों में विकास एवं चुनौतियों में अन्तर्सम्बन्ध हैं अर्थात् नगरों में विकास के लिए जो आवश्यक आधार है उन आधारों का अभाव ही चुनौती है। नगरों में विकास का प्रथम लक्षण आधारभूत संरचना की उपलब्धता है। स्पष्ट है इन में तीनों ही बिन्दुओं को एक साथ पढ़ना आवश्यक है जिससे विषय की सारगर्भिता बनी रहे और विषय में भटकाव की स्थिति उत्पन्न न हो।

नगरीय समाज में परिवर्तन के विभिन्न पक्षों की चर्चा करने से पूर्व आवश्यक हो जाता है कि हम यह जानें कि 'नगरीय समाज' क्या है? उसके क्या लक्षण हैं? इसे समझने के बाद ही नगरीय समाज में परिवर्तन के विभिन्न पक्षों का जानना व समझना सहज होगा।

नगरीय समाज में परिवर्तन, विकास एवं चुनौतियाँ

समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य से नगरीय का अर्थ नगर में रहने वाले समुदाय से है। सम्पूर्ण मानव समाज को किन्हीं लाक्षणिक आधारों पर नगरीय तथा ग्रामीण समुदायों में विभाजित किया जा सकता है। 'नगरीय' शब्द नगरीय समुदाय विशेष को इंगित करता है जो कि नगरीय क्षेत्र में निवास करता है। नगरीय समाज के विभिन्न लक्षणों तथा विशेषताओं को कुछ समाजशास्त्रियों ने अध्ययन की विषयवस्तु बनाया है। इस दृष्टि से पार्क, बर्गस, सोरोकिन, जिम्मरमेन तथा विर्थ के कार्य उल्लेखनीय हैं। 'नगरीय' शब्द का प्रयोग समुदाय तथा समाज विशेष के लिए प्रयुक्त किया गया है। नगरीय क्षेत्र उस परिपूर्णता के रूप में समझा जाता है जो मुख्यतः उद्योग, नौकरी, व्यापार तथा अन्य व्यवसायों में संलग्न होता है। नगरीय समुदाय प्रमुखतः तकनीकी कार्यों, वस्तुओं के निर्माण से सम्बन्धित रहता है।

नगरीय मानव जीवन की विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था होती है। नगरीय पारिवारिक इकाई एक व्यावसायिक इकाई है। नगरीय सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति को व्यावसायिक क्रियाएँ करने की स्वतंत्रता होती है। मूलतः नगरीय जीवन मानवीय औद्योगिक अवस्थाओं का एक संकुल है। इस संकुल में अनेकानेक आर्थिक क्रियाएँ संचालित होती हैं जो एक–दूसरे के लिए पूरक होती हैं। इन क्रियाओं में व्यक्तियों के मध्य किसी प्रकार के प्राथमिक सम्बन्धों की व्यवस्था नहीं होती है।

नगरीय शब्द की अवधारणा के अन्तर्गत व्यक्ति, समुदाय, परिवार, परिस्थिति और सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था सम्बन्धी तत्वों का प्रमुख स्थान है।

नगरीयता के सम्बन्ध में समाजशास्त्री क्वीन और कारपेंटर ने कहा है, "हम नगरीयता का प्रयोग नगर निवास की प्रघटना को पहचानने के लिए करते हैं।" वहीं विर्थ ने नगरीयता के सम्बन्ध में लिखा है, "नगरीयता लक्षणों का वह पुँज है जो नगरों में एक विशिष्ट प्रकार का जीवन उत्पन्न करता है।" विर्थ के इस विचार का समर्थन बर्गेस व एंडरसन ने भी किया है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विर्थ के अनुसार, 'नगर की विषमता', व्यक्तियों के एक-दूसरे पर निर्भरता, बाहरी दिखावे की प्रवृत्ति, तथाकथित सभ्य और बुद्धिमत्तापूर्ण जीवन प्रणाली, ये सब नगरीयता के परिचायक लक्षण हैं।

विर्थ ने 'अमरीकन जनरल ऑफ सोशियोलॉजी' में प्रकाशित अपने लेख में स्पष्ट लिखा है कि नगर में नगरीयता का विकास होता है और नगरीयता नगरों का विकास करती है। नगरों की उत्पत्ति घनी और मलिन बस्तियों के अविस्थापन का परिणाम है। इन बस्तियों में नगरीयता से परिपूर्ण विशिष्ट प्रकार के सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। इन सामाजिक सम्बन्धों से विकसित जीवन का ढंग नगरीयता कहलाता है।

यह सर्वव्यापी सत्य है कि देश, काल की सीमा से परे 'परिवर्तन' समाज का यथार्थ है। इस परिवर्तन की गति, किसी भी सामाजिक व्यवस्था के ऊपर निर्भर होती है। जहाँ ग्रामीण समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी है वहीं औद्योगिक एवं महानगरीय संस्कृति तेज गति से परिवर्तित हो रही है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में प्राचीन एवं नवीन के बीच का संघर्ष, लगातार बना हुआ है जिसके फलस्वरूप पुरातन परम्पराओं, आदर्शों, मानदण्डों एवं मूल्यों का स्थान नवीन परम्पराएँ, मूल्य आदि ले रहे हैं।

वर्तमान समय में सम्पूर्ण समाज तीव्र वैज्ञानिक, राजनैतिक, प्रौद्योगिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकास से प्रभावित हो रहा है। विशेषकर नगरीय परिवेश में उक्त प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक व स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहे हैं। नगरीय समाज की अपनी विशिष्ट प्रकृति है। नगरीय समाज की प्रमुख संस्थाओं का विवेचन करते हुए ही, नगरीय समाज के परिवर्तन को समझा जा सकता है। जब हम नगरीय समाज की बात करते हैं तो उसके अध्ययन के केन्द्र बिन्दु सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक संस्थाएँ होती हैं इसलिए नगरीय समाज में परिवर्तन का स्पष्ट तात्पर्य नगरीय सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक संरचना में परिवर्तन है। इस परिवर्तन को हम निम्न आधारों पर विश्लेषित कर सकते हैं–

(1) व्यक्तिवादिता– नगरीय समाज के मूल्य व्यक्तिवादी हैं अर्थात् हर व्यक्ति के दृष्टिकोण का दायरा स्वयंहित है। नगरीय संस्कृति की आधारभूत विशेषताओं में से एक विशेषता यह रही है, परन्तु बीते दो दशकों में इस स्थिति में बड़ी ही तेजी से परिवर्तन हुआ है। व्यक्तिवादिता इस सीमा तक बढ़ गई है कि व्यक्ति स्व-हित साधने के लिए दूसरों का अहित करने में संकोच नहीं करता।

(2) व्यवसायों की बहुलता एवं भिन्नता– नगरीय समाज की आर्थिक संरचना का मूल आधार उसकी 'अर्थ-शक्ति' है। नगर में रहने वाला एक बड़ा वर्ग विभिन्न व्यवसायों में संलग्न है पर इस परम्परा में बीते कुछ सालों में एक नवीन परिवर्तन जो बड़ी ही तेजी से देखा गया है, वह है 'खरीददारी' का तरीका या माध्यम। भारतीय नगरीय संस्कृति में यह बदलाव सिर्फ आर्थिक संरचना में होने वाले परिवर्तन को ही नहीं बता रहा अपितु क्रेता-विक्रेता के बीच स्थापित सम्बन्धों में परिवर्तन को भी इंगित कर रहा है। टीवी और इंटरनेट के माध्यम से खरीददारी के नवीन बाजार ने, आर्थिक संस्था में स्थापित वर्षों के क्रेता-विक्रेता के व्यक्तिगत सम्बन्धों को प्रभावित किया है।

(3) गुमनामता– यूँ तो नगरीय संस्कृति में व्यक्ति स्वयं को दूसरोंं `अ लगर खकर,अ पनाअ धिकतमस मयअ पनीउ न्नतिअ ौर विकास के मार्गों को खोजने में व्यतीत करना हितकारी समझता है परन्तु यहाँ भी एक असमंजसता की स्थिति दिखाई देती है। एक ओर, नगरीय संस्कृति बीते दशकों में व्यक्ति को एकांतवाद की ओर प्रवृत्त करने के मार्ग प्रशस्त कर रही थी परन्तु बीते एक दशक में एकांतप्रिय संस्कृति ने एक नवीन स्वरूप ग्रहण कर लिया है। अपने करीबी व्यक्ति या पड़ोसी को न जानने वाला व्यक्ति सोशल मीडिया के सहारे नवीन एवं अनजान लोगों से छद्म रिश्ते स्थापित कर रहा है। जिससे उसके लिए भावनात्मक संकट उत्पन्न हो रहे हैं।

(4) स्वार्थजनित सामाजिक सम्बन्ध– नगरीय समाज की सदैव से यह विशेषता रही है कि वहाँ सामाजिक सम्बन्धों का आधार निज-स्वार्थ रहे हैं और स्वार्थहित की समाप्ति के पश्चात् रिश्ते स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। परन्तु बीते कुछ समय में यह स्थिति उस पराकाष्ठा पर पहुँच गई है कि नगरीय सामाजिक सम्बन्धों की आधारभूमि छिन्न-भिन्न होती जा रही है। जिसके परिणामस्वरूप मानवीय भावनाएँ लुप्त हो रही है और नगरीय संस्कृति मानवीय से कहीं अधिक मशीनीकृत रूप ले रही है, यहाँ तक कि अपने स्वार्थहित के लिए रक्त सम्बन्धों को भी तिलांजलि दी जा रही है।

(5) मानवीय सम्बन्धों की टूटन– नगरीय संस्कृति में, सामाजिक सम्बन्ध इस कदर बिखर चुके हैं कि यहाँ हर व्यक्ति भीड़ में नितान्त अकेला है। गलाकाट प्रतियोगिता, महत्त्वाकांक्षाओं का बोझ और इन परिस्थितियों के बीच किसी भी रिश्ते पर विश्वास न कर पाने की प्रवृत्ति ने, नगरीय समाज की बहुल आबादी को अवसाद का शिकार बना दिया है। विभिन्न अध्ययन यह बताते हैं कि नगरीय संस्कृति से सम्बन्ध रखने वाले लगभग 36प्रतिशत लोग मानसिक अवसाद का शिकार हो रहे हैं।

(6) नगरीय पारिवारिक संरचना में बदलाव– नगरीय सामाजिक परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष पारिवारिक संरचना में हो रहे बदलाव हैं, चूँकि किसी भी सामाजिक ढाँचे का अविभाज्य अंग 'पारिवारिक संरचना' है इसलिए इसके विभिन्न पक्षों का विश्लेषण, अलग-अलग आधारों पर देखना आवश्यक है।

(क) पितृसत्तात्मक अधिकारों में कमी– भारतीय सामाजिक-संस्कृति अपने मूल रूप में पुरुषसत्तात्मक रही है इसलिए देश की पारिवारिक संरचना मूलतः पितृसत्तात्मक है परन्तु वैधानिक स्तर पर बेटियों को समकक्ष अधिकार प्राप्त होने एवं पैतृक संपत्ति पर घर के पुरुष सदस्यों के समान ही अधिकारों की प्राप्ति की पहल ने, अप्रत्यक्ष रूप से पितृसत्तात्मक व्यवस्था को प्रभावित किया है। माउरर ने लिखा है कि, ''वास्तव में हम परिस्थितियों में प्रबलता प्राप्त करने की ओर ध्यान देते हैं जिसमें बच्चे ही नीति को निश्चित करते हैं। अतः झुकाव सन्तानात्मक परिवार की ओर है जिसमें बच्चा प्रबल कार्य करता है।'' यदि बच्चों की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

शक्ति इसी प्रकार बढ़ती गई तो शीघ्र ही नगरीय परिवार सन्तानात्मक परिवार हो जाएगा।

(ख) परिवार के आकार में ह्रास– नगरीय परिवार के आकार में निरन्तर ह्रास हो रहा है। पति, पत्नी तथा बच्चों के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धी साथ में बहुत कम रहते हैं। सत्य तो यह है कि नगरीय संस्कृति 'एकल परिवार' की परम्परा को प्रोत्साहित करती है।

(ग) नातेदारी सम्बन्धों का प्रभावहीन होना– नगरीय संस्कृति में दिनोंदिन रक्त सम्बन्धों का महत्त्व कम होता जा रहा है। रक्त सम्बन्धियों, विशेषकर द्वितीय तथा तृतीयक नातेदारी सम्बन्धों को समय और धन के अपव्यय के साथ जोड़कर देखा जाता है और यही कारण है कि सम्बन्धों का आंकलन लाभ–हानि के गणित के आधार पर किया जाता है।

(घ) स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन– एक आम धारणा यह है कि भारतीय स्त्रियाँ बीते वर्षों में सशक्त बनी हैं। वह पुरुषों के समकक्ष स्थान पा चुकी हैं और उन्हें सभी क्षेत्रों में संवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं परन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं है। इस तस्वीर का एक दूसरा पहलू यह है कि नगरों में निवास कर रही महिलाएँ, बीते डेढ़ दशकों में गहरे मानसिक अवसाद का शिकार हुई हैं। वे गहरे दबाव में हैं। एक ओर परम्परागत पारिवारिक दायित्व यथावत कायम हैं वहीं दूसरी ओर नगरीय संस्कृति की 'भौतिकवादिता' प्रवृत्ति को कायम रखने के लिए उन्हें घर से बाहर निकलकर, अर्थअर्जन के दायित्वों का भी निर्वाह करना पड़ा है। घर और बाहर के दायित्वों के मध्य संतुलन बनाते–बनाते कामकाजी महिलाओं का शरीर बीमारी का गढ़ बन रहा है। यही नहीं, जो स्त्रियाँ सिर्फ घर संभालने का कार्य कर रही हैं, समाज की अर्थलोलुपता की मानसिकता उन्हें पीड़ा पहुँचा रही है। परिवार और सामाजिक दायरे के मध्य निठल्ले बैठे रहने का उलाहना, घरेलू महिलाओं को मानसिक रूप से व्यथित कर रहा है।

(च) बच्चों का बढ़ता एकाकीपन– नगरीय समाज की भौतिकवादी संस्कृति के चलते अभिभावक दिन–रात का अन्तर किये बगैर, घर से बाहर जाकर काम करने में जुटे हुए हैं, जिसके परिणामस्वरूप बच्चे घर पर नितांत अकेले रहने के लिए विवश हैं। उनके इस एकाकीपन में अगर उनका कोई साथी बनाता है, तो वह है टेलीविजन, वीडियो और कम्प्यूटर गेम्स। ये खेल हिंसा से भरपूर होते हैं और जिनके पात्रों का अन्ततोगत्वा लक्ष्य, खेल को जीतना होता है। समाज वैज्ञानिक विभिन्न शोधों में यह सिद्ध कर चुके हैं कि ऐसे बच्चे, समाज से स्वयं को धीरे–धीरे अलग करके एक छद्म दुनिया में जीने लगते हैं। उनका एकाकीपन उनको हिंसक और विद्रोही बना देता है। देश में ऐसे बच्चों की संख्या में निरन्तर बढ़ोतरी हो रही है।

(छ) किशोर अपराध में बढ़ोतरी– भौतिकवादी संस्कृति ने नगरीय समाज को भावनात्मक रूप में जहाँ शून्य कर दिया है, वहीं कम समय में अधिक से अधिक पाने की लालसा में नगरीय समाज दौड़ रहा है और इसी का परिणाम है अपराधों में बढ़ोतरी। बीते एक दशक में ऐसे युवाओं की संख्या में बढ़ोतरी हुई है जिन्होंने अल्पायु में अपनी अंतहीन इच्छाओं की पूर्ति हेतु अपराध का रास्ता अपनाया है। अपहरण, हत्या, लूट जैसी आपराधिक गतिविधियों में संलग्न ये किशोर निम्नवर्ग से ही नहीं अपितु मध्यम वर्ग से हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार भारतीय दण्ड संहिता के तहत पंजीकृत किशोर अपराधों में 47 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 2010 में जहाँ नाबालिगों द्वारा की गई अपराधों की संख्या 22,740 थी वहीं 2014 तक यह मामले बढ़कर 33,526हो गये।

(ज) विवाह संस्था का कमजोर पड़ना– भारतीय सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की एक प्रमुख विशेषता 'विवाह संस्था' रही है, परन्तु नगरीय समाज में यह सबसे अधिक प्रभावित हुई है। वैवाहिक रिश्तों में प्रेम, समर्पण और त्याग की भावना शून्य हो गई है और कहीं–कहीं भावात्मक रिश्तों में भी धैर्य एवं विश्वास की जगह प्रतिद्वंद्विता ने ली ली है। आँकड़ों के अनुसार भारत में विवाह–विच्छेद की दर प्रति हजार पर 13 हो गयी है। महानगरों में यह संख्या तेजी से बढ़ रही है। वर्ष 2010 में मुम्बई में जहाँ सम्बन्ध–विच्छेद के 5,243 मामले सामने आये थे वहीं वर्ष 2014 तक यह संख्या 11 हजार 667 तक पहुँच गयी।

(7) राजनैतिक संस्थाओं का प्रभाव– नगरीय समाज में, राजनैतिक संस्थाएँ भी पिछले 10–15 वर्षों में विशेष रूप से प्रभावित हुई हैं। आज भी जहाँ गाँवों, कस्बों और छोटे नगरों में राजनीति में जातिगत समीकरण महत्त्व रखते हैं, वहीं नगरीय समाज में शिक्षा, अधिकारों के प्रति जागरूकता और राजनैतिक पार्टियों के कार्यों के आंकलन के आधार पर, नेताओं का चुनाव होने के रुझान दिखाई देने लगे हैं। यहाँ तक कि महिला मतदाता उन प्रत्याशियों को वोट देने के प्रति उत्सुक दिखाई देती हैं जो सामाजिक बुराई को दूर करने एवं ढाँचागत सुविधाओं को मुहैया कराने की बात करते हैं।

नगरीय समाज में, परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर बनी हुई है। सोशलन `टवर्किंगत थाइ `टरनेटस `स्कृतिन `,स ामाजिकअ `ैरअ ार्थिक संस्थाओं को तो प्रभावित किया ही है वहीं राजनैतिक संस्थाएँ भी इससे अछूती नहीं रही हैं। इन संस्थाओं में हो रहे परिवर्तनों से नगरीय समाज तनाव में है। संक्रमण काल से गुजरती नगरीय संस्कृति में, समाज के लिए पहचान का संकट उपस्थित हो गया है। पुरातन और नवीन के बीच का चुनाव, समाज को बिखेर रहा है, ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि अंधाधुंध नकल करने की प्रवृत्ति को त्यागकर समाज उन्हीं तत्त्वों को स्वीकार करे जो उन्हें सकारात्मक विकास की ओर प्रवृत्त करें। साथ ही भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए, पारिवारिक मूल्यों का त्याग, नगरीय समाज के लिए घातक न सिद्ध हो, इसलिए इस पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।

नगरीय समाज में विकास एवं चुनौतियाँ–

नगरों का ऐतिहासिक और पुरातात्विक महत्त्व स्वयंसिद्ध है। नगर निर्माण, आधारभूत ढाँचा की उपलब्धता, नगरीय विकास की योजनाएँ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

किसी भी समाज की सोच और गतिशीलता को ही परिलक्षित नहीं करती, अपितु नगरीय समाज के विकास का अपरिहार्य अंग भी हैं। किसी भी नगर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं विकास के लिए उनके प्रयास से उनके निवासियों के सांस्कृतिक लक्ष्य का अनुमान लगाया जा सकता है। नगरीय क्षेत्र सामाजिक रूप से समुदाय और सहकारिता को जन्म देते हैं वहीं आर्थिक दृष्टिकोण से वे उद्योग एवं व्यवसाय के केन्द्र होते हैं। राजनीतिक इकाई के रूप में वे शक्ति और सरकार का केन्द्र होते हैं। संयुक्त राष्ट्र के मानव पुनर्वास केन्द्र द्वारा किए गए एक अध्ययन के उपरान्त 'नगर' के औचित्य के सन्दर्भ में कहा, ''नयी शताब्दी के नवीन नगरीय विश्व में नगरों, उपनगरों और समूहों में हम में से अधिकांश लोग निवास करेंगे और कार्य करेंगे, जहाँ प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम दोहन करते हुए प्रदूषण उत्पन्न किया जाएगा, जहाँ राजनीतिक और सामाजिक स्थितियों में संघर्ष के कारण उबाल आएगा और अन्तत: वहीं वैश्विक और मानवीय सुरक्षा की वास्तविक जड़ें मजबूत होंगी।'' भारतीय नगरीय समाज भी विकास की इस वैश्विक प्रवृत्ति का साझेदार बना हुआ है। विगत पाँच दशकों में भारत की नगरीय जनसंख्या में 50 से 60 लाख औसत वृद्धि हुई है। एक आंकलन के मुताबिक वर्ष 2020 तक भारत की नगरीय जनसंख्या में 41.8करोड़ अधिक लोग होंगे। वर्तमान में भारत में तीन महानगर (एक करोड़ से अधिक जनसंख्या), 19 बड़े नगर (दस लाख से अधिक जनसंख्या), 300 नगर और लगभग 3800 छोटे और मध्यम आकार के नगर हैं।

नगरीय समाज में विकास के मुद्दे–

सुनियोजित बस्तियाँ और सार्वजनिक स्थलों तक पहुँच– नगरीय समाज का विकास तभी सम्भव है जब उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो तथा सहज सुलभ जीवन के मार्ग उनके लिए प्रशस्त हों। इस परिप्रेक्ष्य में अमेरिकन प्लानिंग एसोसिएशन ने, नगर की विकास नीति के जिन मुख्य सिद्धान्तों का उल्लेख किया, वे भारतीय नगरों के परिप्रेक्ष्य में भी महत्त्वपूर्ण हैं। इस विकास नीति के मुख्य सिद्धान्त हैं, ''मानवीय पैमाने के मुताबिक बस्तियों और समुदायों का विकास, मिश्रित उपयोग वाले केन्द्र, सुपरिभाषित सामुदायिक हितों के इलाके जैसे–कृषि हरित क्षेत्र, वन्य जीवन कॉरिडोर या स्थायी रूप से खेती की जमीन या खुले स्थल के तौर पर संरक्षित हरित क्षेत्र।''

नगरों में विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने से पूर्व उन समस्याओं की पहचान आवश्यक है, जो राष्ट्रों के बिखरे और बेढंगे फैलने के कारण पैदा हुई है। साथ ही साथ भौतिक विकास की सीमा निर्धारित करना भी जरूरी है। इसके साथ ही स्थानीय स्तर पर एक विस्तृत योजना प्रणाली और निर्णय लेने की क्षमता जो इस आधार पर निर्धारित हो कि नगर में रहने वाले निवासी भविष्य में अपने आसपास के भौतिक तथा अभौतिक पर्यावरण को किस रूप में देखना चाहते हैं?

विकास के पहलुओं का स्पष्ट जुड़ाव, नगरीय समाज की उस पीड़ा से है जहाँ लोगों को कार्यस्थल तक पहुँचने के लिए प्रतिदिन लम्बी दूरी तय करनी पड़ती है।

सहज आवागमन केन्द्रिक विकास– नगरीय विकास के लिए आवश्यक है कि परिवहन की योजना इस तरह बने जिसमें सिर्फ चार पहिया वाहनों के लिए नहीं, बल्कि नगर की आम एवं निर्धन आबादी के लिए परिवहन के सार्वजनिक एवं सरकारी साधनों की उपलब्धता हो। यूनिवर्सिटी ऑफ सदर्न कैलिफोर्निया के मार्लन बोरनेट कहते हैं कि चूँकि अर्थव्यवस्थाएँ अब तेजी से एक-दूसरे से जुड़ रही हैं, ऐसे में सहज आवागमन केन्द्रित विकास शहरों के लिए आवश्यक है। बोरनेट के अनुसार, ''शहर आंशिक तौर पर इसलिए विकसित होने लगते हैं क्योंकि बड़े शहरों, इलाकों में अनेक तरह की कम्पनियाँ बेहतर ढंग से संचालित हो पाती है। जैसे-जैसे हम ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहे हैं, शहरों में रह रहे लोगों की उत्पादकता से जुड़े लाभ अधिक ताकतवर होते जा रहे हैं। इन्हें बढ़ती गतिशीलता से साझा गुण से जोड़ दें, तो यह साफ हो जाता है कि शहरी इलाकों में आबादी के बढ़ते घनत्व से निपटने के लिए योजना निर्माण करने वालों को रचनात्मक तरीकों से जूझना पड़ेगा।''

जल प्रबंधन– नगरीय समाज के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं में से एक है 'जल को सामूहिक संसाधन माना जाये' तथा इसके प्रबंधन सुनियोजित एवं स्थायित्वपूर्ण हों। शहरी विकास के लिए आवश्यक है कि एक ऐसी नीति निर्मित हो जो मनुष्य की तात्कालिक और भविष्य के जल की आवश्यकता को पूर्ण करने के साथ-साथ भूगर्भीय जल के संरक्षण पर भी ध्यान केन्द्रित करें।

जल प्रबधन एक कठिन कार्य है क्योंकि साधारणत: जल प्रबंधन स्थानीय स्तर पर ही होता है क्योंकि सैकड़ों घटक इसके प्रबंधन के साथ जुड़े होते हैं और उनके मध्य तारतम्यता बैठाना सहज नहीं होता इसलिए यह एक चुनौती बन जाता है। उदाहरणत: जल उपलब्ध कराने वाली एजेंसियाँ, उनकी गुणवत्ता का उत्तरदायित्व नहीं लेतीं। यह तय है कि जल संरक्षण, जल प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। शहरों के विकास में जल का बेहतर उपयोग, जल संरक्षण एवं वर्षा जल का सुनियोजित तरीके से उपयोग, महती भूमिका निभा सकते हैं।

ऊर्जा प्रबंधन– ऊर्जा की उपलब्धता किसी भी नगरीय समाज की अपरिहार्य आवश्यकता है। शहरों में बढ़ता जनसंख्या का दबाव, उसकी अपेक्षाकृतम ाँगक ाब हुतअ धिकह ोना,उ पलब्धऊ र्जास ाधनोंप र निरन्तर दबाव बनाये हुए हैं। इसी स्थिति में ऊर्जा के दूसरे विकल्प को खोजने की आवश्यकता है। नये ऊर्जा स्रोतों, जैसे कि सौर, वायु, बायोमास, शहरी/औद्योगिक कचरे से छोटी तथा सूक्ष्म ऊर्जा परियोजनाएँ लगाई जा सकती है। ऊर्जा और जल प्रबंधन एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। नगरों के सुनियोजित विकास में ऊर्जा प्रबंधन, ऊर्जा उत्पादन तथा संरक्षण की महती भूमिका है।

कचरे का प्रबंधन– किसी भी नगर के सुनियोजित विकास का एकम हत्त्वपूर्णभ ागउ सश हरके क चरेक ाप्रबंधनहै क चरान गर निवासियों को अस्वस्थकर जीवन ही नहीं देता अपितु नगर के सौन्दर्य को

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भी खत्म कर देता है। कचरा स्थानीय स्तर पर उपभोक्ता, व्यवसायी और दूसरे संगठनों के जरिये पैदा होता है और शहर में चारों तरफ बिखरा रहता है तथा प्रदूषण की वजह बनता है। शहर के विकास के लिए प्रदूषण की रोकथाम, कचरा प्रबंधन की सुविधाओं के स्थान के सन्दर्भ में एक विस्तृत योजना प्रक्रिया की माँग करता है, जिसमें अर्थपूर्ण जन-भागीदारी एवं सहमति भी शामिल है। विशेषकर औद्योगिक एवं चिकित्सकीय कूड़े का प्रबंधन इस तरह से होना चाहिए कि ये मनुष्य और पर्यावरण को नुकसान न पहुँचा सकें। न्यूनतम कचरा उत्पन्न हो, इसके लिए ऐसे कानून की आवश्यकता है, जो पर्यावरण के लिए नुकसानदायक उत्पाद न हो, जो पहले इस्तेमाल हुई चीजों के दोबारा इस्तेमाल की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करे और जो उत्पाद व पैकिजिंग का पुनर्चक्रण न किये जा सके, उनको प्रतिबंधित करे।

उत्पाद के पुन: प्रयोग के लिए कानून बनाने की आवश्यकता है, जिसके तहत कचरा एकत्र करने और उसे अलग करने की योजनाएँ तैयार की जा सकें, ताकि आम हानिकारक कूड़ों को अलग किया जा सके। स्थानीय, प्रांतीय और अपशिष्ट भराव क्षेत्र में तय अवधि के बाद भी कूड़ा डालनेक ीय ोजनाअ ौरअ नुमतिके ि लएस मन्वयअ ौरस हयोगक ो प्रोत्साहित किया जाये। यह महत्त्वपूर्ण है कि योजनागत तथा नियमन प्रक्रिया ऐसी हो, जिससे अपशिष्ट भराव क्षेत्र के आसपास रहने वाले, सामाजिक रूप से कमजोर वर्ग के लोगों पर इसका हानिकारक असर न पड़े।

प्राकृतिक व सांस्कृतिक संसाधनों का संरक्षण– उन्नत नगर विकास के लिए उसके सांस्कृतिक संसाधनों का बहुत अधिक महत्त्व है। भारतीय नगरों में इसका नितांत अभाव पाया जाता है यद्यपि चण्डीगढ़ देश के उन शहरों में से एक है जहाँ प्राकृतिक व सांस्कृतिक संसाधनों का संरक्षण, नगरीय विकास का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण रहा है। इस दिशा में पश्चिमी नगरों के प्रेरणादायक उदाहरण हैं जिन्होंने नगरों के विकास में सांस्कृतिक संसाधनों के संरक्षण पर विशेष रूप से ध्यान दिया। ओहायो के हैमिल्टन ने अपनी एक परियोजना के माध्यम से, 2015 में पर्यावरण संरक्षण एजेंसी से 'नेशनल अवॉर्ड फॉर स्मार्ट ग्रोथ अचीवमेंट' का पुरस्कार प्राप्त किया। हैमिल्टन की उपलब्धि को अगर विश्लेषित करते हैं तो पाएँगे कि इसमें उनके वर्षों के अथक प्रयास रहें। रचनात्मक सोच, रणनीतिक योजना और सामुदायिक संवाद के साथ इस शहर और ऐतिहासिक उत्प्रेरक संस्थाओं की मदद से नवीन आर्थिक विकास की पटकथा लिखी। इन्होंने ऐसी परियोजनाएँ बनाईं जिनके जरिये शहर के मुख्य वाणिज्यिक इलाके में घूमने की जगह बनी, साथ ही नयी सुविधाओं, रोजगार की सम्भावनाओं, आवास के विकल्पों की सुविधा बनी। इस सम्पूर्ण परियोजना का मूलभूत आधार इस सिद्धान्त पर टिका था कि शहर के महत्त्वपूर्ण इलाके का स्वस्थ होना समूचे समुदाय के स्वास्थ्य के लिए महत्त्वपूर्ण है।

दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य यह है कि भारतीय नगर तेजी से आर्थिक सुदृढ़ता की समस्त ऊँचाइयों को प्राप्त कर लेना चाहते हैं बिना भविष्य में उनके परिणामों के बारे में सोचे और यही कारण है कि शहर का अधिकांश भाग अट्टालिकाओं से पट गया है। कहीं ऐसे भू-भाग नहीं हैं जहाँ हरियाली हो, घूमने और बच्चों के खेलने की व्यवस्था हो। जो जगह पूर्व में बनी भी है, उन पर भू-माफिया का कब्जा एक बड़ी समस्या बनाकर उभर रहा है।

सामान्यत: रोजगार केन्द्रों में बढ़ोत्तरी, बड़े-बड़े मॉल का बनाना, आवासीय क्षेत्रों का बहुल मात्रा में स्थापित होना, हमारी दृष्टि में नगरों का विकास है। परन्तु यह मात्र एक ऐसा बाह्य ढाँचा है जो नगरों को निर्मित करता है परन्तु मानवीय जरूरतों को और उनके जीवन को सम्मानजनक स्थिति प्रदान करने में सक्षमता तभी मिल सकती है जब मनुष्य स्वस्थ और खुशहाल वातावरण प्राप्त कर सके और यह तभी सम्भव है जब प्राकृतिक और साँस्कृतिक संसाधनों का संरक्षण हो।

नगरीय विकास के जो महत्त्वपूर्ण लक्षण हैं, उनको प्राप्त करना ही नगरीय समाज की सबसे बड़ी चुनौती है।

चुनौतियाँ– नगरीय समाज में, वैश्वीकरण के कारण उत्पन्न हुई चुनौतियों की, स्वैच्छिक या दबाव के कारण स्वीकृति बढ़ती जा रही है। तीव्र तकनीकी विकास तथा सामान्य आर्थिक विचारधारा के कारण सम्पूर्ण विश्व देशों के संघ की जगह 'नगरों का संघ' बन गया है, जो कि इंटरनेट (अन्तरताना) के जरिये आपस में इस तरह गुंथा हुआ है कि उसको विभक्त करना सम्भव नहीं है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यहाँ यह उत्पन्न होता है कि क्या भारतीय नगर इस चुनौती के लिए तैयार हैं? इस विषय के गहन विश्लेषण के लिए कुछ मुद्दों की पहचान आवश्यक है।

मुख्य मुद्दे– आवास, राजनीति, गरीबी, प्रदूषण, भौतिक और वित्तीय समस्यायें वे मुद्दे हैं जो भारत के नगरीय प्रशासन के समक्ष चुनौती बनकर खड़े हैं। यह चुनौती केवल मात्र प्रशासन की नहीं है। वास्तव में यह समस्या सम्पूर्ण समुदाय की चेतना, त्याग, समर्पण, दायित्व बोध तथा रचनात्मक मानसिकता से जुड़ी हुई है। इसलिए नैतिक, सांस्कृतिक तथा बौद्धिक रूप से सक्षम नगरीय भारत के निर्माण की आवश्यकता है।

भारतीय मनीषी की शक्ति और सभ्यता के मूल्यों को पुन: संयोजित करते हुए भविष्य के हेतु एक बेहतर जीवन पद्धति विकसित करने के लिए, नगर प्रशासकों तथा तकनीकी विशेषज्ञों के लिए एक अध्ययन संस्थान बनाये जाना उचित होगा, जिससे यह संस्थान प्रशिक्षण के साथ ही साथ 'मानव पुनर्वास' की नयी सम्भावनाओं को भी खोज सकें। वे सम्भावनाएँ, जो वैश्वीकरण के कारण विभिन्न रूपों, आकारों एवं आवरणों में हमारे सामने आ रही हैं।

नगरीय समाज की सबसे बड़ी चुनौती सामाजिक असमानता है। भारत सरकार के राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के अनुसार लगभग 22 प्रतिशत लोग आज भी गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं। एक विकसित तथा खुशहाल समाज की प्रथम आवश्यकता एवं दायित्व यह है कि वो आर्थिक व सामाजिक आधार पर पिछड़े लोगों को सार्वजनिक तौर पर सुविधाएँ उपलब्ध कराएँ।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आधुनिक भारत के निर्माता डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, ''एक कल्याणकारी समाज के गठन के लिए सबका विकास जरूरी है।'' यह वक्तव्य नगरीय समाज का लक्ष्य है परन्तु इसकी पूर्ति सबसे बड़ी चुनौती–

1. सामाजिक समानता– जॉन हॉब्स के सिद्धान्त ''राज्य की उत्पत्ति व सामाजिक समझौते का सिद्धान्त यह कहता है कि सामाजिक तौर से राज्य का निर्माण हो और एक सफल राज्य के निर्माण के लिए यह चुनौती होती है कि वो अपने नागरिकों को कैसे संतुष्ट रखेगा।'' भारतीय सामाजिक व्यवस्था के लिए यह सबसे बड़ी चुनौती है, क्योंकि निर्धन व्यक्ति का संघर्ष अपनी मूलभूत आवश्यकता को भी पूरा न कर पाने का है। ऐसे में यह राज्य का दायित्व बनता है कि ऐसे संसाधनों को वह विकसित करे जिससे गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले लोगों का जीवन स्तर बेहतर हो सके। अगर हम ऐसा कर पाने में सफल नहीं होते, यह हमारी असफलता है। इस सन्दर्भ में डॉ. अम्बेडकर का कथन विचारणीय है कि ''समाज में हर व्यक्ति का समान अधिकार है और जिस समाज में समानता नहीं है, उसका मूल रूप से विकास सम्भव नहीं है।''

2. आर्थिक विकास– आर्थिक विकास किसी भी देश, राज्य और नगर की प्राथमिक आवश्यकता है। आर्थिक विकास का असंतुलित वितरण ही सबसे बड़ी चुनौती है। भारतीय नगरों की चुनौती यह है कि यहाँ धन सम्पदा चंद लोगों के हाथों में केन्द्रित है और इस तरह आर्थिक विकास की कुँजी धनाढ्य वर्ग के मध्य ही केन्द्रित हो जाती है। इस चुनौती से निपटने के लिए यूँ तो सरकारी स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं परन्तु अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता के लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय को बढ़ाया जाए और राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के लिए हमें 30 प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों का जीवन बेहतर करना होगा ताकि सकल घरेलू उत्पाद और सकल राष्ट्रीय उत्पाद को बढ़ावा मिले।

3. प्रदूषित वातावरण– नगरीय समाज प्रदूषित वातावरण में रहकर अस्वस्थ जीवन जीने के लिए विवश है। नगरों की स्थापना में कल-कारखानों का योगदान है परन्तु उससे निकले अपशिष्ट के प्रबंधन का अभाव, प्रदूषण का एक कारण है। आवासों के लिए पेड़ों को काट देना नगरीय संस्कृति का जैसे अभिन्न हिस्सा बन चुका है। वाहन और मशीनों से निकलने वाली खतरनाक गैसों से वातावरण जहरीला हो चुका है, यहाँ तक कि औद्योगिक इकाइयों से सम्बन्धित खदानों जैसे लौह-अयस्क तथा कोयले के खदानों की धूल से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है तथा विभिन्न रोग उत्पन्न हो रहे हैं।

4. स्वच्छता का अभाव– भारतीय नगरों की पहचान, उसके कूड़े के ढेरों से होती है। वस्तुओं के उपयोग के पश्चात् घरों से प्रतिदिन कूड़ा-करकट तथा अनेक प्रकार के ठोस अपशिष्ट बाहर निकाले जाते हैं जिनका ढेर सड़क पर या इधर-उधर फैला रहता है। ये कूड़े के ढेर बीमारियों के गढ़ बन रहे हैं। अपशिष्ट प्रबन्धन का अभाव नगरों के लिए एक बड़ी चुनौती बन कर उभरा है।

5. आवासीय समस्या– अत्यधिक जनसंख्या के संकेन्द्रण के कारण विश्व के वृहत नगरों में आवास की उपलब्धता एक बहुत बड़ी चुनौती बनकर उभरी है। नगरों में प्रति वर्ष बड़ी संख्या में लोग ग्रामीण अथवा बाहरी क्षेत्रों से आकर बसते हैं, किन्तु जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में नगरों में आवासों की संख्या नहीं बढ़ पाती है, जिसका परिणाम होता है गृहों का अभाव तथा आवासीय समस्या।

नगरों के समेकित और सतत् विकास के सामने अनेक चुनौतियाँ मुँह बाये खड़ी हैं। शहरी भूमि के बदलते उपयोग से पर्यावरण पर पड़ते प्रभाव, समेकित आवासन, सार्वजनिक स्थानों के बदलते परिदृश्य, कम होते संसाधन, जल निकासी और ठोस कचरा प्रबन्धन, मलिन बस्तियों का बढ़ता वर्चस्व, नगरीय समाज के विकास को अवरुद्ध करके एक चुनौती बन कर उभरा है। इन चुनौतियों से निपटने के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक अड़चनों और अवसरों की पड़ताल की आवश्यकता है। योजना की आधारभूमि में ऐसे प्रक्रियों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है जिनसे आकांक्षाओं, विकास और शहरी आयोजन के बीच एक प्रकार का संतुलन बना रहे। योजना प्रक्रिया में सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरणीय और सुशासन सम्बन्धी चिंताओं को समग्र रूप से देखे जाने की जरूरत है। शहरी क्षेत्रों में समानता, उनके आर्थिक रूप से कारगर होने और उन तक सहज पहुँच के लिए भौगोलिक कारकों को क्षेत्रवार जरूरतों (शिक्षा, व्यवसाय, मनोरंजन, स्वास्थ्य तथा अन्य सेवाएँ) के साथ जोड़े जाने की जरूरत है।

आधारभूत संरचना

नगर सुख-सुविधाओं की मौजूदगी के चलते, हमेशा से ही आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। सत्य तो यह है कि ये विकास के इंजन बन चुके हैं, परन्तु यह भी सच है कि नगर मानव की सबसे जटिल संरचनाओं में से एक है। नगरों में व्यवस्था तथा अव्यवस्था साथ-साथ चलती है। बढ़ती जनसंख्या व घटती सुविधाओं के कारण नगरों की पहचान समस्या स्थलों के रूप में होने लगी है। बिजली, पानी, सीवर, सड़क और परिवहन प्रणाली के अभाव में नगरों को समस्याओं का केन्द्र माना जाने लगा है।

आधारभूत संरचना से तात्पर्य परिवहन, इमारतें, सार्वजनिक सुविधाएँ हैं जो कि किसी नगर में रहने वाले निवासियों का जीवन सहज एवं सरल बनाती है। इन सुविधाओं के अभाव में नगर खोखले ढाँचे के समान होता है जहाँ नगरीय समाज अपनी मूलभूत सुविधाओं के लिए संघर्ष करता है।

यह सत्य है कि इस समय नगरीय समाज भारी दबाव में है। यद्यपि हमारा 90 प्रतिशत सरकारी राजस्व तथा 60 प्रतिशत राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद शहरों से प्राप्त होता है किन्तु नगर निकायों के स्तर पर शहरों को सकल घरेलू उत्पाद का केवल 0.6 प्रतिशत हिस्सा ही मिलता है। नगरों की समस्याएँ जहाँ जटिलता और विस्तार दोनों ही दृष्टि से बढ़ती जा रही है, वहीं उनके समाधान के लिए स्रोत घटते जा रहे हैं।

विभिन्न अध्ययन यह बताते हैं कि देश में लगभग ढाई करोड़

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मकानों की कमी है, जिसमें शहरी क्षेत्रों में यह 70 लाख के करीब हैं। हमारे देश में जनसंख्या का घनत्व विश्वभर में सबसे अधिक है। लगभग 19 प्रतिशत भारतीय परिवार 10 वर्ग मीटर से कम जगह में गुजर-बसर करते हैं। शहरी क्षेत्रों में तो लगभग 44 प्रतिशत परिवार केवल एक कमरे में ही रहते हैं। नगरी आधारभूत संरचना और नगर निकायों की सेवा सुविधाओं की स्थिति भी समान रूप से हताशापूर्ण है। देश में करीब 34 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या के लिए अपने घरों के आस-पास बरसाती पानी के निकासी की व्यवस्था भी नहीं है। देश में लगभग 60 प्रतिशत नगर निकाय ऐसे हैं जो रोजाना निकाले जाने वाले अपशिष्ट का लगभग 40 प्रतिशत से भी कम भाग इकट्ठा करते हैं। प्राय: अधिकांश शहरी कूड़ा, सड़क के किनारे, मकानों और कारखानों के आस-पास सड़ता-गलता रहता है। इसका एक बड़ा भाग नालियों में बह जाता है, जिससे नालियाँ अवरुद्ध हो जाती है और आसपास का क्षेत्र दुर्गंध, कीचड़ से भर जाता है। नगरों में कम से कम 35 प्रतिशत जनसंख्या ऐसी बस्तियों में रह रही है जो कि गंदी व अस्थायी है। ये बस्तियाँ न केवल जनसंख्या घनत्व या नागरिक सुविधाओं के अभाव के कारण, अपितु अस्वच्छ जीवनशैली और नागरिक दायित्वों के प्रति गहरी उदासीनता के कारण गंदगी से त्रस्त रहती है।

सड़कों की चौड़ाई और वाहनों की संख्या के बीच बढ़ते हुए असंतुलन के कारण वाहन सुगमता से चल नहीं पाते। इसका उदाहरण मुम्बई में 'बेस्ट' बस है, जिसके चलने की औसत गति केवल 12 किलोमीटर प्रति घंटा है। इन अव्यवस्थाओं के चलते सड़क दुर्घटनाएं बढ़ती है। संयुक्त राष्ट्र के एक अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारत में अमरीका की तुलना में प्रति वर्ष सड़क दुर्घटनाओं से अधिक मौतें होती हैं, जबकि भारत में अमरीका की तुलना में केवल 20 प्रतिशत सड़क वाहन हैं।

नगरीय आधारभूत ढांचे की स्थिति

1. जलापूर्ति–व र्ष2 011क ी ज नगणनाके अ नुसार7 1.2 प्रतिशत शहरी जनसंख्या को पेयजल की आपूर्ति उनके परिसर में प्राप्त होती है जबकि वर्ष 2001 की जनगणना में यह 65.4 प्रतिशत था। उसी प्रकार वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 20.7 प्रतिशत जनसंख्या को जलापूर्ति परिसर के निकट प्राप्त होती है, जबकि 2001 की जनगणना में यह प्रतिशत 25.2 प्रतिशत था। किसी भी नगर में चौबीस घंटे जल की आपूर्ति वर्तमान में नहीं है।

2. स्वच्छता– भारत के नगरों में स्वच्छता की चुनौती गंभीर है। वर्ष 2009-10 में शहरी विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 423 वर्ग-1 शहरों का स्वच्छता मूल्यांकन से ज्ञात होता है कि गंदलापन, अवशिष्ट क्लोरीन और थर्मो टोलेरेंट कोलिफॉर्म जीवाणु के 3 आधारभूत जल गुणवत्ता मानदंडों पर केवल 39 शहर ही खरे उतरे हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, 32.1 प्रतिशत शहरी जनसंख्या पाइपयुक्त सीवेज प्रणाली का प्रयोग करती है तथा 12.6 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या अभी भी खुले में शौच करती है। केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड रिपोर्ट 2009 के अनुसार अधिष्ठापित सीवेज शोधन की क्षमता केवल 30 प्रतिशत है, जबकि क्षमता का उपयोग लगभग 72.2 प्रतिशत है, जिसका अर्थ है कि अधिकांश नगरों में निस्तारण से पहले उत्पादित सीवेज के केवल 20 प्रतिशत का उपचार होता है।

3. ठोस अपशिष्ट प्रबन्धन– भारत के नगरों में उत्पादित ठोस अपशिष्ट का प्रबन्धन और निस्तारण एक बड़ी समस्या है। सीपीसीबी रिपोर्ट 2005 के अनुसार लगभग 1,15,000 एमटी, नगर अपशिष्ट का उत्पादन होता है। अधिकांश शहरों में अपशिष्ट को अपशिष्ट भरणस्थल में ले जाकर भर दिया जाता है। ठोस अपशिष्ट का वैज्ञानिक उपचार और निस्तारण व्यावहारिक रूप से कहीं मौजूद नहीं है।

4. शहरी परिवहन– सार्वजनिक परिवहन निम्न मध्य आय वाले देशों (फिलीपींस, वेनेजुएला, इजिप्ट) में 49 प्रतिशत और ऊपरी मध्य आय वाले देशों (जैसे दक्षिण अफ्रीका, कोरिया, ब्राजील) में 40 प्रतिशत की तुलना में भारत में नगरीय परिवहन का लगभग 22 प्रतिशत है। देश के नगरों में सार्वजनिक परिवहन की समग्र तस्वीर अभी भी अच्छी नहीं है। इसलिए आमतौर पर केवल वे व्यक्ति ही सार्वजनिक परिवहन का प्रयोग करते हैं, जिनके पास दूसरा कोई विकल्प नहीं है। 2012 के अनुसार 423 वर्ग-1, शहरों में से केवल 65 शहरों में ही औपचारिक सिटी बस सेवा उपलब्ध है और उसमें भी सिटी परिवहन के लिए बसों के वित्त पोषण के कार्यक्रम के जरिए केन्द्र सरकार का हस्तक्षेप है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि भारतीय नगरों की अधोसंरचनात्मक व्यवस्था कमजोर है, यद्यपि बीते वर्षों में उसकी बेहतरी के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। अधिक से अधिक उन्नति के मायने इतने संकुचित हो चुके हैं कि नगरीय निवासियों को घूमने, यहाँ तक कि खुले वातावरण में साँस लेने में भी दिक्कत आ रही है। बड़े शहरों में सड़कों के लिए छोड़े गए स्थान का ही उदाहरण लें, तो कोलकाता में इसके लिए पूरे शहर के कुल स्थान का पाँच प्रतिशत तथा मुम्बई में मात्र 11 प्रतिशत स्थान ही रखा गया है। दूसरी ओर अमेरिका जैसे विकसित देशों में कुल नगरीय विकास का 25 से 30 प्रतिशत तक सड़कों के फैलाव के लिए रखा जाता है।

दुनिया के बीस में से सबसे अधिक जनसंख्या वाले पाँच शहर भारत में हैं। देश में नगरीय आबादी जिस गति से बढ़ रही है, उससे 2030 तक इसके 70 करोड़ से अधिक होने का अनुमान है। इस संदर्भ में मैकिंजे कम्पनी की 2014 में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार इस नगरीय ढाँचे में परिवर्तन को संभालने के लिए भारत को भविष्य में पाँच सौ से अधिक नगरों की आवश्यकता पड़ेगी।

चार्ल्स डिकेंस ने अपनी पुस्तक 'ए टेल ऑफ टू सिटीज' में लिखा है कि नगर अब धीरे-धीरे थकने लगे हैं। यूँ तो चार्ल्स ने नगरों की यह कहानी यूरोप में औद्योगीकरण के बाद टूटते बिखरते शहरों के विषय में दोहराई थी। उन्होंने नगरों में उत्पन्न उस युग का दर्द, छटपटाहट व

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उम्मीद तथा निराशा जैसे भावनाओं को अभिव्यक्त किया है, परन्तु चार्ल्स की कहानी के किरदार भारत के नगरों में भी दिखाई दे रहे हैं। नागरिक सुविधाओं के अभाव में उनका जीविकोपार्जन का संघर्ष और बढ़ गया है। अत: अब आवश्यकता है कि नगरों में विकास की ऐसी दीर्घकालिक योजनाएँ बनाई जाये, जिससे नगरों में योजनाबद्ध तरीके से लोगों को बसाया जा सके। केन्द्र सरकार ने 'प्रोविजन ऑफ अर्बन अमेनिटीज टू रूरल एरियाज' जिसके लिये दिवंगत राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने पहल की थी, के साथ ही जवाहर लाल नेहरू अर्बन रिन्यूवल मिशन, मेक इन इंडिया, अर्बन हाउसिंग मिशन तथा अटल मिशन फॉर रिजुवेनेशन एंड अर्बन ट्रांसफॉरमेशन जैसे अनेक कार्यक्रम शुरू किये हैं, जिससे टिकाऊ और समेकित नगरीय विकास को बढ़ावा मिले।

(क) स्मार्ट सिटीज कार्यक्रम–

इस कार्यक्रम का उद्देश्य भारत में विभिन्न शहरों को स्मार्ट शहरों में तब्दील करना है, जिससे आर्थिक विकास की सुविधाएँ उपलब्ध करा के स्वच्छ और स्वस्थ पर्यावरण उपलब्ध कराने के साथ-साथ प्रौद्योगिकी का उपयोग कर इन शहरों के लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार आये। चूँकि स्मार्ट सिटी योजना का मुख्य उद्देश्य शहर में रहने वाले लोगों के जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि करना है इसलिए आधारभूत संरचना इस योजना का एक महत्वपूर्ण तत्व है, जैसे पर्याप्त पानी की आपूर्ति, सुनिश्चित विद्युत आपूर्ति, उचित स्वच्छता जिसमें ठोस अवशेष शामिल हैं। कुशल शहरी गतिशीलता एवं सार्वजनिक परिवहन प्रणाली की सुविधा, किफायती आवास सुविधा, मजबूत सूचना प्रौद्योगिकी संयोजकता, नागरिकों की सुरक्षा सुनिश्चित करना, उचित स्वास्थ्य अथवा शिक्षा प्रणाली सुगम एवं प्रभावी बनाना, प्रभावी शासन, ई-गवर्नेंस एवं नागरिकों की भागीदारी।

(ख) अटल मिशन फॉर रेजुवेनशन एंड अर्बन ट्रांसफॉर्मेशन (अमृत मिशन)–

अमृर्ता मशनक ाम ुख्यउ द्देश्यह ैघ ारोंम ेंब ुनियादीस ुविधाएँ उपलब्धक रानाज ैसेर्ा कज लअ ापूर्ति,स ीवेज,श ाहरीप रिवहनअ ादि जिससे सभी नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि हो सके।

अमृत मिशन के मूल तत्व–

I. पानी की उचित आपूर्ति, यथा जलापूर्ति प्रणालियों का निर्माण एवं रख-रखाव, पुराने जलापूर्ति प्रणालियों का पुनर्वास, पुराने जल निकायों का कायाकल्प करना आदि।

II. सीवेज सुविधा के अंतर्गत भूमिगत सीवेज प्रणाली का निर्माण एवं रख-रखाव, पुरानी सीवेज प्रणालियों एवं उपचार संयंत्रों का पुनर्वास, जल संसाधनों की पुनरावृत्ति अथवा अपशिष्ट जल का पुन: उपयोग करना।

III. सेप्टिक सुधार के अंतर्गत मल प्रबन्धन तथा नाली और सेप्टिक टेंक की जैविक और यांत्रिक सफाई करना।

IV. शहरी परिवहन–उचितफ ुटपाथोंए वंर ास्तोंक ार्ा नर्माण करना एवं गैर मोटर चलित परिवहन के लिये सुविधायें उपलब्ध कराना, विभिन्न स्थानों पर बहुस्तरीय पार्किंग का निर्माण तथा रखरखाव करना। दूरसंचार, स्वास्थ्य शिक्षा आदि भी अमृत मिशन के मूल तत्वों में से एक हैं।

(ग) राष्ट्रीय शहरी परिवहन नीति–

इस नीति का उद्देश्य अपने शहरों के भीतर नौकरी, मनोरंजन और ऐसी अन्य आवश्यकतों को बढ़ती नगरीय आबादी के लिये सुरक्षित, उचित, त्वरित, विश्वसनीयता, आरामदायक और सतत पहुँच सुनिश्चित करना है। इस उद्देश्य को निम्नलिखित तरीकों के द्वारा प्राप्त किया जाना है–

I. शहरी यातायात को परिणामी जरूरत की बजाय शहरी नियोजन स्तर पर प्रमुख मानक के रूप में समाहित करना

II. सभी शहरों में एकीकृत भूमि उपयोग और परिवहन नियोजन को बढ़ावा देना ताकि यात्रा दूरी को कम किया जा सके।

III. सार्वजनिक परिवहन और गैर मोटरीकृत सार्वजनिक परिवहनों के साधन को बढ़ावा देने के लिये इनके अधिकतम उपयोग को बढ़ावा देना।

सभी सरकारी योजनाओं और नीतियों का मूलभूत उद्देश्य यही है कि नगर में आधारभूत संरचना का निर्माण एवं संरक्षण इस तरह किया जाये कि नगरीय समाज जीवन को खुशहाल तरीके से व्यतीत कर सके। ऐसा संभव तभी हो सकता है जब पूर्ण निर्भरता, सरकारी योजनाओं पर न होकर, नागरिकों की स्वयं की भागीदारी भी हो।

आव्रजन

आव्रजन सामाजिक परिवर्तन का सूचक है। अन्य स्थानों से आकर जिस स्थान पर मनुष्य बस जाते हैं उसके संदर्भ में स्थानान्तरण को आप्रवास या आव्रजन और इसमें भाग लेने वालों को आप्रवासी कहते हैं। उत्तरी अमेरिका में यूरोप से आये हुये लोगों को यूरोपीय आप्रवासी कहा जाता है। आप्रवास या आव्रजन के दो रूप होते हैं–आंतरिक आव्रजन तथा अन्तर्राष्ट्रीय आव्रजन। संपूर्ण विश्व प्रवास और अप्रवास का अनुभव कर रहा है। आव्रजन से जहाँ कुछ सामाजिक, जनांकिकी, समस्याएँ सुलझती हैं, वहीं कुछ नवीन समस्याएँ उत्पन्न भी होती हैं। आव्रजन का इतिहास बहुतप्ा ाचीनए वंर्ा वश्वव्यापीर हाह ै ाअ ांतरिकअ ाव्रजनक ीप्ा क्रिया उपनिवेश काल से ही प्रारम्भ हुई है।

भारत ग्रामीण से अर्थ-शहरी समाज में, रूपांतरण के दौर से गुजर रहा है। 31 प्रतिशत से कुछ अधिक की आबादी अब शहरी क्षेत्रों में निवास करती है। उच्च घरेलू उत्पाद वाले राज्यों में शहरी क्षेत्रों में रहने वाली आबादी का स्तर ऊँचा है। उत्तर प्रदेश, बिहार और उड़ीसा की तुलना में गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक में उल्लेखनीय रूप से अधिक शहरीकरण है। आँकड़ों के अनुसार 1971 की जनगणना में भारत में 79.78 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण थी, जो समय के साथ घटती चली गई। इसी तरह दस वर्ष के अंतराल के पैमाने में ग्रामीण जनसंख्या 1981 में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

76.27, 1991 में 74.28, 2001 में 72.22 तथा 2011 में 68.70 प्रतिशत सिमट कर रह गयी है। इस तरह ये आँकड़े स्पष्ट: इंगित कर रहे हैं कि शहरों में ग्रामीणों का आव्रजन बढ़ता जा रहा है।

आव्रजन के कारण– जनसंख्या स्थानान्तरण के आकार, गति एवं दिशा को दो विपरीत गुणों वाली शक्तियाँ नियंत्रित करती है, जिन्हें 'आकर्षण शक्ति' और 'प्रतिकर्षण शक्ति' कहते हैं। किसी स्थान पर या प्रदेश में उपलब्ध प्राकृतिक एवं आर्थिक संसाधन तथा निवास योग्य भौगोलिक दशाएँ अन्य प्रदेशों में मनुष्यों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

जनसंख्या आव्रजन को प्रभावित करने वाले कारकों को चार वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. प्राकृतिक कारक, 2. आर्थिक कारक, 3. सामाजिक सांस्कृतिक कारक और 4. राजनीतिक कारक।

1. प्राकृतिक कारक– प्राकृतिक कारकों में जलवायु परिवर्तन, बाढ़, भूकम्प, सूखा आदि प्रमुख हैं। जलवायु और मौसमी प्रभावों के अतिरिक्त अधिक वर्षा के कारण नदियों में उत्पन्न बाढ़ों से जल विस्तृत भूमि, आवास आदि जलमग्न हो जाते हैं परिणामस्वरूप लोग अपना स्थान छोड़ने के लिए विवश हो जाते हैं। किसी क्षेत्र में मिट्टियों के अनुपजाऊ हो जाने, खनिज स्रोतों के समाप्त हो जाने, शुष्क एवं अर्द्धशुष्क भागों में जलाशयों के सूख जाने पर, जीविका के साधनों के अभाव में वहाँ से जनसंख्या का पलायन हो जाता है।

2. आर्थिक कारक– जनसंख्या के स्थानान्तरण में अन्य कारणों की तुलना में आर्थिक कारक महत्वपूर्ण होते हैं। जिन क्षेत्रों में कृषि उत्पादन के लिए उपयुक्त भौगोलिक दशाएँ पर्याप्त कृषि योग्य भूमि, सिंचाई के साधन, उपजाऊ मिट्टी, उपयुक्त जलवायु आदि विद्यमान होती है, वे जनसंख्या के आकर्षण केन्द्र बन जाते हैं और वहाँ बाहर से जनसंख्या का आव्रजन बढ़ जाता है।

नगरों की आर्थिक सुदृढ़ता, रोजगार साधनों की उपलब्धता के कारण नगरों में गाँव से लोगों का आव्रजन होता है।

3. सामाजिक-सांस्कृतिक कारक– जनसंख्या स्थानान्तरण के लिये उत्तरदायी कारकों में कुछ सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का विशेष महत्व है। शहरों में रहने वाले परिवारों से जब ग्रामीण परिवार से सम्पर्क रखने वाली कन्या का विवाह होता है तो स्वाभाविक रूप से शहरों में उनका आव्रजन होता है। किंग्सले डेविस ने भी उद्धत किया है कि भारत में विवाह के कारण स्त्रियों का शहर की ओर प्रवास की मात्रा उच्च है जबकि भारतीय जनता की गतिशीलता कम पायी जाती है। शिक्षा के केन्द्र में भी आव्रजन होता है, क्योंकि यह एक ओर मनुष्य की कार्यकुशलता और योग्यता को बढ़ाते हैं, वहीं दूसरी ओर उन प्राचीन परम्पराओं तथा रूढ़ियों से मुक्ति दिलाते हैं जो कि व्यक्ति के विकास में बाधक हैं।

बहुत से तीर्थस्थल आव्रजन का केन्द्र बनते हैं। कई बार ये आव्रजन स्थायी और कई बार अस्थायी भी होता है। हिन्दू, तीर्थ यात्री बड़ी संख्या में काशी, हरिद्वार, मथुरा, प्रयाग जैसे धार्मिक स्थलों की ओर प्रवास करते हैं।

4. राजनीतिक कारक– राजनीतिक कारणों से बलात् स्थानान्तरण भी होते हैं। युद्ध में बनाये गये बन्दियों तथा दास बनाये गये लोगों को विजेता देशों के लिये स्थानान्तरित करने के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं।

आव्रजन के प्रकार–

(अ) कालानुसार आव्रजन–

I. प्रागैतिहासिक आव्रजन–प्रागैतिहासिकअ ाव्रजनम ुख्यत: जलवायु परिवर्तन के कारण होते थे।

II. ऐतिहासिक आव्रजन–ऐतिहासिक काल में होने वाले आव्रजनों को मुख्यत: तीन श्रेणियों के अन्तर्गत रखा जा सकता है (अ) प्राचीन कालीन आव्रजन (ब) मध्यकालीन आव्रजन (स) आधुनिक आव्रजन।

यूनानी तथा रोमन साम्राज्यों के विस्तार के कारण होने वाले आव्रजन, भारत में आर्यों का आव्रजन इसके उदाहरण हैं।

(ब) अवधि के अनुसार आव्रजन–

I. दीर्घकालीन आव्रजन–ब्रिटिश काल में चाय बागानों में काम करने के लिए श्रीलंका, दक्षिण अफ्रीका आदि में भारतीय श्रमिकों का आव्रजन हुआ।

II. अल्पकालीन आव्रजन–देशाटन, तीर्थयात्रा, राजनीतिक उद्देश्यों के लिये हुआ स्थानान्तरण इसमें सम्मिलित है।

III. दैनिक आव्रजन–बड़े नगर या औद्योगिक केन्द्र में बाहर उपनगरीय क्षेत्रों से बड़ी संख्या में रोज लोगों का आव्रजन होता है।

IV. मौसमी आव्रजन–जिन स्थलों का मौसम अत्यधिक ठंडा तथा शुष्क होता है वहाँ मानव स्थानान्तरण होता है।

(स) आकार के अनुसार आव्रजन–

I. वृहत आव्रजन या वृहद संख्यक आव्रजन और

II. लघु आव्रजन या अल्पसंख्यक आव्रजन।

(द) क्षेत्र के अनुसार आव्रजन–

I. अन्तर्राष्ट्रीय आव्रजन

II. अन्तर्देशीय या आन्तरिक आव्रजन।

नगरों की ओर आने वाले आप्रवासी लोगों का विश्लेषण–

भारत के नगरों में मूलत: ग्रामीण जनसंख्या का स्थानान्तरण हो रहा है जिसका कारण जहाँ एक ओर गरीबी की समस्या, कृषि का क्षय, कुटीर उद्योगों का पतन रहा है वहीं दूसरी ओर नगरों का आकर्षण, रोजगार साधनों की उपलब्धता तथा अधिक से अधिक धन अर्जन करने की चाह है। शाही श्रम आयोग ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "प्रवास की प्रेरक शक्ति एक सिरे से आती है अर्थात् गाँवों से औद्योगिक श्रमिक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

नागरिक जीवन के आकर्षण से शहरों में नहीं जाता और न उसके प्रवास का कारण महत्त्वाकांक्षा ही होती है। शहर स्वयं उसके लिए आकर्षण की वस्तु नहीं है और अपना गाँव छोड़ने के समय उसके मन में जीवन की आवश्यकताओं की प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई भावना नहीं रहती। बहुत ही कम औद्योगिक श्रमिक नगर में रहना चाहेंगे, यदि उन्हें गाँवों में जीवन–यापन के लिए पर्याप्त अन्न और वस्त्र मिल जाए। वह नगर की ओर आकर्षित नहीं होते, अपितु अकेले जाते हैं।''

विभिन्न शोध यह लगातार बता रहे हैं कि शहरों में रह रहे अप्रवासी, अपने मूल स्थान में शिक्षा व्यवस्था की कमी, आय के साधनों की कमी और सुविधाओं के अभाव के कारण प्रवास करने के लिए विवश हुए हैं। अध्ययन यह भी बताता है कि शहरी क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधा की उपलब्धता भी आव्रजन का कारण है क्योंकि अधिकतर ग्रामों में चिकित्सालय का अभाव और यदि चिकित्सालय है तो चिकित्सकों की अनुपस्थिति गाँववासियों को गाँव छोड़ने के लिए विवश करती है।

आव्रजन के कारणों के साथ–साथ, जनगणना के आँकड़े यह स्पष्ट कर रहे हैं कि अप्रवासियों की संख्या में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। वर्ष 1991 की जनगणना में, 2.05 करोड़ मनुष्य नगरीय अप्रवासियों के रूप में वगीकृत किये गये। नगरीय अप्रवासन की सर्वाधिक संख्या महाराष्ट्र में (लगभग 35 लाख) तथा तदुपरांत दिल्ली में (लगभग 23 लाख) अंकित की गई। जबकि लक्षद्वीप में न्यूनतम केवल 3220 अप्रवासी थे। वर्ष 1991 की जनगणना का उल्लेखनीय परिदृश्य यह था कि सभी संघ शासित प्रदेशों (केवल दमन तथा दीप और लक्षद्वीप को छोड़कर) में नगरीय अप्रवासी 25 प्रतिशत से अधिक अंकित किए गए। भारत में अन्तर्राष्ट्रीय प्रवासन, अंत:राज्यीय प्रवासन की तुलना में कम है। वर्ष 1991 की जनगणना में लगभग 2.70 करोड़ अंतरराज्यीय प्रवासन दर्ज किया गया। अंतरराज्यीय प्रवासन में 32.83 प्रतिशत प्रवासन गाँव से नगर की ओर, जबकि नगर से गाँव की ओर प्रवासन मात्र 7.17 प्रतिशत था। यह तथ्य भारतीय अर्थव्यवस्था में शहरों के महत्व को दर्शाता है। अधिकांश अंतरराज्यीय प्रवासन केवल आर्थिक कारणों से ही नहीं होता। समस्त प्रवासियों में से लगभग तीन चौथाई महिलाएँ वैवाहिक कारणों से स्थानान्तरित होती है।

2011 के जनसंख्या आँकड़े बताते हैं कि दक्षिण के राज्यों, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा आंध्र प्रदेश में आव्रजन का उल्लेखनीय अंतप्रवास रहा। राज्यों के बीच असमान विकास आव्रजन का मुख्य कारण समझा जाता है। परन्तु भारत के अधिकतर बड़े महानगर अंतप्रवास का केन्द्र बन चुके हैं और शहरों में काम के बेहतर और अधिक अवसरों के कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हो रही है। उदाहरणार्थ मुम्बई, दिल्ली जैसे शहर आप्रवासियों की बड़ी तादाद में आवक से बुरी तरह प्रभावित हैं।

भारत के नगरों में आव्रजन का प्रभाव– भारत के नगरों में आव्रजन के कारण गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो गईं हैं जो देश के संपूर्ण नगरीय पर्यावरण को प्रभावित कर रहा है। अधिकांश महानगर एक चेतावनीपूर्ण दर से वृद्धि कर रहे हैं। इन महानगरों की जनसंख्या आने वाले वर्षों में दुगुनी हो जाने का अनुमान है। भारत की मलिन बस्तियों में रहने वाली जनसंख्या 15 करोड़ पार कर चुकी है।

नगर में अप्रवासी जनसंख्या की निरंतर बढ़ोतरी के फलस्वरूप, अनेक सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं, जिसका सीधा और स्पष्ट कारण जनसंख्या के अनुपात में संसाधनों की कमी है। शोषण, असुरक्षा, असमानता, नैतिक पतन जैसी समस्याओं के मध्य नगरों की संस्कृति संघर्ष की ओर बढ़ रही है। यह कटु सत्य है कि अधिकांश अप्रवासी अशिक्षित, भूमिहीन तथा कौशलहीन हैं इसलिए नगरों में पूँजी गहन उत्पादन प्रणाली के अंतर्गत रोजगार प्राप्त करना विकट कार्य है। इन अकुशल प्रवासियों का असंगठित क्षेत्रों द्वारा शोषण किया जाता है, जहाँ प्रतिस्पर्द्धा, निम्न वेतन, असुरक्षा तथा निम्न उत्पादकता जैसे लक्षण विद्यमान रहते हैं।

अप्रवासी आवास की कमी तथा मूलभूत सेवाओं से वंचित होने को विवश हैं, जिसका कारण मूलभूत नगरीय सुविधाओं पर जनसंख्या का भारी दबाव होना है।

देश में अप्रवासियों की समस्याओं से निपटना, सरकार के लिए एक बड़ी चुनौती है। इसलिए यह जरूरी है कि सरकार, नियोजनकर्ता, नीति निर्माता, स्वयंसेवी संस्थाएँ एवं प्रशासक स्थिति से निपटने के लिए, कार्य योजना बनाएँ जिससे अप्रवासियों का जीवन बेहतर हो सके।

नगर नियोजन

किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु, एक विस्तृत रूपरेखा का निर्माण नियोजन कहलाता है। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा 21वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में नगरीकरण की प्रक्रिया बड़ी प्रबल हो गई, जिससे नगरों की संख्या एवं उनके आकार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इस वृद्धि के फलस्वरूप नगरों से सम्बन्धित अनेकानेक समस्याएँ उत्पन हो गईं। नगरों के अनियंत्रित, अनियमित तथा अनियोजित स्वप्रसार से आवास, बिजली, जलापूर्ति, परिवहन, सीवर, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि आधारभूत आवश्यकताओं पर दबाव बढ़ा। इन सभी समस्याओं से मुक्ति का एकमात्र साधन है 'नगर आयोजना'। अर्थात् नगरों का विकास नियोजित ढंग से होना चाहिए और जो पुराने नगर विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त हैं, उनके उद्धार के लिए उपयुक्त योजनाएँ निर्मित की जानी चाहिए।

नगर नियोजन का अर्थ– एल.डी. स्टाम्प ने नगर नियोजन को परिभाषितक रतेह ुएक हा,' 'नगरि नयोजनक ा वचारन ागरिकोंके कल्याण और जनता के जीवन स्तर के उन्नयन से सम्बन्धित है।'' वहीं लेविस ने नगर नियोजन को नगरीय विकास का भावी कार्यक्रम माना है। उनके अनुसार, ''नगर नियोजन बिल्कुल ऐसा दूरदर्शी प्रयास है जो नगर और उसके निकटस्थ क्षेत्रों के क्रमबद्ध और आकर्षक विकास का स्वास्थ्य सेवा, सुविधा और व्यापारिक तथा औद्योगिक उन्नयन को समुचित ध्यान में रखते हुए, युक्तिसंगत आधारों पर प्रोत्साहित करता है।''

स्पष्ट है कि नगर नियोजन एक प्रशासकीय योजना है जो नगर के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वर्तमान तथा भावी विकास के लिए विस्तृत कार्यक्रमों का निर्माण करती है।

नगर नियोजन के उद्देश्य– पैट्रिक एवरक्राम्बी ने नगर नियोजन के तीन उद्देश्यों की चर्चा की है–

1. सौंदर्य– नगर का सौंदर्य एवं उसकी आकर्षकता तो महत्वपूर्ण है परन्तु साथ ही साथ यह भी जरूरी है कि समय के साथ उसमें क्षीणता न आए। नगर की सुन्दरता बनाए रखने के लिए उसमें सफाई, प्रकाश आदि की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

2. स्वास्थ्य– स्वस्थ नागरिक किसी भी देश की निधि होते हैं। इसके लिए देश का वातावरण, वायु एवं जल प्रदूषण रहित होने चाहिये। नगर चूँकि देश का अभिभाज्य हिस्सा है इसलिए यह सिद्धान्त स्वाभाविक रूप से नगरों पर भी लागू होता है। उद्योगों एवं अन्य प्रदूषणकारी गतिविधियों की स्थापना नगर के किसी विशिष्ट भाग में इस प्रकार करनी चाहिये कि वहाँ के नागरिकों पर उनका प्रभाव न्यूनतम हो।

3. सुविधा– नगर में आधारभूत सुविधायें नगरवासियों के जीवन की सहजता और सुलभता के लिए अपरिहार्य है। उदाहरणत: यदि किसी नगर के औद्योगिक श्रमिकों को निवास स्थल से कार्य स्थल तक जाने में 1–2 घंटे का समय लग जाये तो उन्हें असुविधा होती है। परन्तु यदि परिवहन की उचित व्यवस्था हो और अधिक दूरी कम समय में पूरी हो तो यकीनन यह हर दृष्टिकोण से नगरवासियों का जीवन सुलभ करेगा।

नगर नियोजन के आदर्श–

1. नगर का विकास नगर के निवासियों की सभ्यता, संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था तथा रीति-रिवाजों के अनुकूल होना चाहिए।
2 नगरभ वनोंत थाब हुमंजिलाइ मारतोंक ा िनर्माण,म ूलभूत सेवाओंअ ौरस ुविधाओंक ेध् यानम ेंर खकर ि कयाज ाना चाहिये तथा उनके अनियोजित विकास को नियंत्रित किये जाने को प्राथमिकता देनी चाहिए।
3. नगर के सुनियोजित तथा क्रमबद्ध विकास की निश्चित योजना तैयार करना महत्वपूर्ण है, जिससे भविष्य में नगर के प्रसार में किसी भी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो।
4. नगर की योजना में व्यापार, वाणिज्य तथा व्यवसायों का उचित प्रावधान होना चाहिए ताकि नगर को ठोस आर्थिक आधार प्राप्त हो सके।
5. नगर के निकट निर्माण योग्य समस्त भूमि को नगर नियोजन में सम्मिलित कर लेना चाहिये ताकि भविष्य में नगर की परिधि का विकास सहजता से हो सके।

नगर नियोजन के तत्व–

ए. ऑगिस्टन ने नगर नियोजन में निम्नलिखित चार तत्वों के समावेश पर बल दिया है–

1. व्यापार, 2. आवास, 3. उद्योग, 4. प्रशासक।

नगर को इस प्रकार से सुनियोजित रूप से निर्मित किया जाना चाहिये कि नगर में व्यापार एवं उद्योग की उन्नति हो, प्रशासन व्यवस्था सुदृढ़ हो तथा नगर निवासियों को आवास की सुविधा मिले।

एडवर्ड एम. बैसेट ने नगर नियोजन में सात तत्वों के महत्व का उल्लेख किया है। ये तत्व हैं–

1. सड़कें, 2. पार्क, 3. सार्वजनिक भवनों के लिए स्थान, 4. सार्वजनिक सुरक्षित स्थान, 5. कटिबंधीय जिले, 6. सार्वजनिक उपयोगी मार्ग तथा 7. छोटी सड़कें।

नगर नियोजन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि–

वैदिक काल में अनेक नगरों का निर्माण किया गया, जिसमें कन्नौज, अयोध्या, मथुरा, मुदैर, सांची, कांचीपुरम, पाटलिपुत्र, हस्तिनापुर, जनकपुरी आदि उल्लेखनीय है। ये नगर उस समय की नगर नियोजन कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन नगरों में अलग-अलग कार्यों के लिए अलग-अलग भू-भाग निश्चित किये गये थे और इस विभाजन की योजना वैज्ञानिक ढंग से निर्मित की गई थी। नगर यिनोजन के परिप्रेक्ष्य से अगर हम तत्कालीन अयोध्या का विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि यह नगर 6000 गज लम्बा तथा 1500 गज चौड़ा था, जिसमें चौड़ी सुंदर सड़कें थी। सड़कों के किनारों पर सुन्दर मकान थे और समस्त नगर में पेयजल की उचित व्यवस्था थी।

पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) के नगर नियोजन के सम्बन्ध में मैगस्थनीज के विचार उल्लेखनीय हैं जो उन्होंने अपनी भारत यात्रा के दौरान, पाटलिपुत्र का वर्णन करते हुए कहे थे। वे कहते हैं "यह नगर 12 मील लम्बा तथा 2 मील चौड़ा था। इसमें एक किला था, जिसमें 60 दरवाजे थे। शाही महल नगर के मध्य में स्थित था और महल के चारों और पार्क, फव्वारे, तालाब आदि महल की शोभा को बढ़ाते थे। सुरक्षा की दृष्टि से नगर के चारों ओर खाई का निर्माण किया गया था।"

देश की राजधानी जो कि पिछले दो हजार वर्षों में आक्रमणकारियों के निशाने पर रही कि स्थापना इंद्रप्रस्थ नगरी के रूप में मानी जाती है। इंद्रप्रस्थ भव्य महलों, तालाबों, सुंदर इमारतों तथा उद्यानों से सुसज्जित था। यह नगर 1240 एकड़ भूमि पर फैला हुआ था। इसमें 60,000 व्यक्तियों के रहने की व्यवस्था थी। इस नगर में चौड़ी सड़कें थीं जो एक दूसरे को समकोण पर मिलाती थी।

मध्यकाल में बसाये गए नगरों में जयपुर का विशिष्ट स्थान है जिसे 1727 ई. में महाराजा सवाई जयसिंह ने सुनियोजित ढंग से बनाया था। आयताकार प्रतिरूप वाले इस नगर का विस्तार 8 वर्ग किमी. क्षेत्र पर है। इसकी चौड़ी, साफ-सुथरी सड़कें तथा सुन्दर इमारतें नगर नियोजन का अद्भुत उदाहरण है।

19वीं शताब्दी में भारत में अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित हो जाने के परिणामस्वरूप भारतीय नगरों पर अंग्रेजी नगर नियोजन की छाप दिखाई देने लगी थी। अंग्रेजों ने अपनी प्रशासनिक व्यवस्थाओं के सुचारू संचालन के लिये मैसूर, बड़ौदा, दिल्ली, कलकत्ता आदि नगरों का नियोजन कार्य प्रारम्भ किया। इन नगरों की योजनायें सैनिक इंजीनियरों ने तैयार की थी। 1911 में देश की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली स्थानान्तरित

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हुई। अत: 1912 में दिल्ली, कटक तथा यमुना नदी के बीच पाँच मील लम्बे एवं चार मील चौड़े क्षेत्र पर नई दिल्ली का निर्माण करने के लिए नगर योजना निर्मित की गई। इसका विकास ब्रिटिश नगर नियोजक एडविन ल्यूटेन्स द्वारा बनाई गई योजना के अनुसार उपवन नगर के रूप में किया गया।

1950 के पश्चात् नियोजन काल में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में नगरीय नियोजन पर महत्वपूर्ण कार्य हुए। औद्योगिक एवं व्यापारिक विकास के लिए तथा प्रशासकीय केन्द्र के रूप में अनेक नये नगर बसाये गये। स्वतंत्र भारत में स्थापति नियोजित नगरों में औद्योगिक नगर बोकारो, राउरकेला, दुर्गापुर, भिलाई और प्रशासकीय नगर गांधी नगर, चंडीगढ़, भुवनेश्वर आदि उल्लेखनीय है।

भारत में नगर नियोजन में बाधाएँ–

- योजना निर्माण एवं उसके कार्यान्वयन के मध्य एक गहरा अंतराल होने के कारण अल्पविकसित आधार संरचना के फलस्वरूप नगरीय विस्तार मूलभूत सुविधाओं के बगैर होता है। अलग-अलग कारणों से खाली छोड़े गए भूखंडों पर मलिन बस्तियों का विस्तार होने लगता है।
- नगरीयय ेजनान गर नगमक ीस ीमाद्व ारास ीमितह ेतीह ै ।इ स सीमित योजना के परिणामस्वरूप पंचायतों के अधिकार क्षेत्र में आने वाले उपनगरों के बिना आधार संरचनात्मक समर्थन के उद्योगों की स्थापना, एक ऐसी समस्या बन कर उभरी है जिसके कारण नगरीय स्थान का अव्यवस्थित विकास होता है।
- आधारभूत संरचनाओं के मध्य समन्वयता के अभाव के चलते नगरीय विकास अवरुद्ध होता है यथा विद्युत, जलापूर्ति, गंदगी निस्तारण तथा टेलीफोन जैसी सेवाओं के मध्य समन्वय का अभाव नवस्थापित उद्योगों का विकास धीमे कर देता है।

नगर नियोजन की नगर विकास में भूमिका का विश्लेषण

भारत में नियोजित नगरीय विकास के प्रयास 60 के दशक में शुरू हुए थे, पर इस दिशा में जो भी योजनाएँ बनायी गयी उसका केन्द्र बिन्दु भूमि प्रयोग तक की सीमित था अर्थात् भौतिक पक्षों तक ही सीमित था। उनमें सामाजिक आर्थिक विकास के पक्षों की अवहेलना की गई। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि समस्या कभी योजना निर्माण के कारण उत्पन्न नहीं होती। समस्या का कारण योजनाओं की क्रियान्विति में बरती गयी ढिलाई है।

आवश्यकता है कि प्रमुख महानगरों की राजस्व प्राप्त करने की क्षमता का विस्तारण करके एवं आर्थिक महत्व को दृष्टि में रखते हुए नगरों में विशेषीकृत आधार संरचना के विकास को प्राथमिकता दी जाए। इसी उद्देश्य से 1993-94 में एक मेगासिटी योजना आरम्भ की गयी थी, जो राष्ट्रीय शहरीकरण आयोग द्वारा अनुशंसित थी। यह योजना मुम्बई, कोलकाता, बेंगलूरु, हैदराबाद एवं चेन्नई में क्रियान्वित की गयी। इस योजना की मुख्य प्राथमिकता आधारभूत संरचना का विकास थी।

1979-80 में मध्यम एवं लघु श्रेणी के नगरों के संतुलित विकास हेतु लघु एवं मध्यम नगर एकीकृत विकास योजना (आईडीएसएमटी) आरम्भ की गई थी। इस योजना का उद्देश्य नगरों की भीड़-भाड़ को कम करने के दृष्टि से मध्य व छोटे नगरों को उपनगरों के रूप में विकसित किया जाना है।

नगर एवं देश योजना संगठन, देश में नगर नियोजन से जुड़ी शीर्ष संस्था है। यह सरकार की नगरीय एवं क्षेत्रीय विकास योजनाओं के लिए तकनीकी मार्गदर्शन उपलब्ध कराती हैं। यह सार्वजनिक एवं स्थानीय निकायों को भी परामर्श प्रदान करती है।

राष्ट्रीय नगर नीति में ग्रामीण-नगरीय सातत्य के विकास का प्रमुख लक्ष्य बनाया गया है जिसके अनुसार ग्राम के क्रमिक विकास से उसकी पदोन्नति लघु नगर तथा नगर के रूप में होती है। नगरीय नीति की प्राथमिकताओं में लघु तथा मध्यम श्रेणी के नगरों में अध:संरचनात्मक सुविधाओं को विकसित करना प्रमुख लक्ष्य है। इस नीति का उद्देश्य ऐसे सुदृढ़ नगरीय ढांचे का निर्माण करना है जो ग्रामीण विकास का पूरक बन सके और देश के विकास में योगदान दे सके।

आवास

नगरीय विकास के साथ जो प्रमुख चुनौती उभर कर आयी है वह है 'आवास' की कमी। इस विषय पर चर्चा करने से पूर्व हमारे लिए यह जानना जरूरी हो जाता है कि आवास किसे कहते हैं और वह कैसा होना चाहिए?

आवास, केवल चार दीवारों और छत से निर्मित नहीं होता। आवास की अवधारणा में बुनियादी अर्थात् मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्तिक ी० यवस्थाह ेनीच ाहिए,ज ैसेप ीनेक ि लिएश ुद्धप ानी,ज ल निकासी की उचित व्यवस्था, बच्चों के लिए आवासीय क्षेत्र के निकट विद्यालय, औषधालय, सामुदायिक केन्द्र आदि।

आवास कैसा होना चाहिये–

आवास का निर्माण करते समय निम्नांकित बातों का ध्यान रखने की आवश्यकता है–

- आवास सदैव ऊँचे स्थान पर निर्मित किए जाने का प्रयास किया जाना चाहिये।
- आवास में रोशनी तथा हवा की व्यवस्था होनी चाहिए।
- परिवार में सदस्यों के अनुसार कक्षों का निर्माण होना चाहिऐ।
- रसोईघर, शौचालय एवं स्नानागार की व्यवस्था होनी चाहिऐ।

उपर्युक्त सभी विशेषताएँ आवास निर्माण की अपेक्षित आवश्यकताएँ हैं जिनमें परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन किये जा सकते हैं।

आवासों के प्रकार–

I. प्रथम श्रेणी– इस श्रेणी में पक्के आवास आते हैं, जिनकी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

दीवारें ईंट तथा पत्थर की होती हैं, जिसमें छत पक्की, खपरैल या सीमेंट चादरों की होती हैं। ऐसे आवास नगरों में पाए जाते हैं।

II. द्वितीय श्रेणी– इस श्रेणी में मिट्टी की दीवार वाले मकान आते हैं। इस प्रकार के मकानों में छत खपरैल या टीन की चादरों की होती है। इस श्रेणी के आवास नगर की मलिन बस्तियों में पाए जाते हैं।

III. तृतीय श्रेणी– इस श्रेणी के अंतर्गत घास-फूँस से बनी झोपड़ियाँ आती हैं। ऐसे आवास मूलत: गाँवों में ही पाए जाते हैं।

आवास की समस्या– यूँ तो आवास की समस्या विश्वभर में व्याप्त है, लेकिन भारत में यह स्थिति अधिक विकराल है। संयुक्त राष्ट्र संघके ए कफै सलेके अ नुसारव र्ष1 987क ेअ ावासहीनोंके ि लए आवास उपलब्ध कराने के उद्देश्य से उस वर्ष को अंतर्राष्ट्रीय वर्ष के रूप में मनाया गया था और इसके तहत हर देश में आवास नीति को नये सिरे से निर्माण करना तथा सन् 2000 तक सभी गरीबों के लिए आवास उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था।

शहरी क्षेत्रों में आवासीय सुविधायें उपलब्ध कराने की दिशा में निम्नलिखित बाधाएँ व्याप्त हैं–

1. वित्त की कमी– भारतीय नगरीय क्षेत्रों में रहने वाले अधिकाँश लोग 'मध्यमवर्गीय और निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों' से हैं, जिनके पास वित्त संसाधनों की उपलब्धता नहीं होती। ऊँची बढ़ती हुई जमीन और आवास की कीमतों की अपेक्षाकृत उनके आय के स्रोत कम होते हैं ऐसे में उनके पास एक मात्र विकल्प बचता है बैंकों तथा जीवन बीमा निगम जैसी संस्थाओं से ऋण लेकर आवास खरीदना परन्तु ऋण लेना एक सहज प्रक्रिया नहीं है। ये संस्थाएँ भी ऋण देने से पहले व्यक्ति की नियमित आय के स्रोतों की जानकारी प्राप्त करती हैं और उसमें कमी के अभाव में ऋण नहीं दिया जाता।

2. भूमि की कमी– प्रत्येक 10 लाख अतिरिक्त आवास इकाइयों हेतु 6 हजार हैक्टेयर भूमि की आवश्यकता होती है। इसी उद्देश्य से सरकार द्वारा शहरी भूमि (सीलिंग एंड रेगुलेशन) अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम के माध्यम से कुछ लोगों के हाथों में शहरी भूमि के संकेन्द्रण को रोका गया। परन्तु वास्तविकता में भू-माफिया ने इसके अनेक तोड़ निकाल लिये और आज अधिकांश नगरों में येन-केन प्रकारेण भू-माफियों ने भूमि पर कब्जे कर रखे हैं।

3. भवन निर्माण सामग्री की उच्च लागत– भवन निर्माण सामग्री कुल निर्माण लागत का 65 से 75 प्रतिशत तक वहन करती है और जब तक भवन निर्मित होता है उसकी अनुमानत: लागत से कहीं अधिक इसलिए खर्चा हो जाता है कि भवन निर्माण की प्रक्रिया के मध्य भवन निर्माण सामग्री की कीमत बहुत अधिक बढ़ जाती है।

नगरों में आवासों की वर्तमान स्थिति

आवास का तात्पर्य चार दीवारी एवं छत मात्र से नहीं है। आवास की अवधारणा में मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता भी है। विगत वर्षों में विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी स्तरों पर हो रहे प्रयासों के चलते इस स्थिति में सकारात्मक सुधार आया है। आवासीय गुणवत्ता इस तथ्य से पता चली है कि आवासीय परिसर में पीने के पानी के उपलब्धता है या नहीं, जल निकासी की व्यवस्था किस स्तर की है, या फिर आवास में विद्युत आपूर्ति है या नहीं? इन सभी दृष्टिकोणों के परिप्रेक्ष्य में अगर हम आवासों की नगरों में स्थिति का विश्लेषण करते हैं तो निम्नांकित तथ्य सामने आते हैं–

• भारत में जनगणना आवासों की स्थिति 2011

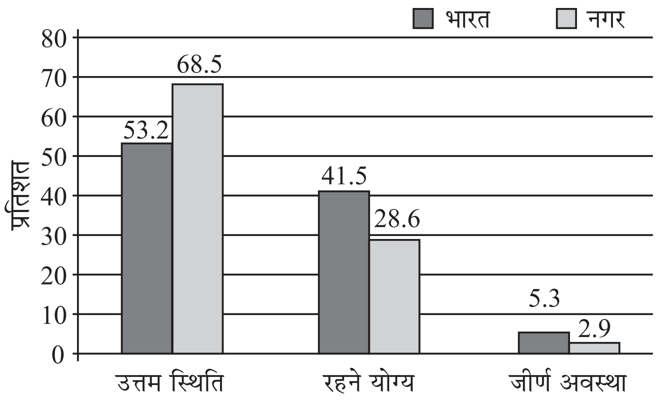

• लगभग 70% शहरी जनगणना आवास अच्छी हालत में हैं जो शहरी क्षेत्रों में जीवन स्तर में सुधार का प्रतीक है।

• आवासीय परिसर में पीने के पानी के स्रोत के आधार पर घरों का संवितरण, 2011

	नल का पानी	नलकूप (हैंडपंप)	ढका हुआ कुआं	ट्यूबवैल/ बोरहोल
कुल	43.5	33.5	1.6	8.5
शहरी	70.6	11.9	1.7	8.9

• अधिकांश शहरी घर पीने के पानी के स्रोत के रूप में नल के पानी का उपयोग कर रहे हैं।

• शौचालय सुविधा वाले घर, भारत, 2001-2011

	परिसरों के अंदर शौचालय सुविधा है		परिसरों के अंदर शौचालय सुविधा नहीं है	
	2001	2011	2001	2011
कुल	36.4	46.9	63.6	53.0
ग्रामीण	21.9	30.7	78.1	69.3
शहरी	73.7	81.4	26.3	18.6
ग्रामीण-शहरी अंतर	51.8	50.7	–51.8	–50.7

• शहरी क्षेत्रों में शौचालय सुविधा में उल्लेखनीय सुधार दर्शाया गया, क्योंकि 82% शहरी घरों में परिसरों के अन्दर शौचालय सुविधा है लेकिन अभी भी 18% घरों को परिसर के अन्दर शौचालय की सुविधा की आवश्यकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

• **शहरी भारत में पेयजल स्रोत तक पहुँच 2001-2011**

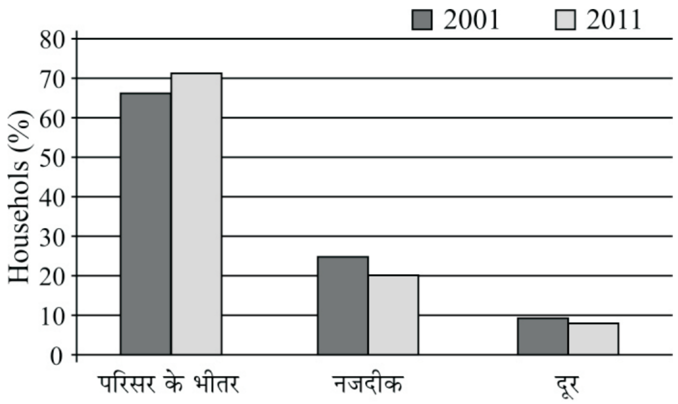

• पिछले दशक में पेयजल तक पहुँच में वृद्धि हुई है, लेकिन सुधार की गति अभी भी धीमी है।

• **प्रकाश के मुख्य स्रोत के रूप में विद्युत वाले घर, भारत 1991-2001**

भारत		विद्युत	(घर % में)
	1991	2001	2011
कुल	42.4	55.9	67.3
ग्रामीण	27.2	43.5	55.3
शहरी	64.8	87.6	92.7

• विद्युत वाले घरों के अनुपात में 1991-2011 की अवधि में वृद्धि हुई है, वर्ष 2011 में लगभग 93 प्रतिशत घर प्रकाश के स्रोत के रूप में विद्युत का उपयोग कर रहे हैं।

उपर्युक्त आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि विगत दस वर्षों में भारत के आवासों की स्थिति में सकारात्मक बदलाव आया हैं। यह विश्वास किया जा रहा है कि आने वाले समय में इस स्थिति में और बदलाव आएगा क्योंकि सरकारी स्तर पर नगरीय क्षेत्रों में निवास कर रहे लोगों के जीवन स्तर को सुधारने हेतु प्रयास किये जा रहे हैं।

आवास उपलब्धता के लिए सरकारी स्तर पर प्रयास

कुछ वर्षों पूर्व तक आवास को उपभोक्ता वस्तु समझा जाता था, लेकिन बीते दिनों में विश्व में यह विचार बना है कि आवास को मात्र उपभोक्ता वस्तु न समझा जाये क्योंकि ये समूची विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। भारत में आवास, रोजगार के अवसर पैदा करने वाला दूसरा सबसे बड़ा क्षेत्र है। भवन निर्माण में प्रतिवर्ष दस प्रतिशत से अधिक रोजगार के अवसरों की वृद्धि को दर्ज किया गया है।

यह एक सराहनीय बात है कि सरकारी स्तर पर ऐसे अनेक कदम उठाये गये हैं जो आवास निर्माण गतिविधियों को बढ़ाने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने में सहायक होंगे। इनका मुख्य उद्देश्य आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों, कम आय वाले लोगों और इस प्रकार के अन्य कमजोर लोगों जैसे गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों, ग्रामीण भूमिहीन श्रमिकों तथा कारीगरों आदि को सस्ते मकान उपलब्ध कराना है।

राष्ट्रीय आवास नीति

वर्ष 1950 के बाद भारत सरकार ने बारह पंचवर्षीय योजनाएँ बनायी जिनका उद्देश्य आवास और शहरी विकास है, इसी के परिणामस्वरूप नेहरू रोजगार योजना के शहरी निर्धनता-उन्मूलन कार्यक्रम की शुरुआत हुई। इस योजनाओं में संस्था निर्माण तथा सरकारी कर्मचारियों एवं कमजोर वर्गों के लिये मकानों के निर्माण पर जोर दिया गया। 'ग्लोबल शेल्टर स्टेट (जीएसएस) की अनुवर्ती कार्रवाई के रूप में 1998 में राष्ट्रीय आवास नीति की घोषणा की गई जिसका दीर्घकालिक उद्देश्य आवासों की कमी की समस्याओं को दूर करना, अपर्याप्त आवास व्यवस्था की आवासीय स्थितियों को सुधारना तथा सबके लिए बुनियादी सेवाओं एवं सुविधाओं का एक न्यूनतम स्तर मुहैया कराना था।

केन्द्र सरकार के स्तर पर राष्ट्रीय आवास नीति को लागू करने की दिशा में कई उपाय किए गए हैं।

प्रधानमंत्री आवास योजना सबके लिए आवास (शहरी)-

इस मिशन का आरम्भ सन् 2015 में हुआ। 2015-2022 के मध्य इस मिशन को कार्यान्वित किया जाएगा और निम्नलिखित कार्यों के लिये शहरी स्थानीय निकायों तथा अन्य कार्यान्वयन ऐजेंसियों को राज्यों/संघ शासित प्रदेशों के जरिये केन्द्रीय सहायता उपलब्ध करायी जाएगी-

- निजी भागीदारी के जरिये संसाधन के रूप में, भूमि का उपयोग करके मौजूदा झुग्गीवासियों का यथास्थान पुनर्वास।
- ऋण सम्बद्ध सहायता।
- भागीदारी में किफायती आवास।
- लाभार्थी के नेतृत्व वाले आवास के निर्माण/विस्तार के लिए सहायता।

आवास निर्माण की सहायक संस्थाएँ-

देश में आवास समस्या को देखते हुए आवासों के निर्माण की अत्यन्त आवश्यकता है। इसलिए निजी, सार्वजनिक क्षेत्र की अनेक संस्थाएँ आवासों के निर्माण में संलग्न हैं।

I. आवास निर्माण में निजी क्षेत्र की भूमिका- नगरीय क्षेत्र में आवास निर्माण में ठेकेदारों का प्राय: सहयोग लिया जाता है। आवासों की माँग बढ़ने के कारण निजी बिल्डर्स का व्यवसाय भी निरंतर बढ़ता जा रहा है किन्तु इस क्षेत्र में केवल उच्च आय समूह तथा उच्च मध्यम आय समूह के लोगों की ही आवास आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

II. आवास निर्माण में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका- आवास निर्माण के कार्य में केन्द्र सरकार, सार्वजनिक वित्तीय संस्थाएँ तथा विकास प्राधिकरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वर्ष 1957 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अंतर्गत एक ग्रामीण आवास योजना शुरू की गई, जिसमें व्यक्तियों तथा सहकारी समितियों को प्रति आवास अधिकतम 5000 रुपये उपलब्ध कराये गये। इस योजना के अंतर्गत 1980 तक 67000अ ावासब ने ा यूनतमअ ावश्यकताक ार्यक्रमअ ौरब ासिस ्त्री

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कार्यक्रम में ग्रामीण आवास स्थल एवं आवास निर्माण योजना को उच्च प्राथमिकता दी गयी।

महत्वपूर्ण बिन्दु

हमने इस अध्याय में नगरीय समाज के परिवर्तनों को तो जाना ही, साथ ही हमने इस बात की भी चर्चा की कि नगरीय विकास के क्या मुद्दे एवं चुनौतियाँ हैं? नगरों की आधारभूत संरचना, आवास, नियोजन एवं आव्रजन के बारे में भी हमने जाना। नगरीय समाज से जुड़े हुए लगभग सभी पक्षों को हमने इस अध्याय के माध्यम से जानने का प्रयास किया। एक बार पुन: इसके महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर हम दृष्टि डालेंगे–

- समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में नगरीय का अर्थ नगर में रहने वाले समुदाय से है।
- नगरीय समाज, तीव्र वैज्ञानिक, राजनैतिक, प्रौद्योगिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक या आर्थिक विकास से प्रभावित हो रहा है।
- सुनियोजित बस्तियाँ तथा सार्वजनिक स्थलों तक पहुँच, जल प्रबंधन, ऊर्जा एवं कचरे का प्रबंधन, प्राकृतिक व सांस्कृतिक संसाधनों का संरक्षण नगरीय विकास के प्रमुख मुद्दे हैं।
- आवास, गरीबी, प्रदूषण, भौतिक तथा वित्तीय समस्याएँ नगरीय समाज के लिए एक बड़ी चुनौती है।
- आधारभूत संरचना से तात्पर्य परिवहन, इमारतें, सार्वजनिक सुविधाएँ, जो कि किसी नगर में रहने वाले निवासियों का जीवन सहज एवं सरल बनाते हैं।
- आव्रजन सामाजिक परिवर्तन का सूचक है। अन्य स्थानों से आकर जिस स्थान पर मनुष्य बस जाते हैं, उसके सन्दर्भ में स्थानान्तरण को आप्रवास या आव्रजन और इसमें भाग लेने वालों को आप्रवासी कहते हैं।
- नगर नियोजन एक प्रशासकीय योजना है जो नगर के वर्तमान तथा भावी विकास के लिए विस्तृत कार्यक्रमों का निर्माण करती है।
- आवास से तात्पर्य केवल चार दीवारों और छत का निर्माण नहीं है अपितुइ सअ वधारणाम ेंब ुनियादीअ ावश्यकताओंक ीप ूर्तिक ी व्यवस्था होना चाहिए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. नगरीय का अर्थ कहाँ रहने वाले समुदाय से है?
   (अ) कस्बा (ब) नगर
   (स) गाँव (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
2. कितने प्रतिशत भारतीय परिवार 10 वर्गमीटर से कम जगह में रहते हैं?
   (अ) लगभग 32 प्रतिशत
   (ब) लगभग 28प्रतिशत
   (स) लगभग 19 प्रतिशत
   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. किस लेखक ने शहरों की व्यथा पर 'ए टेल ऑफ टू सिटीज' पुस्तक लिखी?
   (अ) चार्ल्स डिकेंस (ब) पैट्रिक एबरक्रामी
   (स) एल.डी. स्टाम्प (द) लेविस
4. ''नगर नियोजन का विचार नागरिकों के कल्याण और जनता के जीवन-स्तर के उन्नयन से सम्बन्धित है।'' यह वक्तव्य किस विद्वान का है?
   (अ) एल.डी. स्टाम्प (ब) ए. ऑगिस्टन
   (स) जॉन हॉब्स (द) चार्ल्स डिकेंस
5. एडवर्ड एम. बैसेट ने नगर नियोजन में कितने तत्त्वों के महत्त्व का उल्लेख किया है?
   (अ) पाँच (ब) दो
   (स) सात (द) छ:
6. 2011 की जनसंख्या के आँकड़ों के अनुसार, कितने प्रतिशत घर प्रकाश के स्रोत के रूप में विद्युत का उपयोग कर रहे हैं?
   (अ) लगभग 90 प्रतिशत
   (ब) लगभग 92 प्रतिशत
   (स) लगभग 93 प्रतिशत
   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. नगरीय समाज के कैसे मूल्य हैं?
2. स्वार्थजनित सामाजिक सम्बन्ध किस समाज की विशेषता या लक्षण है?
3. सुनियोजित बस्तियों का अभाव कहाँ पाया जा रहा है?
4. सामान्य आर्थिक विचारधारा के कारण सम्पूर्ण विश्व, देशों के संघ की जगह किस का संघ बन गया है?
5. देश में कितने प्रतिशत नगरीय जनसंख्या के लिए अपने घरों के आसपास बरसाती पानी के निकासी की व्यवस्था नहीं है?
6. वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार कितने प्रतिशत शहरी जनसंख्या की पेयजल की आपूर्ति उसके परिसर में है?
7. केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड रिपोर्ट 2009 के अनुसार अधिकांश नगरों में निस्तारण से पहले उत्पादित सीवेज के कितने प्रतिशत का उपचार होता है?
8. आव्रजन में भाग लेने वालों को क्या कहते हैं?
9. वर्ष 1991 की जनगणना में कितने मनुष्य नगरीय अप्रवासियों के रूप में वर्गीकृत किए गए?
10. नगर नियोजन के सम्बन्ध में मैगस्थनीज ने भारत के किस नगर का उदाहरण प्रस्तुत किया?
11. 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में कितने प्रतिशत आवास अच्छी स्थिति में है?
12. वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत के कितने प्रतिशत घरों

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

के परिसर के अन्दर शौचालयों की आवश्यकता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. क्वीन और कारपेंटर ने नगरीयता के सम्बन्ध में क्या कहा, लिखें।
2. नगरीय समाज के तीन प्रमुख परिवर्तनों के नाम लिखें।
3. जल प्रबंधन से क्या तात्पर्य है?
4. जॉन हॉब्स ने 'सामाजिक समानता' के सम्बन्ध में क्या कहा, लिखें।
5. आधारभूत संरचना से क्या तात्पर्य है?
6. 'स्मार्ट सिटीज कार्यक्रम' के बारे में संक्षिप्त में लिखें।
7. आकार एवं क्षेत्र के अनुसार आव्रजन के प्रकार लिखें।
8. लेविस द्वारा नगर नियोजन की दी गई परिभाषा लिखें।
9. एडवर्ड एम. बैसंट ने नगर नियोजन के जिन तत्त्वों का उल्लेख किया है, लिखें।
10. आवास निर्माण के समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
11. आवासों के प्रकार लिखें।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. नगरीय समाज के परिवर्तनों के बारे में लिखें।
2. नगरीय समाज में विकास के मुद्दों की चर्चा कीजिए।
3. नगरीय समाज की क्या चुनौतियाँ हैं, लिखें।
4. नगरीय आधारभूत ढाँचे की स्थिति के बारे में लिखें।
5. आव्रजन को परिभाषित करते हुए, उसके कारणों का विश्लेषण करें।
6. नगर नियोजन के उद्देश्यों एवं आदर्शों की चर्चा करें।
7. आवास उपलब्धता के लिए सरकारी स्तर किये जाने वाले प्रयासों के सम्बन्ध में लिखें।

उत्तरमाला

1. (ब) 2. (स) 3. (अ) 4. (अ) 5. (स) 6. (स)।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 8

महिला एवं बाल श्रम के विविध आयाम, राजस्थान में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक चेतना

राजस्थान में बालिका शिक्षा, बाल श्रम की समस्या एवं निराकरण

महिला और बालक-बालिकाएँ किसी भी देश और समाज के सबसे महत्वपूर्ण परन्तु संवेदनशील वर्ग है। उनकी उन्नति से ही वैश्विक स्तर पर किसी देश को विकसित या विकासशील की संज्ञा प्राप्त होती है। भारत बीते दशकों में महिला एवं बाल विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है इसलिए हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिला एवं बच्चों की स्थिति एवं उनसे संबंधित विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं को जाने-समझे।

विद्यार्थियों की सहजता, सरलता एवं विषय के मध्य तारतम्यता बनाये रखने के लिए महिलाओं से सम्बन्धित मुद्दों को क्रमवार लिया जाएगा। यथा, महिलाओं की प्रस्थिति, राजस्थान में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक चेतना तथा राजस्थान में बालिका शिक्षा। उसके पश्चात् बाल श्रम के विविध आयाम, बाल श्रम की समस्या एवं निराकरण के सम्बन्ध में चर्चा की जाएगी।

विषय की बोधगम्यता को बनाए रखने के लिए निम्नांकित बिन्दुओं पर क्रमवार जानकारी दी जाएगी-

- महिलाओं की प्रस्थिति के सम्बन्ध में विवरणात्मक व्याख्या।
- राजस्थान में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक चेतना
- राजस्थान में बालिका शिक्षा
- बालश्रम के विविध आयाम
- बालश्रम की समस्या एवं निराकरण

प्रस्तुत अध्याय में आप जान पाएँगे कि भारत में महिलाओं एवं बच्चों की स्थिति क्या है? बच्चों के संदर्भ में हमारे अध्ययन का पूर्ण केन्द्रबिन्दु बालश्रम की समस्या है।

- हमें महिलाओं की प्रस्थिति को जानने के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना होगा उसके पश्चात् ही वर्तमान प्रस्थिति का विश्लेषण करना उचित एवं सारगर्भित होगा।
- हम भारत में महिलाओं की प्रस्थिति को जानने के पश्चात् राजस्थान में महिलाओं की स्थिति की चर्चा करेंगे एवं विभिन्न संवैधानिक एवं वैधानिक संरक्षण के फलस्वरूप, उनकी अपने अधिकारों के प्रति चेतना की बात करेंगे।
- शिक्षा जनजागरण का प्रथम शस्त्र है, यह जानते हुए राजस्थान में बालिका शिक्षा की बात की जाएगी।
- बाल श्रम के विविध आयाम की चर्चा करते हुए बाल श्रम की समस्या एवं निराकरण के सम्बन्ध में चर्चा की जाएगी।

भारत में महिलाओं की प्रस्थिति

भारतीय स्त्री की प्रस्थिति का विश्लेषण करने के लिए हमें सभी कालखंडों में उसके अपूर्व वैभव, समाज की संरचना एवं विन्यास को जानना होगा। जिस तरह से समाज में परिवर्तन हुआ, उसी तरह स्त्री के प्रति दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया है। भारतीय संस्कृति के उन्मेषकाल में नारी की मानप्रतिष्ठा को पुरुषों के समानांतर ही स्वीकार किया गया था। उन्हें सम्पत्ति, ज्ञान एवं शक्ति की स्वामिनी माना गया था। भारत के दीर्घकालीन इतिहास के पन्नों को यदि पलट कर देखा जाये तो सर्वप्रथम 'वैदिक काल' का पृष्ठ दृष्टिगोचर होता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण- वैदिककालीन संस्कृति स्त्रियों की उत्कृष्ट स्थिति की ओर संकेत करती है। वेदयुगीन स्त्रियाँ न केवल वैदिक वाङ्मय का अध्ययन करती थीं, अपितु साथ ही साथ यज्ञों में भाग लेकर मंत्रोच्चारण भी करती थीं। वैदिक युग में बाल विवाह पर्दा प्रथा जैसी कुरीतियों से नारी का जीवन दूर था। सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार ही नहीं बल्कि जीवनसाथी के चुनाव एवं उससे विच्छेद के सम्बन्ध में भी इस कालखंड की स्त्रियों को स्वतंत्रता प्राप्त थी।

ऋग्वेद के मतानुसार 'नारी ही घर है।' अथर्ववेद में कहा गया कि ''नववधु, तू जिस घर में जा रही है वहाँ की तू साम्राज्ञी है। तेरे ससुर, सास, देवर व अन्य तुझे साम्राज्ञी समझते हुए तेरे शासन में आनन्दित हैं।''

धार्मिक संस्कारों का निर्वाह पत्नी के बिना अपूर्ण माना जाता था। जैमिनी की 'पूर्व मीमांसा' में वर्णित है कि उच्चतम धार्मिक संस्कारों में स्त्री-पुरुष की भागीदारी बराबर की होती थी।

उत्तर वैदिक काल जो सामान्यत: ईसा से 600 वर्ष पूर्व से लेकर ईसास`3 00व षॅब ादत कम ानाज ाताह ै,म हिलाओंक ासे ामाजिक प्रस्थिति हर दृष्टि से सम्मानीय थी। भारतीय महिलाओं की स्थिति

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

महाकाव्य युगीन समाज में भी सम्माननीय थी। महाभारत कालीन परिवार पितृसत्तात्मक था, परन्तु 'वीरप्रसु' एवं 'जननी' होने के कारण माता का स्थान आदरणीय माना जाता था। भारतीय महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन का प्रथम चिन्ह धर्मशास्त्र काल में देखने को मिलता है। धर्मशास्त्र काल का प्रारम्भ तीसरी शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध का माना जाता है। इस काल में महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आया। 'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षानि योवेन। रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंत्रयर्हयि' अर्थात स्त्री जीवन के किसी भी पड़ाव पर स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है। बाल्यपन में वह पिता के अधिकार में, युवावस्था में पति के वश में तथा वृद्धावस्था पुत्र के नियंत्रण में रहे। मनुस्मृति में यह भी उल्लेखित किया गया है कि विवाह का विधान ही महिलाओं का उपनयन है, पति की सेवा ही गुरुकाल का वास है और घर का काम ही अग्नि की सेवा है।

स्त्रियों की इस काल की प्रस्थिति के संदर्भ में इ. डब्ल्यू हाफकिंस ने अपनी पुस्तक, 'रिलिजन ऑफ इंडिया' में लिखा है कि 'एक स्त्री का पति सर्वरूप से निर्गुण होते हुए भी पूज्य देवता के रूप में मान्य है वही एक मात्र केन्द्र है, जिसके चिन्तन में एक स्त्री अपने को नियोजित करती है, वही उसके जीवन का ताना-बाना है, सर्वरूप है।' पौराणिक काल के पश्चात् बौद्धकाल का वह समय भी भारतीय इतिहास में अंकित है, जिसे स्त्रियों की प्रस्थिति के संदर्भ में विवेचित करना आवश्यक हो जाता है। इस काल में स्त्रियों को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त था। वे सामाजिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेती थी, धार्मिक क्षेत्र में स्त्रियों को स्पष्ट रूप से उत्कृष्ट स्थान प्राप्त हुआ। उनका अपना संघ बना, जिसे भिक्षुणी संघ कहा गया। इस संघ के भी वही नियम निर्देश थे जो 'भिक्षुओं' के थे। बौद्ध काल का समय अपना स्थायित्व कायम नहीं रख पाया।

धर्मशास्त्र काल से स्त्रियों की स्थिति में जो गिरावट आयी वह मध्यकाल में और विकट हो गयी। मध्यकाल जिसे 16वीं शताब्दी से लेकर 18वीं शताब्दी के मध्य का माना जाता है, स्त्रियों के सर्वस्व अधिकरों के हनन का काल था। सबसे दुखद पहलू यह रहा है कि स्त्रियों से शिक्षा-दीक्षा के अधिकार (उपनयन) पूर्ण रूप से छीन लिये गये। उनके लिए जीवन का एक मात्र उद्देश्य सुनिश्चित कर दिया गया 'सेवा-कार्य'। इस काल में रक्त की पवित्रता की संकीर्ण धारणा ने इतना जोर पकड़ा कि अल्प आयु (4 से 6वर्ष) में ही विवाह होने लगे। यह स्त्रियों की सामाजिक प्रस्थिति पर सबसे गहरी चोट थी। जिस देश में स्त्रियाँ शक्ति, लज्जा एवं संस्कृति की प्रतीक बनी थी, उन्हीं का समूचा अस्तित्व खतरे में आ गया।

महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि स्त्रियों की उच्च प्रस्थिति के अवसान के इस काल में, रामानुजाचार्य ने प्रथम भक्ति आंदोलन का शंखनाद किया, जिसने भारत की स्त्रियों के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन में उत्थान का सूत्रपात किया। नानक, मीरा, चैतन्य, तुलसी, रामदास तथा तुकाराम जैसे संतों ने स्त्रियों के लिए धार्मिक पूजा, अर्चना का सबल पक्ष प्रस्तुत किया। इस आंदोलन ने स्त्रियों की धार्मिक स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त किया। संतों ने स्त्रियों को धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन व स्वयं को शिक्षित बनाने के लिए प्रेरित किया।

ब्रिटिश काल में महिलाओं की प्रस्थिति

सामान्यत: यह विश्वास किया जाता है कि ब्रिटिश काल में स्त्रियों की प्रस्थिति के सुधारात्मक प्रयासों में ब्रिटिश शासन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है, परन्तु इस काल में भारतीयों द्वारा समय-समय पर समाज सुधार के जो प्रयास किए गए उसमें अंग्रेजी सरकार के द्वारा इन प्रयासों को विशेष एवं व्यावहारिक सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। इस समय तक भारतीय स्त्रियों पर समस्त प्रकार की निर्योग्यताएँ लाद दी गई थीं। आर्थिक निर्योग्यताओं के सम्बन्ध में के. एम. पाणिक्कर ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू सोसायटी एट क्रॉस रोड्स' में लिखा है ".....पत्नी पति के परिवार का एक अंग हो गई और विधवाओं को मृत तुल्य मान लिया गया।" इन सभी निर्योग्यताओं के विरुद्ध अंतत: देश के समाज सुधारकों ने प्रयास किए। 1828में सर्वप्रथम राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना करके सती प्रथा के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने कहा कि सती के संस्कार का शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं है। देशी रियासतों में राजाओं के सहयोग से सती प्रथा को लगभग बंद कर दिया गया, परन्तु एक लंबे समय तक इसको वैधानिक स्तर पर अवैध कृत्य घोषित नहीं किया गया, आखिर कर 1829 में कानून ने इस प्रथा को अवैध करार दिया गया।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए आंदोलन चलाया और स्त्रियों की शिक्षा के लिए भी वकालत की। विधवा पुर्नविवाह तथा स्त्रियों की शिक्षा के लिए महर्षि कर्वे ने प्रयास किया। उन्होंने 1916 में एस.एन.डी.टी. विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र में स्थापित किया। बड़ौदा साम्राज्य के शासक, सायाजी राव गायकवाड ने भी बाल विवाह व बहुपत्नी विवाह रोकने, स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार दिलाने के लिए हर संभव प्रयास किए।

स्त्री को शारीरिक, मानसिक तथा सर्वांगीण क्षति पहुँचाने का माध्यम 'बाल विवाह' जैसी कुप्रथा रही है। इस कुप्रथा को रोकने के लिए 1929 में बाल विवाह नियन्त्रण अधिनियम (शारदा एक्ट) पारित हुआ। इस कानून के अनुसार कन्या के लिए विवाह की न्यूनतम आयु 14 वर्ष तथा लड़के के 18वर्ष निर्धारित की गई। साहित्यकार एवं स्वतंत्रता सेनानी, सरोजनी नायडू के शब्दों में, "सभी भारतीय और विशेषकर भारतीय नारियां हरिविलास शारदा के प्रति सदैव कृतज्ञ रहेंगी क्योंकि उन्होंने बड़े साहस और परिश्रम से प्रगतिशील समाजसुधार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए हैं।"

उन्नीसवी सदी के समाजसुधारकों के प्रयासों ने भारतीय इतिहास में महिलाओं की प्रस्थिति को उच्च करने के लिए जो प्रयास किए, उसी की परिणति विभिन्न वैधानिक व्यवस्थाएँ थी, जिन्होंने उत्तरोत्तर भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति को परिवर्तित करने में महत्ती भूमिका निभायी-

1. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (संशोधन विधेयक) 1929

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. हिन्दू महिलाओं के सम्पत्ति के अधिकार का अधिनियम, 1937
3. हिन्दू विवाह अयोग्यता निवारण अधिनियम, 1946
4. विशेष विवाह अधिनियम, 1954
5. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955
6. दहेज प्रतिबंध अधिनियम, 1961 तथा मातृत्व लाभ अधिनियम
7. समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976

भारतीय स्त्रियों की समानान्तर प्रस्थिति के लिए किए गए प्रयासों को तीन भागों में विभक्त किया गया है–

1. महात्मा गांधी द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन के अन्तर्गत प्रयत्न
2. स्त्री संगठनों द्वारा सुधार कार्य।
3. संवैधानिक व्यवस्थाएँ

महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्रियों की स्थिति संबंधी सुधार कार्यों को भी सम्मिलित किया। राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् वे ब्रिटिश सरकार को स्त्रियों की स्थिति से संबंधित सुधार के प्रस्ताव प्रतिवर्ष भेजते रहे। महात्मा गांधी ने स्त्रियों को राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया।

भारतीय स्त्रियों की सामाजिक प्रस्थिति में बदलाव के लिए स्त्री संगठनों द्वारा भी अथक प्रयास किए गए। बंग महिला समाज व महिला थियोसोफिकल सोसायटी यद्यपि स्त्रियों के लिए आधुनिक आदर्शों को स्थापित करने की चेष्टा कर रही थी तथापि उनका कार्यक्षेत्र स्थानीय स्तर तक ही था। राष्ट्रीय स्तर पर भारत महिला परिषद (जो कि 1904 में स्त्रियों की मुक्ति के संघर्ष हेतु प्रारम्भ हुआ), 1910 में स्थापित 'भारत स्त्री महामण्डल', 1917 में एनीबेसेन्ट द्वारा संचालित महिला भारतीय संघ, 1925 में लेडी एबरडन तथा लेडी टाटा द्वारा आरम्भ किया गया 'भारतीय महिला राष्ट्रीय परिषद' तथा 1927 में मार्गरेट कसिन्स तथा अन्य द्वारा 1929 में स्थापित 'ऑल इंडिया वूमेन्स कॉन्फरेन्स'। इन सभी संगठनों का उद्देश्य पर्दा एवं बाल विवाह जैसी बुराइयों का उन्मूलन,हिन्दू अधिनियमों में सुधार, अधिकारों व अवसरों की समानता जैसे मुद्दों को उठाया।

स्वातंत्रयोत्तर काल में स्त्रियाँ

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन आया। यद्यपि आधुनिक काल में सामाजिक परिवर्तन की नवीन शक्तियों ने स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को प्रभावित किया तथापि यह कहना अनुचित होगा कि उनकी स्थिति में सकारात्मक रूप से आमूल-चूल परिवर्तन आ गया। स्वाधीनता के पश्चात् भारतीय संविधान में महिलाओं को समतुल्य स्थान प्रदान करने हेतु विशेष प्रावधान किये गये। महिलाओं की स्थिति बीते दशकों में बहुत बदली है। यह बदलाव विशेषकर कुछ ऐसे क्षेत्रों में भी हुआ है, जहाँ पुरुषों का वर्चस्व था और अपने प्रयासों से महिलाओं ने इन लक्ष्मण रेखाओं को भी तोड़ा है जो वर्षों से उनके लिए खींची गयी थी।

स्वतंत्रता से लेकर वर्तमान समय तक भारतीय महिलाओं की प्रस्थितिक ाअ ंकलनक रनेके ि लएउ नकास ामाजिक,अ ार्थिकए वं राजनैतिक क्षेत्र में वास्तविक हस्तक्षेप को जानना होगा।

पिछले दशकों में भारत में महिलाओं की प्रस्थिति का विश्लेषण समाज वैज्ञानिकों को अचंभित कर देता है। इसका कारण है एक ओर महिलाएँ घर से काम के लिए बाहर निकली हैं, अपने अधिकारों और कानूनी संरक्षण के प्रति जागृत दिखाई दे रही हैं, विभिन्न मंचों से समय-समय पर अपने विचारों को प्रकट कर रही हैं, वहीं वे समाज की दोहरी सोच के कारण पीड़ा में हैं। पिछले दो दशकों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से उन पर यह दबाव लगातार बना हुआ है कि वे घर और परिवार की आर्थिक सुदृढ़ता के लिए आर्थिक सहयोग दें, धन अर्जित करें, स्वयं को किसी न किसी ऐसे कार्य में संलग्न करें जिससे अर्थ सर्जन हो, वहीं दूसरी ओर उनसे यह अपेक्षा पूर्वोत्तर कायम है कि घरेलू दायित्वों का भी वह निर्वहन करें। यह सोच अमूमन युवा वर्ग से लेकर प्रौढ़ावस्था के लोगों तक की है। चिल्ड्रेन्स मूवमेंट फॉर सिविक अवेयरनेस (सी.एम.सी.ए.) का शोध यह बताता है कि देश के ज्यादातर युवा मानते हैं (57 प्रतिशत) कि महिलाओं को मुख्य रूप से परिवार और बच्चों की देखभाल करनी चाहिए। परन्तु यह सोच इस तथ्य को पुरजोर तरीके से स्वीकार करती है कि परिवार की आर्थिक सुदृढ़ता के लिए महिलाओं को घर से बाहर निकलकर काम करना चाहिए। इस दोहरी सोच के चलते देश की महिलाएँ अवसाद का शिकार हो रही है।

किसी भी समाज में स्त्री की प्रस्थिति को मापने का सबसे सहज तरीका है 'उसके निर्णय लेने की क्षमता'। यह क्षमता तभी उत्पन्न हो सकती है जब स्त्री आत्मनिर्भर हो, परन्तु यह 'आत्मनिर्भरता' स्त्रियों की सबसे बड़ी चुनौती बन कर उभरी है। आम राय यही है कि बीते दशकों में महिलाएँ आत्मनिर्भर हुई हैं, परन्तु विभिन्न शोध इस तथ्य को नकार रहे हैं। विश्व बैंक के एक अध्ययन में श्रम शक्ति में महिलाओं की भागीदारी में तीव्र कमी दर्ज की गयी है। वर्ष 2004-05 से 2010-11 के बीच इसमें 12 से 14 प्रतिशत तक की गिरावट दर्ज की गई क्योंकि कृषि से इतर और अपने आवास के आसपास उनके लिए रोजगार के सुरक्षित अवसर नहीं थे। कोई भी इस गिरावट की स्पष्ट वजह नहीं बता पाया पर यह तय है कि भारत में महिलाओं के प्रति कार्यस्थलों में संवेदनशीलता का अभाव है। स्त्री की आत्मनिर्भरता सिर्फ अपने परिवार को आर्थिक सुदृढ़ीकरण देने की पहल मात्र नहीं थी,अपितु यह उसके आत्मविश्वास को बनाए रखने के लिए बेहद अहम बिन्दु है, परन्तु पितृसत्तात्मक भारतीय समाज का एक वर्ग ऐसा भी है जो इस स्वतंत्रता का न केवल पुरजोर विरोधी है, बल्कि अपने झूठे दंभ को बनाए रखने के लिए वह उसे किसी भी सीमा तक हानि पहुँचाने से गुरेज नहीं करता। वह इससे भली-भांति परिचित है कि स्त्री अपने विरुद्ध हो रहे दैहिक, मासिक या मौखिक अत्याचार का सहजता से विरोध नहीं करेगी, क्योंकि भारतीय समाज में तथाकथित प्रतिष्ठा का मोल जीवन से भी कहीं अधिक है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भारतीय समाज में स्त्री जीवन की किसी भी समस्या को आम वर्ग से लेकर खास तक संवेदनशीलता से नहीं लिया जाता है। ऑफिस में महिलाओं की सुरक्षा पर सिर्फ तीन प्रतिशत संस्था ही ध्यान देती है। चौंकाने वाली बात यह है कि मुम्बई में कार्यस्थल पर ही यौन उत्पीड़न को लेकर बने कानून के बारे में ज्यादातर कामकाजी महिलाओं को जानकारी ही नहीं। 'कॉम्पलाई करो' नामक निजी संस्थान द्वारा किए गए शोध में पता चला कि8 6प्रतिशतस ्थानोंक ेके न्द्रस रकारके म हिलाउ त्पीड़न (रोकथाम निषेध व निवारण) अधिनियम 2013 के बारे में पता ही नहीं है।

भारतीय महिलाओं का देश की राजनीति में हस्तक्षेप, उनकी वास्तविक प्रस्थिति को बताता है। भारतीय राजनीति की बात करें तो स्वतंत्रता के बाद जब 1951 में पहली लोकसभा बैठी तो उसमें सिर्फ 22 महिला सदस्य थी और 2014 के लोकसभा चुनाव में 66महिलाएँ चुनकर लोकसभा पहुँची। इंटर पार्लियामेंटरी यूनियन (आई.पी.यू.) की रिपोर्ट तो यही बताती है कि भारत की संसद या विधानसभा में महिला जनप्रतिनिधियों की काफी कम उपस्थिति महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण राजनीतिक मानसिकता का प्रतीक है।

यह सत्य है कि महिलाओं को उनके अधिकार तो मिल गए हैं, लेकिन उसके प्रयोग की स्वतंत्रता नहीं मिली है। यहाँ तक कि विभिन्न शोध यह भी बताते हैं कि भारत में राजनीति में आने के महिलाओं के अधिकार से उन्हें रोका जाता है। उन्हें शारीरिक हिंसा और हिंसा की धमकी देकर रोके जाने के प्रयास किए जाते हैं।

स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक महिलाओं की स्थिति को सुधारने हेतु अनेक संवैधानिक उपायों एवं योजनाओं को क्रियान्वित किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा महिलाओं हेतु 27 लाभार्थी उन्मुख योजनाओं की संकल्पना शुरू हुई। वहीं आठवीं योजना (1992-97) में लैंगिक परिदृश्य और सामान्य विकासात्मक क्षेत्रों के द्वारा महिलाओं के लिए निधियों के निश्चित प्रवाह को सुनिश्चित करने पर बल दिया गया। नौवीं पंचवर्षीय योजना में 'महिला घटक योजना' को एक प्रमुख कार्य नीति के रूप में अंगीकार किया गया तथा दसवीं पंचवर्षीय योजना में, लैंगिक भेद को समाप्त करने एवं लैंगिक प्रतिबद्धताओं को बजट प्रतिबद्धताओं में परिवर्तित करने के लिए 'जेंडर बजटिंग' के प्रति प्रतिबद्धता को बल दिया गया। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दृष्टिकोण पत्र में लैंगिक विभाजन की रेखा को समाप्त करने की कटिबद्धता दृष्टिगोचर होती है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य भी लैंगिक भेदभाव को समाप्त करना है।

भारतीय महिलाएँ वैदिक संस्कृति से लेकर आज तक विभिन्न पड़ावों से गुजरती हुई अपनी अनंत यात्रा को यथावत बनाए रखे हुए हैं। इस यात्रा के मध्य बहुत कुछ बदला, परन्तु यदि कुछ नहीं बदला तो वह महिलाओं की सहिष्णुता, संघर्षशीलता एवं जीवटता। शायद यही कारण है कि विभिन्न अवरोधों के बावजूद भी महिलाएँ अपनी पहचान बना रही है और यही उनकी विजय है।

राजस्थान में महिलाओं की स्थिति

राजस्थान का सम्बन्ध एक विशिष्ट प्रकार की सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था, सामन्तवाद से रहा है। समाज की रचना सामन्तवादी होने के कारण कतिपय विशिष्ट आधारों पर निर्मित थी, इसलिए राजस्थान की महिलाओं की विवेचना उस सामन्तवादी परिवेश से हटकर नहीं की जा सकती, जिसका संबंध क्षेत्रीय सामाजिक संरचना से है।

राजस्थान में महिलाओं की प्रस्थिति जानने के लिए सैद्धांतिक तथा अवधारणात्मक विवेचन में तीन तथ्यों पर दृष्टिपात किया गया है। पहला, सामाजिक संरचना में महिलाओं की असमान एवं निम्न प्रस्थिति से संबंधित है। दूसरे तथ्य का सम्बन्ध उस विश्वव्यापी आन्दोलन से है जो अब तक की महिलाओं की प्रस्थिति को सबलीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से बदलना चाहते हैं और तीसरे तथ्य का सम्बन्ध भारत में संविधान के उस 73वें और 74वें संशोधन से है, जिसने भारत के इतिहास में पहली बार महिलाओं को विशेष रूप से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाओं का पंचायतीराज व्यवस्था में आरक्षण निश्चित किया है।

राजस्थान में महिलाओं का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण– राजस्थान में महिलाओं की स्थिति के विश्लेण से पूर्व, यह आवश्यक हो जाता है कि हम राज्य की सामाजिक संरचना और सामाजिक जीवन को संक्षिप्त में समझे। मूल रूप में देश की सामाजिक संरचना वैदिककाल से ही जिन व्यवस्थाओं के आधार पर अपना अस्तित्व कायम किए रही उसमें वर्णव्यवस्था, संयुक्त परिवार प्रणाली, वर्णाश्रम, संस्कार आदि प्रमुख है। संपूर्ण देश का सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन का मूल ढांचा ही राज्य के सामाजिक एवं पारिवारिक ढाँचे का आधार था, जिसके मध्यकाल तक आते-आते कई प्रमाण भी मिले हैं।

जैसा कि हम भारत में महिलाओं की प्रस्थिति का अध्ययन करके जान चुके हैं कि वैदिक काल में सभी परिप्रेक्ष्य से महिलाओं की सामाजिक प्रस्थिति सम्माननीय थी। धर्मसूत्र, स्मृति एवं महाकाव्य व पुराणकाल की लंबी अवधि में कई ऐसे सामाजिक परिवर्तन हुए कि शनैः-शनैः स्त्रियों की प्रस्थिति में गिरावट आती गई। जो कि अट्ठारहवीं सदी तक विभिन्न पड़ावों से गुजरती हुई अपने अस्तित्व को ढूँढ पाने में असफल रही।

राजस्थान के संदर्भ में मध्यकाल का समय वह था जहाँ एक ओर तो सामंतवादी संरचना सुदृढ़ हुई वहीं दूसरी ओर मुस्लिम आक्रमण हुए और इन दोनों तत्वों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से महिलाओं की स्थिति को और भी अधिक पीड़ादायक बना दिया।

परिवार, सामाजिक संरचना की केन्द्र इकाई है। समाज वैज्ञानिकों एवं इतिहासकारों का विश्वास है कि पूर्व में राजस्थान में संभवतः मातृसत्तात्मक परिवार व्यवस्था रही है। इस तथ्य के पीछे आहड़ और कालीबंगा सभ्यता के अवशेषों से प्राप्त जानकारी है। लेकिन कालान्तर में कृषि युग के आरम्भ के साथ पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने अपना स्वरूप,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समाज में ग्रहण किया। पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने संपूर्ण भारत की ही तरह राजस्थान में स्त्री के महत्व को कम कर दिया।

विभिन्न शोध यह बताते हैं कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के आरंभिक वर्षों में यद्यपि कन्या जन्म उल्लास और हर्ष का विषय नहीं था, परन्तु उनके जन्म के पश्चात् उनकी उपेक्षा भी नहीं की जाती थी। शनैः-शनैः कन्या जन्म दुर्भाग्य का कारण माना जाने लगा और राज्य में यह भी कई बार पाया गया कि कन्या के जन्म के साथ उनका वध कर दिया गया।

वैदिक काल से ही हमारी सामाजिक संरचना में वर्ण व्यवस्था का महत्व रहा है और इसी वर्ण व्यवस्था का विखंडित स्वरूप आगे चलकर जाति व्यवस्था हो गया। इस तथ्य के प्रमाण तत्कालीन पुरालेखों तथा साहित्यिक दस्तावेजों में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। जातिगत व्यवस्था में ऊँच-नीच का संस्तरण राज्य में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक संस्तरण की इस व्यवस्था ने राज्य की स्त्रियों की प्रस्थिति को प्रभावित किया। राज्य में सबसे प्रभावशाली और प्रभुत्वशाली राज्य के शासक, उनके वंशज या अन्य राजपूत वर्ग के वंशज थे, जिनके पास जागीरें थीं। इस सामन्तवादी व्यवस्था में नैतिकता, नारी और भूमि को एक दृष्टि से देखती थी। सामन्तवादी इस व्यवस्था में बहुविवाह अपनी पराकाष्ठा पर था। स्त्री के जीवन की परिधि घर की चारदीवारी सुनिश्चित की गई। स्वतंत्रता, समानता तथा अपने अधिकारों के लिए खड़े होना भी, राज्य की स्त्रियों के लिए अकल्पनीय था।

यदि हम सम्पत्ति के संदर्भ में महिलाओं के अधिकार की चर्चा करें तो पाएँगे कि धर्मशास्त्रों द्वारा तय किए गए सम्पत्ति के अधिकार के मानदण्ड राजस्थान में भी यथावत दिखाई देते हैं। राजस्थान की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि व्यवस्था थी और महिलाएँ पुरुषों की ही भाँति खेतों में कार्य करती थीं। कृषि कार्य ही नहीं, पशुपालन, खेतों में बुआई, सिंचाई, सूत काटना, मिट्टी के बर्तन बनाना आदि कार्यों में भी राज्य की महिलाएँ संलग्न रहती थी।

भारतीय संस्कृति में संस्कार वह है जिसके होने से कोई व्यक्ति या पदार्थ किसी कार्य के लिए योग्य हो जाता है अर्थात् संस्कार वे रीतियाँ हैं जो योग्यता प्रदान करती है। जीवन के बौद्धिक विकास से संबंधित ज्ञान तथा प्रकाश प्रदान करने वाले शिक्षा से जुड़े सभी संस्कारों जैसे विद्यारम्भ, उपनयन, वेदाध्ययन तथा समावर्तन के वैदिक मंत्रों के साथ संस्कार संपादन के सारे अधिकारों से स्त्रियों को वंचित कर दिया। स्पष्ट है कि व्यक्ति के विकास, उन्नति तथा बौद्धिक उत्कर्ष का संबंध मात्र पुरुषों से था।

व्यवस्थित और विश्वसनीय शोध एवं आँकड़ों के अभाव में राजस्थान में पुरातन शिक्षा व्यवस्था के सम्बन्ध में विश्लेषण करना मुश्किल कार्य है। 'मधुमालती' में शिक्षा को अनन्त ज्ञान और आजीविका का स्रोत बताया गया है। राजस्थान की कई रियासतों में प्राथमिक शिक्षा के विद्यालय थे, जिन्हें उपासरा, पोसाल, मकतब आदि कहते थे। शिक्षा के सम्बन्धम ेंय हस्‍ पष्टथ ा कम ध्यकालत कअ ाते-आतेर ाजस्थानम ें महिलाओं से संबंधित कई प्रयासों के प्रचलन के चलते स्त्रियों से शिक्षा के अधिकार छीन लिए गए। राजस्थान में लड़कियों के लिए अलग पाठशालायें नहीं थीं। शाही परिवार तथा मध्यमवर्ग की महिलाएँ यद्यपि घर पर शिक्षक बुलाकर पढ़ लिया करती थीं, परन्तु यहाँ भी संगीत, चित्रकला जैसे विषयों को ही उनके द्वारा पढ़ा जाता था। स्त्रियों की शिक्षा का सबसे बड़ा बाधक तत्व 'बाल विवाह' जैसी कुप्रथा बनी। राजस्थान देश के उन राज्यों में से एक था जहाँ बाल विवाह के आँकड़े अन्य राज्यों से अपेक्षाकृत बहुत अधिक थे।

मध्यकाल में बाल विवाह, पर्दा प्रथा, कन्या वध जैसी प्रथाएँ राज्य की महिलाओं को उनके मानवीय अधिकारों से वंचित कर रही थीं, परन्तु सती प्रथा ने मानवता को कलंकित कर दिया था। स्त्री-शुचिता, चारित्रिक-उत्कृष्टता एवं भारतीय संस्कृति के परम्परागत निर्वाहन के नाम पर स्त्री के समस्त व्यक्तित्व को इस तरह सम्मोहित कर दिया जाता है कि वह स्वयं अपने पति की मृत्यु के पश्चात् अपनी जीवनलीला समाप्त कर लेती। 'जौहर प्रथा' को तथाकथित गौरवमय परम्परा, राज्य के सत्ता सम्पन्न एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था के पोषकों ने घोषित कर येन-केन प्रकारेण स्त्री को विवश किया कि वह वैधव्य को छोड़कर स्वयं को पति के साथ चिता में जला ले। उल्लेखनीय है कि राजा राम मोहन राय ने पुरजोर तरीके से 'सती प्रथा'क ा विरोधक रतेह ुएय हउ ल्लेखित कयाा कव ेदोंए वंह मारे धर्मग्रन्थों में 'सती प्रथा' के सम्बन्ध में कोई विवरण नहीं है। इसलिए इसे शास्त्रसम्मत कहना अनुचित होगा।

महिलाओं के संदर्भ में जब मध्यकाल में कुप्रथाओं की चर्चा की जाती है तो राज्य का नाम 'डाकन प्रथा' से जुड़ा हुआ दिखाई देता है। इस परम्परा को यूँ तो अंधविश्वास कहा जाता रहा है परन्तु इस परम्परा का सच इससे भी कहीं अधिक एक सोची-समझी गई योजना से ज्यादा रहा है। शोध बताते हैं कि अधिकतर 'डायन' उन्हीं महिलाओं को घोषित किया जाता था, जो अकेली हो या विधवा हो और जिसकी सम्पत्ति को परिवार के अन्य सदस्य या फिर गाँव के प्रभुत्वशील लोग हड़पना चाहते हों। ऐसी महिलाओं को गाँव के पुजारी या तांत्रिक के जरिए, 'डायन' घोषित करवाया जाता था और इस क्रूर प्रथा के चलते अंततोगत्वा महिला को इतना प्रताड़ित किया जाता कि उसकी मृत्यु हो जाती। दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष तो यह है कि आज भी यदाकदा, राज्य के सुदूर पिछड़े क्षेत्रों से ऐसी खबर आती रहती है।

राजस्थान की महिलाओं का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करते हुए भक्तिकाल के संदर्भ में चर्चा करना आवश्यक हो जाता है। भक्ति आंदोलन का उद्भव समाज में फैली कुप्रथाओं के विरुद्ध हुआ था। भक्ति आंदोलन की इस परम्परा में राजस्थान में भी कई संत हुए जिनमें संत रैदास, जांभोजी, रामचरण दादू, धन्ना आदि प्रमुख थे, लेकिन स्त्रियों की स्थिति को समझने की दृष्टि से सर्वाधिक उल्लेखनीय नाम 'मीराबाई' का है। मध्यकाल में जब स्त्री को घर की चारदीवारी के भीतर जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया गया था, उस समय मीरा ने हर सामाजिक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बंधन को तोड़ कर ईश्वर भक्ति में स्वयं को लीन करते हुए काव्य रचना की। उनके काव्य में लोकलाज तजने, कुल मर्यादा को लांघने का उल्लेख मिलता है। यहाँ आध्यात्मिक समानता पर आधारित भक्ति का आचरण स्त्री पराधीनता को प्रत्यक्ष चुनौती थी।

सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रयास

भारत में ब्रिटिश शासन के आधिपत्य के फलस्वरूप परम्परागत सामंती सामाजिक संरचना में बदलाव आया। अंग्रेजी न्यायालयों की स्थापना ने सामंतों के अधिकारों को बहुत सीमित कर दिया।

राजस्थानम`ेंब दलावक ाअ लखज गानेम`ें आर्यस माज'क ा अभूतपूर्व योगदान रहा। उन्होंने शिक्षा पर विशेष बल देते हुए कई विद्यालय खोलकर स्त्रियों की शिक्षा के लिए नवीन द्वार खोले।

समाज सुधारकों के प्रयासों के चलते ब्रिटिश सरकार ने 'डायन (डाकन) प्रथा' को समाप्त करने हेतु भी शासकों को पत्र लिखे, अत: 1853 में तत्कालीन उदयपुर राज्य ने इस प्रथा को अवैध घोषित कर दिया तथा ऐसे अपराध में संलग्न लोगों के लिए कारावास के दण्ड की घोषणा की। इसी प्रकार तत्कालीन जयपुर, कोटा आदि राज्यों ने भी इसे गैर कानूनी घोषित कर दिया।

बहुपत्नी विवाह, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध जैसी कुप्रथाओंके ि वरुद्धस न्1 877म`ेंउ दयपुरम हाराणास ज्जर्न संहक ा अध्यक्षताम`ें3 2प्/मुखस ामंतोंए वंर ाज्याधिकारियोंक ाए कस भाम`ें विवाह सम्बन्धी नियम बनाने पर विचार हुआ तथा 'देश हितैषिणी सभा' की स्थापना की गई। यह एक मात्र ऐसी संस्था थी जिसके माध्यम से शासकों ने प्रथम बार महिलाओं के हित के लिए कदम उठाए और विवाह सम्बन्धी नियम बनाए गए। 1887 में 'वाल्टर कृत राजपूत हितकारिणी सभा' का गठन कर राज्य प्रतिनिधियों के प्रस्ताव पारित किये गये। राज्य में एक केन्द्रीय संगठन तो स्थापित नहीं हो सका था, परन्तु कई स्वयंसेवी संस्थाएँ बनी। अजमेर में राजस्थान सेवा संघ, मारवाड़ की मरुधर हितकारिणी सभा, देशी राज्य परिषद संस्थाओं ने सामाजिक जन जागृति फैलाई।

समाज सुधारकों के दबाव के कारण ही ब्रिटिश अधिकारियों ने सती प्रथा या विधवा दहन, जैसी अमानवीय प्रथा को समाप्त करने के लिए राजस्थान के शासकों को विवश किया। जिसकी परिणति यह रही कि जोधपुर एवं उदयपुर के शासकों के आरम्भिक विरोध के बाद धीरे-धीरे राजस्थान के दूसरे शासक भी तैयार हो गए। सर्वप्रथम 1822 में बूंदी में विधवा दहन को गैर कानूनी घोषित किया गया, उसके बाद 1830 में अलवर, 1844 में जयपुर, 1846में डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़, 1848में जोधपुर तथा कोटा तथा 1860 में उदयपुर राज्य ने विधवा दहन को अवैध करार कर दिया।

राज्य में कन्या वध का भी विरोध हुआ। बांकीदास की ख्यात के अनुसार 1836में महाराणा रतन सिंह ने गया में अपने सभी सामंतों की सभा आयोजित कर शपथ दिलाई थी कि वे अपनी बेटियों का वध नहीं करेंगे। तत्पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने इसे हत्या बताते हुए 'कन्या वध प्रथा' को बंद करने की चेष्टा की। अंतत: 1834 में तत्कालीन कोटा राज्य ने इसे गैरकानूनी घोषित किया, उसके पश्चात् 1837 में बीकानेर, 1839-44 के मध्य जोधपुर, जयपुर तथा 1857 में तत्कालीन उदयपुर राज्य ने भी इस गैर कानूनी घोषित कर दिया।

स्वतंत्रता के पश्चात् राज्य में महिलाओं की प्रस्थिति

स्वतंत्रता के पश्चात् विभिन्न संवैधानिक व्यवस्थाओं एवं महिलाओं की समानता, सुरक्षा एवं हितों को ध्यान में रखते हुए बने विभिन्न वैधानिक प्रावधानों ने 'स्त्री की प्रस्थिति' को उच्च करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि इन वैधानिक एवं संवैधानिक प्रावधानों ने स्त्रियों की प्रस्थिति में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया पर यह अवश्य हुआ कि भारतीय महिलाओं को अपने अधिकारों को पाने में सहजता हो गई। स्वतंत्रता के पश्चात् राजस्थान की महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन हुआ। शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय से संबंधित अधिकांश सूचकांकों में सकारात्मक प्रगति हुई, परन्तु यह राष्ट्रीय स्तर से अब भी कम है। उदाहरणार्थ लिंग आधारित आँकड़ों के अनुसार (SRS 2011) शिशु मृत्यु दर बालिकाओं में 553 प्रति 1000 जीवित जन्म है। सामान्य लिंगानुपात जो 2001 में 921 महिलाएँ प्रति 1000 पुरुष था, वह बेहतर होकर 2011 में 926 हो गया। लैंगिक पक्षपात स्त्रियों की गरिमा पर चोट पहुँचता है। यह एक कटु सत्य है कि गर्भ में आने से लेकर स्त्री जीवन के हर स्तर पर उसकी स्थिति, सुरक्षा एवं संरक्षण का प्रश्न गहराता जाता है। यह भी सत्य है कि आर्थिक विकास और तकनीकी प्रगति ने अमूमन लोगों की सोच को परिवर्तित नहीं किया है।

भारत के अन्य क्षेत्रों के समान राजस्थान में भी महिलाओं के विरुद्ध लैंगिक भेदभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिलक्षित होता है। बाल विवाह, जो कि राजस्थान में आज भी चोरी-छिपे सम्पन्न किए जाते हैं, राज्यस्तरीय प्रयासों के चलते उनमें शनै:-शनै: सुधार हो रहा है। विवाह आयु के आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि राज्य में पाँच में से एक महिला (21.9 प्रतिशत) का विवाह वैधानिक आयु 18 वर्ष से कम आयु में हुआ था और यह अनुपात ग्रामीण क्षेत्रों में (26.8प्रतिशत) शहरी क्षेत्रों (9 प्रतिशत) की तुलना में बहुत अधिक था।

बाल विवाह निषेध जो कि स्वतंत्रता के बाद राज्य सरकार की प्राथमिक जिम्मेदारी बन चुकी है। वैधानिक नियमों की सख्ती से पालना करने के अलावा जनजागृति के माध्यम से राज्य में इसे रोकने की चेष्टा की जा रही है। सदियों से जड़ों में समाई इस कुरीति को दूर करना सहज नहीं है, परन्तु राज्य सरकार के निरंतर प्रयासों के चलते राज्य में विवाह की औसत आयु 19.7 वर्ष (AHS 2010-11 के अनुसार) तक बढ़ गई है। परन्तु अभी भी राज्य के ग्रामीण इलाकों में प्रत्येक चौथी बालिका का

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विवाह वैधिक आयु से कम में हो जाता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् महिलाओं की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए दो महत्वपूर्ण कानून बने, पहला दहेज निरोधक अधिनियम तथा दूसरा घरेलू हिंसा से सुरक्षा सम्बन्धी अधिनियम। राज्य के लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य रहा है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था तथा अन्य प्रचलित मान्यताओं के चलते वैवाहिक और अन्य लैंगिक मामलों में बढ़ोतरी हुई है। लगभग 46.3 प्रतिशत विवाहित महिलाओं ने कभी न कभी पति द्वारा की गई हिंसा की शिकायत की है। राजस्थान में घरेलू निर्णयों में विवाहित महिलाओं की भूमिका मात्र 22.8 प्रतिशत है एवं ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रतिशत और भी कम है। शिक्षा के निर्णय लेने में उनकी भूमिका बढ़ी है, लेकिन चौंकाने वाला तथ्य है ज्यादा शिक्षा प्राप्त महिलाओं में से भी 57.8 प्रतिशत महिलाओं ने घरेलू निर्णयों में कोई योगदान नहीं दिया है। (NHFS III, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण तृतीय)।

उपर्युक्त परिस्थितियों के विश्लेषण से यह तथ्य तो स्पष्ट हो जाता है कि स्वास्थ्य, पोषण, बालिका और महिलाओं के कल्याण हेतु सामाजिक, पारिवारिक तथा सरकारी स्तर पर प्रयासों को बढ़ाने के साथ ही, राज्य में महिलाओं की स्थिति में सकारात्मक रूप से परिवर्तन आया है। सामाजिक, आर्थिक विकास से यद्यपि राज्य की महिलाओं की स्थिति सुधरी है, परन्तु लैंगिक असमानता प्रत्येक क्षेत्र में आज भी दृष्टिगोचर होती है।

हमें यह विचार करना होगा कि किन साधनों के माध्यम से हम राज्य की महिलाओं के साथ हो रहे किसी भी किस्म के भेदभाव को समाप्त करें। साथ ही उन्हें स्वयं के निर्णय लेने में सक्षम बना सके। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि राज्य की महिलाओं को उपलब्ध सेवाओं पर समान अधिकार और संसाधनों पर न्यायसंगत नियंत्रण का अधिकार मिले। इन उद्देश्य की पूर्ति हेतु न्याय प्रवर्तन एजेंसियाँ, नागरिक, समाज, सरकार, चिकित्सा सेवा प्रदाता, परिवार और समुदाय द्वारा एक व्यापक और समन्वित कार्यवाही की जानी आवश्यक है।

सामाजिक चेतना

हमने इस अध्याय के आरम्भ में भली-भाँति तरीके से यह जाना कि भारत की महिलाओं की वैदिक काल से लेकर वर्तमान समय तक क्या स्थिति रही है? हमने यह भी जाना कि किन संघर्षों के उपरान्त, उन्हें संवैधानिक एवं वैधानिक दोनों ही स्तरों में सामाजिक एवं लैंगिक भेदभाव के हर स्वरूप से मुक्ति पाने के मार्ग मिले हैं? पर इन सबके साथ एक महत्वपूर्ण प्रश्न यहाँ यह उत्पन्न होता है कि क्या वाकई महिलाएँ अपने अधिकारों का उपभोग कर पा रही हैं? क्या वह उन सरकारी नीतियों को जानती हैं जो उनके सर्वांगीण विकास के लिए केन्द्र एवं राज्यों सरकारों ने बनाई हैं? क्या उन्हें यह विदित है कि उनका स्वास्थ्य, पोषण और सुरक्षा देश की प्राथमिकता है? यह वह प्रश्न है जिनके लिए 'हाँ' या 'ना' में उत्तर देना संभव नहीं। इस विषय का गंभीर विश्लेषण करने के लिए हमें कुछ ऐसे उदाहरणों को देखना है जिनका संबंध, सामाजिक चेतना है।

सामाजिक चेतना का अर्थ– सामान्यत: सामाजिक चेतना से हमारा तात्पर्य किसी देश तथा काल विशेष से सम्बन्धित मानव समाज में अभिव्यक्त परिवर्तशील जागृति से है। इसका उद्‌भव सामाजिक अन्याय, शोषण, अनीति आदि जैसी नकारात्मक भावनाओं के विरुद्ध होता है।

अध्याय के इस भाग में हम चूंकि महिलाओं की सामाजिक चेतना केि वषयम ेंब ातक रेंगेइ सलिएय हाँस ामाजिकच ेतनाक ास म्बन्ध, महिलाओं को प्राप्त संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत, अधिकारों के प्रति चैतन्यता से है। अर्थात् क्या देश की आधी आबादी अपने अधिकारों के सम्बन्ध में जागरुक है? इस विचारधारा के आस-पास, महिलाओं की सोच ही उनकी 'चेतना' है।

महिला और सामाजिक चेतना– महिलाओं की सामाजिक चेतना का विश्लेषण करने से पूर्व हमें यह समझना होगा कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में आज भी महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों को न केवल पुरुषों द्वारा चुनौती मिल रही है बल्कि उन्हें प्रथम पंक्ति में शामिल न करने की जद्दोजहद एवं प्रयास किए जाते रहते हैं। इन सबके बावजूद देश की आधी आबादी में यह चेतना धीरे-धीरे जाग रही है कि संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्राप्त करना उनका कर्तव्य है क्योंकि इसी में देश के नीति निर्माताओं की भी सफलता है।

महिलाओं में सामाजिक चेतना की चर्चा करते हुए हम कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर दृष्टिपात करेंगे।

महिला समानता की बात करते हुए महिलाओं को प्राप्त राजनैतिकअ धिकारस र्वप्रमुखअ ौरनि र्णायकप्र तीतह ोतेह ैंइ सलिए सर्वप्रथम इसी बिन्दु पर चर्चा करना उचित होगा।

भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त महिलाओं को दो प्रमुख अधिकार हैं, महिलाओं को मताधिकार और विधानमंडल के लिए योग्यता। महिला मताधिकार की माँग सर्वप्रथम 1917 में की गई थी, किन्तु साउथ बरो फ्रेन्चाइज कमेटी ने 1918 में इस माँग को अस्वीकार कर दिया। 1919 में सरकार ने राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया कि वे स्त्री मताधिकार के सम्बन्ध में अपने अलग विधान लागू करें। इस प्रकार के विधान राजकोट में 1923 में, मद्रास तथा उत्तर प्रदेश में 1925 में, बिहार तथा उड़ीसा में 1929 में पारित किए गए। इस प्रकार स्त्री को राजनैतिक अधिकार देने की पहल जारी रही परन्तु मील का पत्थर सिद्ध हुआ सन् 1993 में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को प्राप्त आरक्षण। महिलाओं को आरक्षण तो प्राप्त हो गया, परन्तु भारतीय राजनीति के प्रथम पायदान पर भी महिलाओं की उपस्थिति को स्वीकार्य करना पुरुष सत्तात्मक समाज के लिए सहज नहीं रहा है। सदियों से सत्तासीन पुरुष सत्तात्मक समाज सत्ता का वास्तविक हकदार स्वयं को मानकर, उस सत्ता को नियंत्रित करने में कोई कसर नहीं छोड़ता। उसके लिए यह स्थिति इसलिए बहुत सहज हो जाती है क्योंकि भारतीय समाज में वह भी विशेषकर ग्रामीण पृष्ठभूमि में स्त्री स्वयं को अपने पति से हर दृष्टि से कमतर समझती है। महिला सरपंचों

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

की राह में कई चुनौतियाँ हैं, जिनमें से सर्वप्रथम पंचायत के कामकाजों की जानकारी का अभाव और इसके चलते ही उन्हें मजबूरन अपने पति या गाँव के शक्तिशाली लोगों की बातों को स्वीकार करना पड़ता है। परन्तु धीरे-धीरे यह परम्परा बदल रही है। जो महिलाएँ साक्षर हैं और अपने अधिकारों के प्रति सचेत हैं उन्होंने इस तस्वीर को बदलने की चेष्टा की है। देहरादून (उत्तराखण्ड) जिले के सिंधारे गाँव की प्रधान ममता उन महिलाओं में से एक है, जिसने अपने पति द्वारा फर्जी हस्ताक्षर करके पैसों की हेराफेरी की शिकायत की और अब खुद पंचायत के सारे फैसले लेती है। ममता जैसी महिलाओं को अपने अधिकार के प्रति सजग होने पर भी कई बार शारीरिक और मानसिक हिंसा का शिकार होना पड़ता है।

देश की विभिन्न पंचायतों में महिला सरपंचों द्वारा किए गए उत्कृष्ट कार्यों की ही परिणति है कि 2008 के मध्य में केन्द्र ने एक फैसला लिया जिसमें महिला सरपंचों को डेढ़ साल से पहले अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से हटाया नहीं जा सकता। उल्लेखनीय है कि इससे पूर्व महिला सरपंचों को सत्ता से दूर रखने के लिए उन पर अनर्गल आरोप लगा कर पद से हटाए जाने के कई मामले प्रकाश में आए थे। सरकार का यह निर्णय महिलाओं की कार्यक्षमता और नेतृत्व पर भरोसे को दर्शाता है।

सत्ता पर आसीन ही नहीं, अपितु अपने मताधिकारों का प्रयोग करने वाली महिलाएँ भी अपने 'मत' के महत्व को जानती है। विभिन्न शोध यह बताते हैं कि महिला मतदाता उन प्रतिनिधियों को अपना मत देना पसंद करती है जो सामाजिक बुराई के विरुद्ध हों। इसमें शराबबंदी, शिक्षा के लिए सुदूर ग्रामीण अंचलों में स्कूल, पानी की सुविधा जैसे कई मुद्दे हैं।

हम अगर यह कहते हैं कि आज भी महिलाएँ अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति उदासीन हैं तो यह गलत होगा। स्त्री में चेतनता है पर आवश्यकता है उचित मार्गदर्शन की।

संयुक्त राष्ट्र तथा सेंटर फॉर सोशल रिसर्च द्वारा राजनीति में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा पर किए गए अध्ययन में कहा गया है भारत में महिला मतदाताओं और राजनीतिक दलों में महिला उम्मीदवारों का प्रतिशत बढ़ा है, लेकिन राष्ट्रीय राजनीतिक संस्थानों में उनका प्रतिशत कम हुआ है। अध्ययन में पाया गया है कि राजनीति में आने के महिलाओं के अधिकार से उन्हें रोका जाता है। देश में शारीरिक हिंसा, गाली-गलौच और हिंसा की धमकी देकर उन्हें रोके जाने के प्रयास किए जाते हैं।

भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका स्वयं में एक चुनौती है,क्योंकि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में आज भी यह स्थिति अस्वीकार्य है। ऐसे में जितना अधिक नेतृत्व उन्हें मिलेगा उतना ही शनैः-शनैः उनके लिए यह स्थिति असहज से सहज में परिवर्तित होती जाएगी। इसका जीवंत उदाहरण पंचायत में महिलाओं की उपस्थिति है।

महिला की अपने अधिकारों के प्रति चेतनता की हम जब बात करते हैं कि उस सारी बातों का सार इस तथ्य पर टिका होता है कि 'क्या महिलाओं में निर्णय लेने की क्षमता है' क्योंकि 'निर्णय' लेने की क्षमता स्त्री सशक्तीकरण का एक प्रमुख माप है। निर्णय लेने की क्षमता का विकास तभी संभव है जब स्त्री के भीतर आत्मविश्वास हो। यह क्षमता तभी विकसित होती है जब स्त्री आत्मनिर्भर हो परन्तु यह 'आत्मनिर्भरता' स्त्रियों की सबसे बड़ी चुनौती बनकर उभरी है।

स्त्रियाँ अपने आर्थिक अधिकारों के प्रति कितनी सजग है इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि उनकी इस सजगता के मध्य कौन से अवरोध हैं? वैधानिक रूप से स्त्री और पुरुष को समान आर्थिक अधिकार प्राप्त हैं। यहाँ तक कि महिला और पुरुषों को पैतृक सम्पत्ति में बराबर का अधिकार दिया गया है। साथ ही कानून महिला को भी पाटीदार या साझीदार के तौर पर बटवारे के मामले में समान अधिकार देता है। परन्तु इन सारे अधिकार के बावजूद भी बेटियों को घर का मुखिया स्वीकार नहीं किया जाता। दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस संदर्भ में अपने एक निर्णय (2016) में कहा कि जिस घर में बड़ी बेटी होगी वहाँ पर वही कर्ता-धर्ता (मुखिया) होगी। यहाँ इस निर्णय के साथ दो तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं कि महिलाएँ अपने अधिकारों को लेकर 'चेतन' है और इसकी प्राप्ति के लिए वह न्यायालय के दरवाजे खटखटाने से भी नहीं हिचकती परन्तु इसका दूसरा पहलू यह है कि आखिर क्यों ये अधिकार स्वाभाविक रूप में नहीं दिए जाते? क्यों महिलाओं को इसके लिए संघर्ष करना पड़ता है? दरअसल इस संपूर्ण संदर्भ को दो दृष्टिकोणों से देखे जाने की जरूरत है, पहला तो यह कि जो महिलाएँ देश में, महत्वपूर्ण पदों पर बैठी हैं क्या यह उनके लिए सहज था, यही क्यों हर वह महिला जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है, क्या उसके लिए यह यात्रा सहज रही है और दूसरा, घरेलू दायरे में आज भी क्यों महिलाओं के अधिकारों की अवहेलना कर दी जाती है? इन दोनों ही प्रश्नों का मूल छिपा है 'सत्ता का सुख' में। अगर हमारे लिए सत्ता का तात्पर्य मात्र 'राजनैतिक पद' से है तो हम गलत हैं। सत्ता का व्यापक अर्थ घरेलू और बाहरी सभी प्रकार के निर्णयों को लेने के अधिकार से है और यह निर्णय लेने की क्षमता पर सैकड़ों वर्षों से पुरुषों ने अपना एकाधिकार माना है।

अविभाजित हिन्दू परिवार में सम्पत्ति के बँटवारे या विक्रय सम्बन्धी निर्णय वही लेता है जो परिवार का मुखिया है। यूँ तो कानूनन स्त्री को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार देने की पहल हुई है पर देश के अधिकांश परिवारों में इसका मौन विरोध है और जिन बेटियों ने अपने इस अधिकार के प्रति चेतनता है, उन्हें प्रत्यक्ष रूप से यह संकेत दे दिए जाते हैं कि अपने आर्थिक अधिकार की सुरक्षा करने की अगर वह पहल करेंगी तो उन्हें अपने परिवार से सभी प्रकार के भावनात्मक सम्बन्ध खत्म करने होंगे। कुछ इसी तरह का उदाहरण, तब देखने को मिला, जब महिला मेकअप आर्टिस्टों को बॉलीवुड (मुम्बई फिल्म जगत) में पुरुष मेकअप आर्टिस्टों ने जगह बनाने नहीं दी। उल्लेखनीय है कि 2015 के आरम्भ में इस पूरे सन्दर्भ को लेकर उच्चतम न्यायालय ने रोष जताया, जिसके चलते महिला मेकअप आर्टिस्टों के लिए दरवाजे तो खोल दिए गए लेकिन उन्हें अप्रत्यक्ष रूप से रोके रखने के लिए सदस्यता शुल्क और शर्तें बढ़ा दी गईं।

यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि महिलाओं को अपने हर अधिकार के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लिए न्यायालय तक पहुँचना पड़ता है। पर इससे यह तो स्पष्ट है कि देश कीम हिलाओंक ाकु छर्ा हस्साह ीस हीस ामाजिकरू पस`च`तनह`। स्वाभाविक है आने वाले समय में ऐसी महिलाओं की संख्या बढ़ेगी जो कि अपने अधिकारों के लिए पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देंगी।

राजनैतिक एवं आर्थिक अधिकारों को लेकर संघर्ष करती भारतीय महिलाएँ सामाजिक अधिकारों के प्रति भी जागरूक हैं। वह समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध कर रही हैं। आज भी देश के कई राज्यों में चोरी-छिपे बाल विवाह सम्पन्न किए जाते हैं जो कि महिलाओं के जीवन के समस्त विकास के मार्गों को अवरुद्ध कर देता है परन्तु देश की स्त्रियाँ अब बौद्धिक रूप से चेतन और मानसिक स्तर पर साहसी बन रही हैं। पश्चिम बंगाल के सबसे पिछड़े जिलों में से एक पुरुलिया, जहाँ की महिला साक्षरता दर देश में सबसे कम है, कि 12 वर्षीय बीड़ी मजदूर रेखा कालिंदी ने शादी से इनकार कर, उन बच्चियों के लिए एक राह खोली जो कम उम्र में ब्याह दी जाती हैं। रेखा के इस साहस के बाद, निर्धन परिवारों से सम्बन्ध रखने वाली इसी जिले की रुखसाना खातून, सकीना खातून, अफसाना और सुमित महतो जैसी कई लड़कियों ने शादी से इनकार कर दिया। इन सभी की उम्र 11 से 13 साल के बीच की थी। 12 वर्षीय अफसाना ने न केवल अपना विवाह रुकवाया बल्कि अपनी सहेलियों के साथ मिलकर जिले में लगभग 40 लड़कियों को बाल विवाह से बचाया। झारखण्ड, पुरुलिया जिले (पश्चिम बंगाल) की ही भाँति छत्तीसगढ़ के राजनांदगाँव और हरियाणा के करनाल में नन्ही बच्चियों ने बाल विवाह के खिलाफ मुहिम शुरू की। 'माँ बल्लेश्वरी किशोरी बालिका' नामक समूह, राजनांदगाँव जिले में घर-घर जाकर बाल विवाह रोकने के लिए जनजागृति उत्पन्न कर रहा है।

बाल विवाह के अलावा, खुले में शौच की प्रथा का महिलाएँ पुरजोर तरीके से विरोध कर रही हैं। यह सर्वविदित सत्य है कि खुले में शौच की प्रथा सशक्तीकरण की अवधारणा पर कुठाराघात है। इसका सम्बन्ध स्त्री के स्वास्थ्य के साथ ही साथ उसके सम्मान के साथ भी जुड़ा हुआ है और यही कारण है कि देश के सुदूर अंचलों से इसके विरोध में स्वर उठ रहे हैं।

छत्तीसगढ़ के पिछड़े इलाके से आने वाली जानकीबाई ने साल 2011 में अपने गाँव के लिए हर घर में शौचालय निर्माण शुरू करवाया और साफ-सफाई की आदर्श व्यवस्था स्थापित की। उनके इस कार्य के लिए उन्हें ग्रामीण विकास मंत्रालय ने सम्मानित किया। 2012 में मध्य प्रदेश के रतनपुर गाँव की एक महिला ने अपने विवाह के दो दिन बाद पति का घर इसलिए छोड़ दिया क्योंकि घर में शौचालय नहीं था।

यह समस्त उदाहरण इस ओर इशारा कर रहे हैं कि भारतीय महिलाएँ जागरूक हुई हैं और सामाजिक चेतना का स्तर उनमें बड़ा है। राष्ट्रीय परिवार सर्वेक्षण (IV) के आँकड़े इस बात की पुष्टि करते दिखते हैं। इस सर्वेक्षण से पता चला है कि 18 साल या उससे कम उम्र में बेटियों के विवाह के मामलों में गिरावट आई है। युवतियों की शादी अब 20 से 24 के मध्य हो रही है जबकि एनएफएचएस के 2005-06 में हुए तीसरे सर्वेक्षण के मुताबिक 40 प्रतिशत लड़कियों की शादी 18 साल या उससे कम उम्र में हो जाती थी। इस सर्वेक्षण के अनुसार, बिहार में 60 प्रतिशत से अधिक बेटियों का विवाह अब 24 से 25 साल की उम्र में हो रहा है। ऐसा इसलिए सम्भव हो पाया क्योंकि बिहार में बीते दस सालों में साक्षरता दर में दस प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। इसी तरह हरियाणा में भी बेटियों के विवाह की आयु में सुधार आया है। एनएफएचएस (IV) के आँकड़ों के अनुसार हरियाणा में 18 साल से पहले विवाह करने वाली युवतियों की संख्या अब 19 प्रतिशत से भी कम रह गई है।

महिलाओं के पास स्वयं का बैंक खाता होना, उनकी सामाजिक चेतना का एक बड़ा सूचक है। बैंक खाता रखने वाली 15-49 आयु वर्ग की महिलाओं में भी वृद्धि दर्ज की गई है। 2005-06 के सर्वेक्षण (एनएफएचएस) में बिहार में यह प्रतिशत 8.2 था जो कि वर्तमान में बढ़कर 26.4 प्रतिशत हो गया है। महिलाओं के इस सशक्तीकरण में गोवा 82.8 प्रतिशत से देश के सभी राज्यों से आगे है। तमिलनाडु ने भी इस दिशा में आश्चर्यजनक रूप से सकारात्मक परिवर्तन किया है। यहाँ अपना निजी बैंक खाता रखने वाली महिलाओं का प्रतिशत 77 है जबकि एनएफएचएस 2005-06 के सर्वेक्षण में इनकी संख्या मात्र 15.9 प्रतिशत दर्ज की गई थी।

एनएफएचएस के चौथे सर्वेक्षण में जो सबसे सुखद परिणाम आए हैं, वह है, महिलाओं का घर या जमीन का मालिक होना। सभी राज्यों को पछाड़ते हुए बिहार महिलाओं की सम्पत्ति में 58.8 प्रतिशत से आगे है जबकि त्रिपुरा में यह प्रतिशत 57.3 है। इस सर्वेक्षण में यह बात भी सामने आई है कि अब घर के निर्णयों में महिलाओं की भागीदारी ज्यादा होने लगी है। सर्वेक्षण के मुताबिक सिक्किम इस मामले में 95.3 प्रतिशत के साथ पहले स्थान पर है। यहाँ सबसे अधिक विवाहित महिलाएँ घर के निर्णयों में अपनी भागीदारी देती हैं। पश्चिम बंगाल में यह सशक्तीकरण अधिकतम 89.8 प्रतिशत दर्ज किया गया है जबकि एनएफएचएस-III में यह 70.2 प्रतिशत था।

एनएफएचएस-IV का सर्वेक्षण यह बताता है कि जिन राज्यों में साक्षरता स्तर बढ़ा है, वहाँ स्वास्थ्य, निर्णायक क्षमता और बाल विवाह, घरेलू हिंसा जैसी कुरीतियों में कमी आई है। जैसा कि बिहार में 2005-06 के सर्वेक्षण में साक्षरता दर 37 प्रतिशत थी, जो कि अब बढ़कर 49.6 प्रतिशत हो गई। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव यह रहा कि जहाँ बिहार में बाल विवाह कम हुए, वहीं घरेलू हिंसा से पीड़ित 15-49 साल की विवाहित महिलाओं की संख्या 12 प्रतिशत घटी।

हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि 'शिक्षा' के बगैर स्त्री-सशक्तीकरण सम्भव नहीं। इसलिए यह हमारे लिए आवश्यक हो जाता है कि हम राज्य में बालिकाओं के शिक्षा के स्तर पर विस्तार से चर्चा करें।

राजस्थान में बालिका शिक्षा

शिक्षा ही वह उपकरण है जिससे महिला समाज में अपनी सशक्त,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समान तथा महत्त्वपूर्ण भूमिका दर्ज करा सकती है। शिक्षा सामाजिक तथा आर्थिक सशक्तीकरण के लिए पहला और मूलभूत साधन है। स्त्री शिक्षा के महत्त्व पर राधाकृष्णन आयोग ने कहा है–''स्त्रियों के शिक्षित हुए बिना किसी समाज के लोग शिक्षित नहीं हो सकते। यदि सामान्य शिक्षा स्त्रियों या पुरुषों में से किसी एक को देने की विवशता हो, तो यह अवसर स्त्रियों को ही दिया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा होने पर निश्चित रूप से वह उनके द्वारा अगली पीढ़ी तक पहुँच जाएगी।'' राधाकृष्णन आयोग का यह वक्तव्य अक्षरश: सत्य है। वह स्त्री जो परिवार की धुरी है, उसका साक्षर न होना किसी भी देश का दुर्भाग्य है और भारतीय स्त्रियों ने सदैव से ही हर संघर्ष के बावजूद शिक्षित होने के लिए स्वयं भरसक प्रयास किए हैं। जिस देश में मैत्रेयी, घोषा, अपाला, गार्गी व भारती जैसी विदुषियों की परम्परा रही है वहाँ मध्यकाल में स्त्रियों के लिए शिक्षा के द्वार बन्द कर दिए गए थे। तब से लेकर आज तक महिलाएँ अपनी ऐतिहासिक प्रस्थिति को प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रही हैं।

भारत में स्त्री शिक्षा की स्थिति के विभिन्न पड़ावों की हमने अध्याय के प्रथम भाग में ही चर्चा कर ली थी अब हम यह जानेंगे कि राजस्थान में बालिका शिक्षा की क्या स्थिति रही है?

राजस्थान में बालिका शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि–राज्य में मध्यकाल में बालिका शिक्षा का जो अवसान हुआ वह राज्य के संवेदनशीलअ ौरब ुद्धिजीवील ोगक े ि लएब हुतप ीड़ादायकथ ाअ ौर इसलिए उन्नीसवीं सदी के मध्य में बालिका शिक्षा के प्रयास आरम्भ हो गए। स्वतंत्रता पूर्व शिक्षा के लिए जो प्रारम्भिक प्रयास हुए, उसमें ब्रिटिश शासनक ास कारात्मकस हयोगन हींथ ाइ सकाक ारणभ ीस् पष्टथ ा। ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा के जो भी प्रयास किए वह अपनी प्रशासनिक व्यवस्था में निचले स्तर पर कार्य करने हेतु वर्ग का निर्माण करने के लिए किए। उस शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान की खोज न होकर, अंग्रेजी भाषा के जानकारों की ऐसी फौज खड़ी करनी थी जो उनके आला अफसरों के मातहत के रूप में काम कर सके।

राज्य में, तत्कालीन अजमेर (मेरवाड़ा) जिले में 1861 में ब्यावर और 1863 में अजमेर में वर्नाकुलर बालिका विद्यालय खुले। इन स्कूलों में मूलत: ईसाई धर्म की शिक्षा दी जाती थी। 1893 तक स्कूल खोले जाने और नगण्य उपस्थिति के कारण बन्द किये जाने का सिलसिला चलता रहा।

अंग्रेजी सरकार के बालिका शिक्षा के प्रति नकारात्मक रुख के कारण 1878 से गैर सरकारी स्कूल खोले जाने लगे। अंग्रेजों ने तत्कालीन जोधपुर व अलवर राज्यों में इन स्कूलों पर प्रतिबिंध लगा दिये और कहीं अनुदान देने से मना कर दिया। इन तमाम अवरोधों के बीच 4 फरवरी, 1914 में अजमेर में 'श्री सावित्री कन्या पाठशाला' खुली। जिसके संस्थापक श्रीमती रामप्यारी चन्द्रिका तथा उनके पति लालजी श्रीवास्तव थे। दो अध्यापिकाओं तथा 15 छात्राओं के साथ इस शिक्षण संस्था का आरम्भ हुआ था। अंग्रेज प्रशासित अजमेर-मेरवाड़ा प्रान्त से पूर्व तत्कालीन बीकानेर राज्य में 1886-87 में पहला प्राथमिक स्कूल खुला था। 1889-90 तक यहाँ 39 लड़कियाँ और 1896-97 में महाजन वर्ग की 70 लड़कियाँ पढ़ रही थीं। इस स्कूल में सिलाई व हिन्दी की शिक्षा दी जाती थी।

महिला शिक्षा को लेकर जोधपुर के राजा कुमार सरदार सिंह संवेदनशील थे। उन्होंने 1866 में ह्यूसन गर्ल्स स्कूल खोला। 1913 तक यहाँ 136 छात्राएँ थीं। 1990 में भरतपुर में भी एक स्कूल खोला गया परन्तु जैसलमेर में 1930 तक एक भी बालिका विद्यालय नहीं था।

1921 के जनगणना सर्वेक्षण में स्कूलों के माध्यम से स्त्री शिक्षा की स्थिति स्पष्ट होती है। राज्य में यद्यपि 46,59,493 महिला जनसंख्या थी तथापि इसमें 18,851 ही साक्षर थीं। बीसवीं सदी के दूसरे दशक में विभिन्न राज्यों की 'प्रशासनिक रिपोर्ट' में स्त्री शिक्षा का अनुपात .01 प्रतिशत से भी कम बताया गया।

1944 में जयपुर शहर में महारानी कॉलेज की नींव, श्रीमती सावित्री भारतीय के अथक प्रयासों से रखी गयी।

स्वतंत्रता से पूर्व मेवाड़ अंचल में भैरूलालजी गेलडा ने 1916 में 'राजस्थान महिला विद्यालय' की स्थापना की जो कि महिला विकास की दिशा में एक क्रान्तिकारी पहल थी। 1916 में स्थापित इस विद्यालय ने 1944 में हाईस्कूल का रूप लिया। 1954 में यहाँ स्नातक स्तर की शिक्षा भी प्रारम्भ हो गई। 1943 में संस्था से मॉन्टेसरी शाला को भी जोड़ा गया तथा 1976में श्री दुर्गावत कला एवं औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र आरम्भ हुआ।

राज्य में बालिका शिक्षा के इतिहास में, एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव वह था जब अक्टूबर, 1935 में वनस्थली विद्यापीठ की स्थापना हीरालाल शास्त्री द्वारा हुई। छह लड़कियों तथा बिना किसी आधारभूत संसाधनों के मिट्टी के कमरों में इस संस्था में शिक्षा का कार्य आरम्भ हुआ। विभिन्न स्तरों से गुजरते हुए 1983 में इसको विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त हुआ।

बालिका विद्यालय खोलने के साथ-साथ बालिका शिक्षा की जनजागृति के लिए राज्य में स्वतंत्रता से पूर्व उल्लेखनीय प्रयास हुए। सन् 1935 में दयाशंकर श्रोत्रिय ने गाँधीदर्शन के प्रचार के उद्देश्य से चरखा द्वादशी का 12 दिवसीय आयोजन किया। इसी सभा में नारी शिक्षा की संस्था प्रारम्भ करने की घोषणा की तथा 10 नवम्बर, 1935 को इसी घोषणा के परिणामस्वरूप 'महिला मण्डल' की स्थापना हुई। इस मण्डल के अन्तर्गत महिला शिक्षा की अलख जगी। इस मण्डल का अभूतपूर्व कदम यह था कि स्त्रियों के लिए रात्रि शालाएँ आरम्भ हुईं। इसमें अध्ययन और अध्यापन दोनों ही नि:शुल्क किए गये। उदयपुर के तत्कालीन ग्यारह वार्डों में रात्रि शालाएँ चलने लगीं। इतना ही नहीं, 24 फरवरी 1941 में महिला पुस्तकालय और वाचनालय का भी आरम्भ हुआ।

स्वतंत्रता के पश्चात् राजस्थान में बालिका शिक्षा की स्थिति– स्वतंत्रता के पश्चात् देश की केन्द्र प्राथमिकताओं में बाल शिक्षा का विकास था। राज्य में प्रारम्भिक शिक्षा पर प्रथम पंचवर्षीय योजना में जहाँ 2.29 करोड़ रुपए का प्रावधान रखा गया, वहीं द्वितीय योजना में यह

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4.88 तथा तृतीय में 8.05 करोड़ हुआ और उसके पश्चात् विभिन्न योजनाओं के माध्यम से सरकार ने निरन्तर बालिका शिक्षा की प्रगति के लिए प्रयास किए जिसका परिणाम यह रहा कि नामांकन में प्राथमिक स्तर पर उल्लेखनीय वृद्धि हुई है तथापि वर्ष 2010–11 में प्राथमिक स्तर पर जहाँ बच्चियों का प्रतिशत 45.9 था, वहीं लड़के 54.1 प्रतिशत थे। 11–14 वर्ष की आयुवर्ग में, ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूल बीच में छोड़ देने वाली बालिकाओं का प्रतिशत, वर्ष 2009 में 5.56 प्रतिशत, बालकों की तुलना में 12.55 प्रतिशत बालिकाओं का रहा, जो कि लैंगिक भेद की स्पष्ट तस्वीर दिखाता है।

सर्वेक्षण बताते हैं कि महिला शिक्षिकाओं की वृद्धि के सकारात्मक परिणाम आए। इससे बालिकाओं के विद्यालय नामांकन में बढ़ोत्तरी हुई। वर्ष 2003–04 और 2011 के बीच यूँ तो महिला शिक्षिकाओं के अनुपात में 24.18 प्रतिशत से 30.15 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, परन्तु वे विद्यालय जिनमें कम से कम एक महिला शिक्षिका है, की संख्या में 64.99 प्रतिशत वृद्धि हुई है।

लिंग व जेण्डर आधारित साक्षरता दर स्थिति राजस्थान

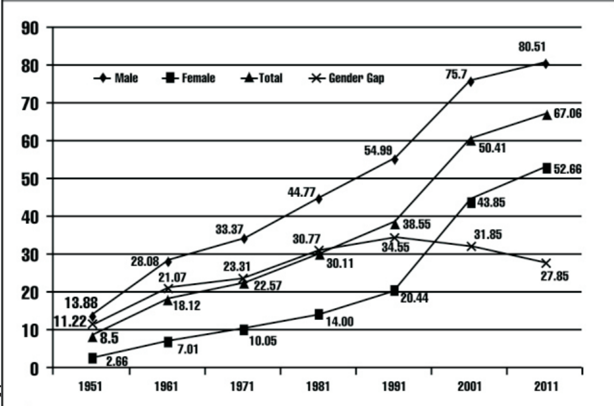

स्रोत : जनगणना, 2011

... की प्रमु... ं ने इनके ... इस भेदभाव को बच्चियों को अपने घर में, अपने अभिभावकों के बीच देखना पड़ता है। पोषण से लेकर मूलभूत आवश्यकताओं तक के लिए माता–पिता द्वारा बच्चियों और बेटों में अन्तर किया जाता है। बाल विवाह और बालिकाओं द्वारा शारीरिक श्रम, राज्य की बालिकाओं की निरन्तर शिक्षा में बाधक तत्त्व है और यही कारण है कि मौजूदा योजनाओं और राज्य सरकार के बालिका शिक्षा के लिए विभिन्न कार्यक्रमों से बालिकाएँ उस अनुपात में लाभान्वित नहीं हो रही हैं, जो कि अपेक्षित थीं। यह राज्य के लिए चिन्ता का विषय है कि राज्य की महिला साक्षरता दर केवल 52.66 प्रतिशत है, जो भारत के कई राज्यों से ही कम नहीं है, अपितु भारत की महिला साक्षरता दर के राष्ट्रीय औसत 65.54 प्रतिशत से भी कम है। हम यह कहें कि स्थिति पूर्णत: निराशाजनक है तो यह गलत होगा, प्रयासों को सफलता मिलती है इसलिएअ ानेव ालेस मयम ेंस रकारक ीय ोजनाओंक ीस कारात्मक परिणति होगी ऐसा विश्वास किया जाना चाहिए।

राज्य में बालिका शिक्षा के सरकार की योजनाएँ–

यह सर्वविदित और सार्वभौमिक सत्य है कि शिक्षा मानव विकास का मूल मंत्र है। चूँकि मध्यकाल और स्वतंत्रता पूर्व बालिका शिक्षा को लेकर बहुआयामी प्रयास सरकारी स्तर पर नहीं हुए इसलिए बालिका शिक्षा का विकास तीव्र गति से नहीं हो पाया। इस सत्य को स्वीकारते हुए राज्य और केन्द्र ने सम्मिलित रूप से अनेकानेक प्रयास किए जिससे बालिकाएँ शिक्षित हो सकें। राजस्थान सरकार द्वारा कुछ प्रमुख योजनाओं को विगत दशकों में बालिका शिक्षा के लिए लागू किया गया, जिनमें से प्रमुख निम्नांकित हैं–

(1) विशेष योग्यजन छात्रवृत्ति योजना– विशेष योग्यजन छात्रवृत्ति योजना का आरम्भ वर्ष 1981 में हुआ। राजकीय एवं मान्यता प्राप्त शिक्षण संस्थानों में नियमित अध्ययनरत विशेष योग्यजन छात्र/छात्राएँ, जिनके परिवार की वार्षिक आय 2.00 लाख रुपये से अधिक न हो, ऐसे परिवारों के विशेष योग्यजन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति व उत्तर मैट्रिक कक्षाओं में सामान्य व अन्य पिछड़ा वर्ग श्रेणी के विशेष योग्यजन विद्यार्थियों को फीस पुनर्भरण की सुविधा दी जा रही है।

(2) गार्गी पुरस्कार (जूनियर योजना)– यह योजना वर्ष 1998में आरम्भ हुई। इस योजना के अन्तर्गत डाईट द्वारा आयोजित कक्षा 8 परीक्षा में पंचायत समिति एवं जिला मुख्यालय पर सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाली बालिकाओं को कक्षा 9 एवं 10 में नियमित अध्ययनरत रहने पर प्रतिवर्ष 1000 रुपये एवं प्रमाण पत्र देकर पुरस्कृत किया जाता है।

(3) शारीरिक असमतायुक्त बालिकाओं हेतु सबलता पुरस्कार– 2005–06 में आरम्भ की गई इस योजना में शारीरिक रूप से विकलांग एवं मूक बधिर तथा नेत्रहीन बालिकाएँ जो राजकीय विद्यालयों में कक्षा 9 से 12 में नियमित रूप से अध्ययनरत हैं, को 2000 रुपये की आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जाती है।

(4) कस्तूरबा गांधी बालिका आवासीय विद्यालय (केजीबीवी)– 2005–06 में इस योजना की शुरुआत हुई। वर्तमान में राज्य में कुल 200 केजीबीवी संचालित हैं। जिनमें से 186 शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े ब्लॉकों में तथा 14 कस्तूरबा गांधी आवासीय विद्यालय अल्पसंख्यक बाहुल्य शहरी क्षेत्रों में संचालित हैं।

केजीबीवी में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक तथा बीपीएल परिवारों को शिक्षा से वंचित बालिकाओं को उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6, 7 एवं 8) की गुणवत्तायुक्त शिक्षा आवासीय सुविधा सहित नि:शुल्क प्रदान की जाती है।

(5) ग्रामीण बालिकाओं के लिए ट्रांसपोर्ट वाउचर की योजना– यह योजना सन् 2007–08में आरम्भ की गई। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र के राजकीय माध्यमिक एवं राजकीय उच्च

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

माध्यमिक में कक्षा 9 से 12 में अध्ययनरत छात्राओं को उनके निवास स्थान से विद्यालय तथा विद्यालय से निवास स्थान तक आने-जाने के लिए ट्रांसपोर्ट वाउचर दिया जाना है। इस योजना के अन्तर्गत निवास स्थान से विद्यालय की दूरी 5 किमी. से अधिक होनी चाहिए तथा न्यूनतम पाँच बालिकाओं का समूह होना आवश्यक है।

(6) 75 प्रतिशत या इससे अधिक अंक प्राप्त करने वाली छात्राओं के लिए प्रोत्साहन योजना– 2008-09 में प्रारम्भ हुई इस योजना में कक्षा 12 में 75 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त करने वाली बालिकाओं को एकमुश्त 5,000 रुपये का प्रोत्साहन पुरस्कार राज्य सरकार की ओर से दिया जाता है।

(7) मुख्यमंत्री उच्च शिक्षा छात्रवृत्ति योजना– यह योजना सन् 2012 में प्रारम्भ की गई। इस योजना के अन्तर्गत अल्प आय वर्ग के प्रतिभावान विद्यार्थियों हेतु छात्रवृत्ति प्रारम्भ की गई है। जिसमें राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की 12वीं की परीक्षा में 60 प्रतिशत या अधिक अंक प्राप्त किए हों तथा जो कोई अन्य छात्रवृत्ति प्राप्त न कर रहे हों, उन्हें प्रतिमाह 500 रुपए और अधिकतम 5,000 रुपए वार्षिक, अधिकतम 5 वर्षों के लिए दिए जाते हैं।

(8) छात्राओं को नि:शुल्क साइकिल वितरण योजना– समस्त राजकीय विद्यालयों में शैक्षिक सत्र वर्ष 2015-16से कक्षा 9 में नवीन प्रवेश लेने वाली समस्त शहरी व ग्रामीण छात्राओं को साइकिल प्रदान करने की योजना का उद्देश्य, बालिका शिक्षा को बढ़ावा देना है।

राज्य सरकार द्वारा बालिका शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए विभिन्न योजनाएँ क्रियान्वित की जा रही हैं परन्तु इसके बावजूद भी यह आवश्यक हो जाता है कि बालिकाओं के प्रति गहरे पैठ में कहीं हमारे भीतर जो भेदभाव की भावनाएँ अभी भी बैठी हुई हैं, उसको हम समूल नष्ट कर दें क्योंकि बिना बालिकाओं के शैक्षणिक उन्नयन के हम, देश और समाज के विकास की कल्पना नहीं कर सकते।

बाल श्रम के विविध आयाम, बाल श्रम की समस्या एवं निराकरण–

बाल श्रम एक ऐसी समस्या है जिसका सामना सम्पूर्ण विश्व कर रहा है। बच्चों को भविष्य का निर्माणकर्त्ता स्वीकार किया गया है। यूनीसेफ अपनी रिपोर्टों में बच्चों को महत्त्वपूर्ण संसाधन के रूप में स्वीकार कर इस बात पर बल देता रहा है कि मानवीय संसाधनों के निवेश या मानव संसाधन निर्माण की प्रत्येक दीर्घकालीन योजना बच्चों से प्रारम्भ की जानी चाहिए लेकिन वास्तविकता के धरातल पर ऐसा नहीं हो पा रहा है। आज भी एक बड़ी संख्या में बच्चे मजदूरी करके अपने परिवार के लिए जीविकोपार्जन कर रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्र बाल श्रम आयोग के अध्यक्ष होमर फॉक्स ने बाल श्रम को परिभाषित करते हुए कहा था, ''बच्चों द्वारा किया जाने वाला कोई भी कार्य जिससे उनके पूर्ण शारीरिक विकास और न्यूनतम वांछित स्तर की शिक्षा के अवसरों या उनके लिए आवश्यक मनोरंजन में बाधा उत्पन्न होती है।'' (श्रम जाँच समिति मुख्य रिपोर्ट, 1946)

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार 18 वर्ष से कम आयु का श्रमिक बाल श्रमिक है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार 16 वर्ष या उससे कम आयु का श्रमिक बाल श्रमिक है। अमेरिका कानून के अनुसार 12 वर्ष या कम आयु तथा इंगलैण्ड एवं अन्य यूरोपीय देशों में 13 वर्ष या कम आयु के श्रमिकों को बाल श्रमिकों की श्रेणी में रखा गया है। भारतीय संविधान के अनुसार 5 से 14 वर्ष के बीच के बालक/बालिका जो वैतनिक श्रम करते हैं या श्रम द्वारा पारिवारिक कर्ज चुकाते हैं, बाल श्रमिक है।

बालश्रम का उद्‌भव

बालश्रम का उद्‌भव पूँजीवादी वर्ग द्वारा न्यूनतम निवेश पर अधिकतम लाभ की मानसिकता की परिणति थी चूँकि बच्चे न्यूनतम राशि में श्रम के लिए सहजता से उपलब्ध होते हैं, इसलिए उन्हें श्रम में लगाया गया। इन बाल श्रमिकों की स्थिति बदतर थी, उनका शारीरिक और मानसिक शोषण होता था। यह अमानवीय प्रथा, प्रथम बार 1853 में प्रकाश में तब आई जब इंगलैण्ड में चार्टिस्ट आंदोलन ने विश्व का ध्यान इस ओर आकृष्ट करवाया। यह वह समय था जब साहित्यकारों ने भी इस पर लिखकर विश्व को जागृत किया। इन साहित्यकारों में से प्रमुख विक्टर ह्यूगो, आस्कर बाइन्ड आदि थे, जिन्होंने बालश्रम को गम्भीरता प्रदान की।

बालश्रम की प्रवृत्ति को समाजशास्त्रियों ने मुख्यत: चार सिद्धान्तों में बाँटा है–

(i) नवपुरातनवादी सिद्धान्त– यह सिद्धान्त कहता है कि समाज बच्चों को उपयोग व निवेश की सामग्री मानता है और इसलिए उनके श्रम का उपयोग अपने स्वार्थहित के लिए करता है। ह्यूज एच.जी. लिविस, एम.टी. फेन, टी. अख्तर, डी.सी. काल्डवेल आदि विद्वान इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं।

(ii) समाजीकरण का सिद्धान्त– जी. रोजर्स, स्टेंडिंग जी. मेयर जैसे समाजवैज्ञानिक ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार बाल श्रम को पारिवारिक प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। कृषि, घरेलू उद्योग आदि इसके अन्तर्गत आते हैं।

(iii) श्रम बाजार के विखण्डन का सिद्धान्त– अविकसित देशों में पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था ने श्रम बाजार को दो हिस्सों में विभक्त किया है। बड़ा किसान तथा छोटा किसान। बाजार का, मालिक-श्रमिक सम्बन्धों के आधार पर यह विभाजन, श्रम बाजार के विखण्डन के सिद्धान्त को बताता है। इस सिद्धान्त को डी.एम. गोर्डन, सी. केट तथा एडवर्ड्स जैसे विद्वानों ने मान्यता दी है।

(iv) मार्क्सवादी सिद्धान्त– मार्क्स का विचार था कि बाल श्रम पूँजीवादी व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अंग है। नवीन तकनीक ने अकुशल तथा सस्ते श्रमिकों की माँग को बढ़ाया है। बेरोजगारी और जीविकोपार्जन के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लिए बच्चे औद्योगिक श्रमिकों के दल का हिस्सा बन जाते हैं।

बालश्रमिकों के आँकड़े– भारत में 2011 के ताजा आँकड़े हमें बताते हैं कि 5 से 9 साल की आयु के 25.33 लाख बच्चे तीन महीने से लेकर 12 महीने तक श्रम करते हैं। जनगणना 2011 के मुताबिक भारत में 5 से 14 वर्ष के आयुवर्ग में कुल 25.96 करोड़ बच्चे हैं, जिनमें से 1.01 करोड़ श्रम कर रहे हैं। राज्यवार अगर बालश्रमिकों की संख्या का विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि उत्तर प्रदेश (21.76 लाख), बिहार (10.88 लाख), राजस्थान (8.48 लाख), महाराष्ट्र (7.28 लाख) और मध्य प्रदेश (7 लाख) समेत पाँच प्रमुख राज्यों में 55.41 लाख बच्चे श्रम में लगे हुए हैं। एक बाल अधिकार संगठन का दावा है कि देश में बाल श्रम से हर वर्ष 1.20 लाख करोड़ रुपए का काला धन पैदा हो रहा है। बचपन बचाओ आंदोलन की 'कैपिटल करप्शन : चाइल्ड लेबर इन इंडिया' नामक रिपोर्ट ने यह खुलासा किया है कि देश में 6 करोड़ बाल श्रमिक हैं।

बालश्रम का विस्तार–

बालश्रमिकों के व्यवसाय को मुख्य तौर पर चार वर्गों में बाँटा जा सकता है–(अ) कृषि (ब) निर्माण (स) व्यापार एवं (द) घरेलू एवं वैयक्तिक सेवा।

बालश्रम के सबसे ज्यादा दोष असंगठित उद्योगों और कारखानों में पाये जाते हैं जहाँ ज्यादातर बच्चे काम करते हैं। अनेक ऐसे उद्योग हैं जहाँ बच्चे अपने जीवन की कोमलता खो रहे हैं–

- शिवाकाशी (तमिलनाडू) में दियासलाई उद्योग
- जयपुर (राजस्थान) में बहुमूल्य पत्थर पॉलिश उद्योग,
- टाइल उद्योग–जग्गमपेट (आंध्रप्रदेश),
- मत्स्य उद्योग–केरल,
- हथकरघा उद्योग–तिरुवनंतपुरम्, विरुपुर, कांजीपुरम् एवं चिंनालमपट्टी,
- बीड़ी उद्योग–त्रिशूर (केरल), तिरुचिरापल्ली (तमिलनाडू),
- कालीन उद्योग–भदोही, मिर्जापुर पट्टी क्षेत्र (उत्तर प्रदेश), राजस्थान एवं जम्मू कश्मीर,
- काँच उद्योग–फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश),
- चीनी मिट्टी के बर्तन–खुर्जा (उत्तर प्रदेश),
- ताला उद्योग–अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)।

बालश्रम के कारण–

अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर बालश्रम रोकने के लिए अनेक कानून बनाए गए हैं। इन पर रोक लगाने के लिए अनेक सम्मेलनों से लेकर बहसों का सिलसिला कायम है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यहाँ उपजता है कि क्यों, विश्व मानचित्र में आर्थिक सुदृढ़ीकरण की मिसाल बन चुका भारत, नन्हें बच्चों के 'श्रम के दोहन' का अपराधी बना बैठा है। सामान्यत: कुछ कारण ऐसे हैं जिनके कारण बालश्रम के समाप्ति के अनेकानेक प्रावधान होने के बावजूद भी बालश्रम देश में आज भी व्याप्त है–

(i) आर्थिक विवशता– गरीबी जो कि विकासशील देशों में व्यापक रूप से फैली हुई है, इस समस्या की प्राथमिक जड़ है। श्रम बाजार में बाल श्रमिकों की माँग है इसलिए अभिभावक, अपने बच्चों को उद्योगों से लेकर कृषि कार्य हेतु श्रम करने के लिए भेज देते हैं।

(ii) परिवार का बड़ा आकार होना– ऐसे परिवार जहाँ सदस्यों की संख्या अधिक होती है वहाँ एक व्यक्ति की आमदनी से परिवार चलाना कठिन और दुष्कर कार्य होता है ऐसी स्थिति में बच्चों की आय परिवार की आजीविका का स्रोत बनती है।

(iii) सस्ता श्रम होना– अनेक शोध यह स्पष्ट करते हैं कि जितना नियोक्ता एक वयस्क श्रमिक पर खर्च होता है, उसकी तुलना में मामूली सी रकम चुकाकर वह बाल श्रमिकों से कार्य लेता है। यह विभिन्न अध्ययन बताते हैं कि बालश्रमिकों को मात्र 20 रुपए प्रतिदिन खर्च करके नियोक्ता लाखों का लाभ कमा रहे हैं, वहीं वयस्कों की यूनियन, उनके अधिकारों के प्रति सजगता और शोषण के विरुद्ध आवाज से भी उन्हें मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

(iv) सामाजिक ढाँचा– भारतीय समाज में विशेषकर ग्रामीण परिवेशम`अ ल्पायुम`ि ववाहह ोज ातेह`,ि जसकेच लतेप ारिवारिक दायित्वों का भार, गरीबी तथा धन की जीविकोपार्जन हेतु आवश्यकता भी बालश्रम का कारण बनती है।

बालश्रम के दुष्प्रभाव–

बालश्रम का प्रत्यक्ष रूप से बच्चों के स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। जहाँ माचिस एवं आतिशबाजी उद्योगों में लगे बालश्रमिक पोटेशियम क्लोरेट, फॉस्फोरस एवं जिंक ऑक्साइड जैसे विषैले एवं खतरनाक रसायनों के बीच काम करते हैं, वहीं मेघालय की निजी खदानों में बच्चे 90 सेंटीमीटर व्यास के छोटे-छोटे गड्ढों में काम करते हैं। काँच उद्योग में लगे हुए बच्चे 700 डिग्री सेल्सियस के तापमान वाली भट्टी के इर्द-गिर्द काम करने को मजबूर हैं। इतनी विकट एवं वीभत्स दशाओं में काम करने के परिणामस्वरूप ये बाल श्रमिक टी.बी., कैंसर, साँस की बीमारी, चर्म रोग, फोटोबिया, दमा जैसी अनेक बीमारियों के शिकार हो रहे हैं।

बालश्रम में संलग्न बच्चों के सिर्फ स्वास्थ्य को ही हानि नहीं पहुँचती बल्कि साथ ही साथ उनके सामाजिक एवं मानसिक विकास को भी क्षति पहुँचती है। मैरिल का मानना है कि आय कम होने के कारण बच्चों को भी काम करना पड़ता है जिससे उनकी शिक्षा नहीं हो पाती। गरीबी के कारण इन बाल श्रमिकों की अनेक इच्छाएँ पूरी नहीं होने से वे अपराधों का आश्रय लेते हैं। सभी मनोवैज्ञानिक व अपराधशास्त्री बालश्रम का बाल अपराध से घनिष्ठ सम्बन्ध मानते हैं।

बालश्रम के मुद्दे पर सरकार की नीति–

बालश्रम समिति– सर्वप्रथम 1979 में सरकार ने बालश्रम की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समस्या के अध्ययन और उससे निपटने के लिए उपाय सुझाने हेतु गुरुपादस्वामी समिति नामक समिति का गठन किया था। समिति ने विस्तार से समस्या का परीक्षण किया और कुछ दूरगामी सिफारिशें की। समिति का विचार था कि जब तक देश में गरीबी रहेगी तब तक बालश्रम को समूल नष्टक रनास हजन हींह ैइ सलिएव ैधानिकप्ऱावधानोंके म ाध्यमोंस े बालश्रम को पूर्णतया समाप्त करने का प्रयास व्यावहारिक प्रस्ताव नहीं होगा। समिति का यह विचार भी था कि इन परिस्थितियों में खतरनाक क्षेत्रों में बालश्रम पर प्रतिबंध लगाना और अन्य क्षेत्रों में कार्यकारी परिस्थितियों को विनियमित करना और उनमें सुधार लाना ही एकमात्र विकल्प है। समिति ने सिफारिश की कि कामकाजी बच्चों की समस्याओं से निपटने के लिए विविध-नीति दृष्टिकोण की जरूरत है। गुरुपादस्वामी समिति की सिफारिशों के आधार पर, 1986में बालश्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम लागू किया गया। इस दृष्टिकोण के अनुरूप 1987 में बालश्रम पर एक राष्ट्रीय नीति तैयार की गई। बालश्रम समिति ने अपनी रिपोर्ट में इस बात पर विशेष बल दिया कि काम पर लगे बच्चों की समस्याओं से निपटने के लिए एक बहुल नीति दृष्टिकोण अपनाये जाने की आवश्यकता है। समिति ने सिफारिश की कि बालश्रम को रोकने तथा उनका नियमन करने के लिए वर्तमान में जो कानून प्रचलित हैं उसके स्थान पर एक विस्तृत तथा व्यापक कानून बनाये जाने की आवश्यकता है तथा किसी भी कार्य में बच्चों के प्रवेश की न्यूनतम आयु को बढ़ाकर 15 वर्ष कर दिया जाना चाहिए।

सितम्बर, 1990 में श्रम मंत्रालय तथा यूनिसेफ की सहायता से राष्ट्रीय श्रम संस्था में एक बालश्रम सेल खोला गया है जिसका उद्देश्य बालश्रमिकों के सम्बन्ध में जानकारी एकत्र करना तथा उनकी मुक्ति हेतु प्रयास करना है।

बाल श्रम उन्मूलन के लिए सरकार द्वारा विधायी नीति

रोकथाम–

- बालश्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम 1986, 18 व्यवसायों और 65 प्रक्रियाओं में 14 वर्ष की आयु से कम उम्र के बच्चों के रोजगार पर प्रतिबंध लगाता है।
- अधिनियम के तहत अनुसूची में और व्यवसायों तथा प्रक्रियाओं को शामिल करने का परामर्श देने के लिए एक तकनीकी सलाहकार समिति का गठन किया गया है।
- अधिनियम की धारा 3 के प्रावधानों के उल्लंघन में किसी भी बच्चे को नियोजित करने वाला कोई भी व्यक्ति कारावास सहित दंड का भागी होगा, जिसकी अवधि तीन महीने से कम नहीं होगी, पर जो एक वर्ष तक बढ़ाई जा सकती है या जुर्माना जो 10,000 रुपए से कम नहीं होगा लेकिन जिसे 20,000 रुपए तक बढ़ाया जा सकता है या कारावास तथा जुर्माना, दोनों सजा पा सकता है। (धारा 14)

प्रावधान– भारत के संविधान में निम्नलिखित अनुच्छेदों के द्वारा बाल श्रमिकों को उनके नारकीय जीवन से मुक्ति दिलाने हेतु राष्ट्र द्वारा प्रयास किया गया है–

अनुच्छेद 23–मानव दुर्व्यवहार एवं बलात् श्रम का प्रतिरोध– इस अनुच्छेद के माध्यम से मानव का दुर्व्यवहार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात्श्रम प्रतिबंधित किया गया है।

अनुच्छेद 24–कारखानों में बालकों के नियोजन का प्रतिबंध– अनुच्छेद 24 में, चौदह वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जायेगा।

कारखाना एक्ट 1922– इस एक्ट के अनुसार 15 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को बच्चा माना गया, काम करने की अवधि (आधे घंटे के विश्राम मध्यान्तर सहित) 6 घंटे नियत की गयी है।

कारखाना एक्ट 1948– 14 वर्ष की आयु होने पर ही किसी व्यक्ति को काम पर रखा जा सकता है। काम के घण्टे 4½ मध्यान्तर सहित 5 घंटे कर दिए गये।

खान एक्ट 1962– इस एक्ट के तहत 15 वर्ष से कम आयु के बच्चों को खान में किसी भी भाग में चाहे यह भूमिगत हो या खुले में खुदाई का कार्य हो, काम पर रखना मना किया है।

भिक्षावृत्तिए क्ट,ब ागानश्र ामिकए क्ट1 951 के अन्तर्गत रोजगार के लिए न्यूनतम आयु 22 वर्ष रखी गयी है।

बाल श्रमिक (निषेध तथा नियमन) अधिनियम 1986– इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य यह है कि कुछ रोजगारों में उन बालकों पर काम पर लगाने से रोका जाये जिन्होंने 14 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है तथा अन्य रोजगारों में बालकों की कार्य करने की दशाओं का नियमन किया जाये। अधिनियम में इस बात का भी प्रावधान है कि कोई भी बालक रात्रि के 7 बजे से प्रात: 8बजे के बीच काम पर नहीं लगाया जाये।

इस अधिनियम में पारिवारिक काम-धंधे या मान्यता प्राप्त स्कूल पर आधारित गतिविधियों को छोड़कर बच्चों से निम्न तरह के व्यवसायों में काम करने की मनाही है–

(क) रेलवे द्वारा या माल या डाक का यातायात,
(ख) रेलवे परिसर में राख में से कोयले के टुकड़े बीनना, राख के गड्ढों की सफाई,
(ग) रेलवे में खान-प्रबन्ध की संस्थाएँ,
(घ) रेलवेस् टेशनोंय ा र ेलल ाइनोंक े ब ाुतप ासि निर्माणस े सम्बन्धित कार्य,
(ङ) बन्दरगाह।

निम्नलिखित उद्योगों में भी बालकों को काम पर लगाना प्रतिबंधित है–बीड़ी बनाना, कालीन बुनना, सीमेंट बनाना व उसे बोरियों में भरना, कपड़ों की छपाई, रंगाई, अभ्रक काटना तथा उसे कूटना, दियासलाइयाँ बनानात थाि वस्फोटव अ ातिशबाजीक ास ामानत ैयारक रना,स ाबुन बनाना, भवन निर्माण उद्योग, चमड़ा रंगना तथा ऊन साफ करना।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बालश्रम (निषेध एवं नियमन) संशोधन–म ई,2 015क ो बालश्रम अधिनियम (निषेध एवं नियमन) 1986 को संशोधित किया गया। इस संशोधन के पश्चात् बच्चों को सिर्फ जोखिम रहित पारिवारिक उपक्रम, टेलीविजन सीरियल, फिल्म, विज्ञापन और खेल की गतिविधियों (सर्कस को छोड़कर) से जुड़े कामों में ही रखा जा सकता है। इसके साथ एक शर्त है कि बच्चों से ये काम स्कूल की अवधि के बाद ही कराए जायेंगे।

बालश्रम एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण एवं निराकरण–

बालश्रम के सम्बन्ध में, अनेक संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद, बालश्रम आज भी भारत में व्याप्त है। यह देश के संवेदनशील वर्ग के लिए चिन्ता का विषय है। आमतौर पर 'बालश्रम' का प्रश्न उठते ही कानून की धीमी गति और प्रशासन की ढिलाई की ओर अंगुली उठ जाती है पर क्या कानून महज मात्र से इस समस्या से मुक्ति मिल सकती है या फिर बाल श्रमिकों का भविष्य सुरक्षित हो सकता है? 1990 के दशक में अमेरिका ने जब नेपाल से कालीन के आयात पर प्रतिबंध लगा दिया था तो कालीन व्यवसाय से जुड़े सैकड़ों बच्चे अशोभनीय कार्यों से जुड़ गए और कुछ इसी तरह बांग्लादेश के कपड़ा उद्योग में संलग्न बच्चों ने पत्थर तोड़ने जैसे जोखिम भरे कार्य शुरू किये। यह तय है कि जब भी बच्चों को उनके कार्य से दूर करने की चेष्टा, उनमें जुड़े हुए पहलुओं को अनदेखा करके की जाएगीत ेउ सकेप रिणामन कारात्मकह ेंगे ेक ानून–मात्रब नाद`नेस` बालश्रम की समस्या से नहीं निपटा जा सकता क्योंकि निर्धनता और परिवार का बड़ा आकार ऐसे दो कारण हैं जो नन्हें बच्चों को अनचाहा श्रम करने के लिए विवश करते हैं। महत्त्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि लगभग सभी बाल श्रमिकों को कार्य करने के लिए अपने अभिभावकों की सहमति प्राप्त होती है या इससे भी कहीं अधिक वे अपने अभिभावकों को आर्थिक संबलता देने के माध्यम बनते हैं। सच तो यह है कि बालश्रमिकों की आर्थिक एवं भावनात्मक विवशताएँ इतनी गहरी हैं कि उनके लिए आजीविका को ठुकराना मुश्किल है। दरअसल बालश्रम मुक्तभारत के लिए एक ऐसी कार्यनीति की आवश्यकता है जो निवारक, उपचारात्मक और पुनर्वासात्मक हो।

बुद्धिजीवी वर्ग का एक बड़ा तबका यह मानकर चलता है कि यदि बालश्रमिकों को शिक्षित कर दिया जाये तो बालश्रम की समस्या से निजात मिल सकती है परन्तु सच इससे परे है क्योंकि मात्र किताबी शिक्षा आर्थिक समस्याओं से जूझ रहे बच्चों के लिए रोजगार की गारंटी नहीं दे सकती, इसलिए आवश्यकता एक ऐसी रोजगारोन्मुखी कार्यक्रम की है जो शिक्षा के साथ–साथ किसी ऐसे शिल्प में बच्चों को पारंगत करे कि उनका भविष्य उज्जवल हो सके, परन्तु यह शिक्षा बिना किसी व्यवधान के चल सके, इसलिए जरूरी है कि इस अवधि में, उनके अभिभावकों को रोजगार दिलवाया जाए वरना वे अपनी आर्थिक विवशताओं का बोझ अपने बच्चों केक` धेप रड ालद`गे ेब ालश्रमउ न्मूलनके ि लएज ागरूकताब ढ़ाने, सामुदायिक भागीदारिता, वैकल्पिक एवं सक्षम सामाजिक आर्थिक पुनर्वास की आवश्यकता है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु–

हमने इस अध्याय में भारत एवं राजस्थान में महिलाओं की स्थिति एवं सामाजिक चेतना तथा राज्य में बालिका शिक्षा के बारे में जाना। इसके साथ हमने बालश्रम की समस्याओं को जाना। इनके महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को पुन: दोहराए जाने की आवश्यकता है–

- भारतीय संस्कृति के उन्मेषकाल में नारी की मान प्रतिष्ठा को पुरुषों के समानान्तर ही स्वीकार किया गया था।
- मध्यकाल, स्त्रियों के सर्वस्व अधिकारों के हनन का काल था।
- राजाराममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे समाज–सुधारकों ने स्त्रियों की प्रस्थिति के उन्नयन के लिए प्रयास किए।
- राजस्थान में मध्यकाल में बालविवाह, पर्दाप्रथा, कन्यावध जैसी प्रथाओं ने राज्य की महिलाओं को उनके मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया था।
- 1887 में 'वाल्टरकृत राजपूतहितकारिणी सभा' का गठन कर राज्य प्रतिनिधियों के प्रतिनिधित्व में, बहुपत्नी विवाह तथा विवाह की आयु तय करने के प्रतिबंध के प्रस्ताव पारित किए गए।
- राज्य सरकार के निरन्तर प्रयासों के चलते राज्य में विवाह की औसत आयु 19.7 वर्ष (AHS 2010-11 के अनुसार) तक बढ़ गई है।
- सन् 1993 में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को आरक्षण प्राप्त हुआ।
- एनएफएचएस (IV) के आँकड़ों के मुताबिक देश में 18 साल या उससे कम उम्र में बेटियों के विवाह के मामलों में गिरावट आई है। इस सर्वेक्षण के मुताबिक बैंक खाता रखने वाली 15–49 आयुवर्ग की महिलाओं में भी वृद्धि दर्ज की गई।
- वर्ष 2003–04 और 2011 के मध्य महिला शिक्षिकाओं के अनुपात में 24.18 प्रतिशत से 30.15 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।
- राज्य की महिला साक्षरता दर केवल 52.66 प्रतिशत है जो कि भारत के कई राज्यों से ही कम नहीं है अपितु भारत की महिला साक्षरता दर के राष्ट्रीय औसत 65.54 प्रतिशत से भी कम है।
- भारत में 2011 के आँकड़े हमें बताते हैं कि 5 से 9 साल की आयु के 25.33 प्रतिशत बच्चे वर्ष में 3 माह से लेकर 2 माह तक श्रम करते हैं।
- भारतीय संविधान के अनुसार 5 से 14 वर्ष के बीच के बालक/बालिका जो वैतनिक श्रम करते हैं या श्रम द्वारा पारिवारिक कर्ज चुकाते हैं, बाल श्रमिक हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- बालश्रम का कारण गरीबी, परिवार का बड़ा आकार, सस्ता श्रम तथा सामाजिक ढाँचा मुख्य रूप से है।
- 1986 में बालश्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम लागू किया गया।
- मई, 2015 में बालश्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम में संशोधन किया गया।

अभ्यासार्थ प्रश्न–

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. ब्रह्म समाज की स्थापना किस वर्ष में हुई?

   (अ) 1828 (ब) 1820

   (स) 1819 (द) 1825

2. हिन्दू विवाह अधिनियम कब पारित हुआ?

   (अ) 1976 (ब) 1946

   (स) 1937 (द) 1955

3. किसकी अध्यक्षता में 'देश हितैषिणी सभा' की स्थापना की गई?

   (अ) महाराणा सज्जन सिंह

   (ब) महाराणा रतन सिंह

   (स) महाराणा जय सिंह

   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

4. ऑल इंडिया वूमेन्स कॉन्फरेन्स की स्थापना किस सन् में हुई?

   (अ) 1929 (ब) 1920

   (स) 1919 (द) 1918

5. 1866में ह्यूसन गर्ल्स स्कूल किस राजा ने खोला था?

   (अ) महाराणा सज्जन सिंह

   (ब) राजा कुमार सरदार सिंह

   (स) महाराणा जय सिंह

   (द) महाराणा रतन सिंह

6. बाल श्रमिकों के व्यवसाय को मुख्य तौर पर कितने वर्गों में बाँटा गया है?

   (अ) पाँच (ब) चार

   (स) तीन (द) छः

7. मानव दुर्व्यवहार एवं बलात् श्रम का प्रतिरोध किस अनुच्छेद में किया गया है?

   (अ) अनुच्छेद 24 (ब) अनुच्छेद 23

   (स) अनुच्छेद 28 (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. भारतीय संस्कृति के किस काल में नारी की प्रतिष्ठा को पुरुषों के समानान्तर ही स्वीकार किया गया था?
2. के.एम. पणिक्कर की पुस्तक का नाम लिखें।
3. 'ब्रह्म समाज' की स्थापना किसने की थी?
4. बाल विवाह नियंत्रण अधिनियम (शारदा एक्ट) कब पारित हुआ?
5. भारत के संविधान के किस संशोधन में महिलाओं को पंचायती राज व्यवस्था में आरक्षण प्राप्त हुआ?
6. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (IV) के अनुसार किस राज्य की महिलाओं के पास सर्वाधिक स्वयं का बैंक खाता है?
7. राज्य की महिला साक्षरता दर वर्तमान में कितनी है?
8. 'श्री सावित्री कन्या पाठशाला' की स्थापना कब और कहाँ हुई?

1\. 'राजस्थान महिला विद्यालय' की स्थापना किसने की थी?

10\. भारतीय संविधान के अनुसार किस आयु के बच्चे बालश्रमिक माने जाते हैं?

11\. बालश्रम (निषेध एवं विनियमन) अधिनियम किस सन् में लागू हुआ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. अथर्ववेद में नारी की प्रस्थिति की विवेचना जिन शब्दों में की गयी है, लिखें।
2. प्रथम भक्ति आंदोलन का आरम्भ किसने और कब किया?
3. प्रमुख स्त्री संगठनों के नाम लिखें।
4. दसवीं पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के लिए क्या प्रावधान प्रमुख था?
5. राजस्थान में विधवा दहन को तत्कालीन किन-किन राज्यों ने गैरकानूनी घोषित किया था?
6. किस राजा ने, कहाँ और किनसे बेटियों का वध न करने की शपथ दिलवाई?
7. महिला मताधिकार की माँग भारत में कब और किस समय स्वीकार की गई?
8. राजस्थान में आरम्भिक दो बालिका विद्यालय कहाँ और कब खोले गए?
9. मुख्यमंत्री उच्च शिक्षा छात्रवृत्ति योजना क्या है?
10. बालश्रम के प्रमुख सिद्धान्तों के नाम लिखें।
11. सर्वप्रथम बालश्रम की समस्या हेतु कब और कौन सी समिति गठित हुई?
12. कारखाना एक्ट, 1948 क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करें।
2. राजस्थान की महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु क्या-क्या प्रयास

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हुए?

3. सामाजिक चेतना से आप क्या समझते हैं? क्या भारत की महिलाएँ अपनेर ाजनैतिकए वंस ामाजिकअ धिकारोंके प्रतिज ागृतहैं? उदाहरण सहित लिखें।
4. राजस्थान में बालिका शिक्षा के लिए कौन-कौनसी योजनाएँ हैं? विस्तार से लिखें।
5. स्वतंत्रता के पश्चात् राजस्थान में बालिका शिक्षा की स्थिति के बारे में लिखें।
6. बालश्रम के कारण एवं दुष्प्रभावों की चर्चा करें।

उत्तरमाला

1. (अ) 2. (द) 3. (अ) 4. (अ) 5. (ब)
6. (ब) 7. (ब)।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 9

जनसंचार, सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक आन्दोलन

अध्ययन बिन्दु : भाग I

- जनसंचार का अवधारणात्मक पक्ष
- जनसंचार की संरचना
- जनसंचार एवं सामाजिक परिवर्तन
- जनसंचार का महत्व

अध्ययन बिन्दु : भाग II

- सामाजिक आन्दोलन
- राजस्थान में बिजौलिया का किसान आन्दोलन
- राजस्थान में जनजातीय आन्दोलन (भगत आन्दोलन)
- राजस्थान में पर्यावरण आन्दोलन (खेजड़ली)
- अन्य सामाजिक आन्दोलन

प्रस्तुत अध्याय को दो भागों में विभाजित किया है। प्रथम भाग में जनसंचार एवं सामाजिक परिवर्तन की विवेचना करेंगे तथा दूसरे भाग में समाजिक आन्दलोनों के बार में चर्चा करेंगे। अध्ययन से आप जान पाएँगे कि–

- जनसंचार किसे कहते हैं? इसका अर्थ क्या है?
- जनसंचार को सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण पहलू क्यों कहा जाता है?
- सामाजिक आन्दोलन का अर्थ क्या है तथा इसके आवश्यक तत्व क्या होते हैं?
- राजस्थान के तीन महत्वपूर्ण आन्दोलनों के बारे में समझ पाएँगे।
- अन्य सामाजिक आन्दोलनों के बारे में संक्षिप्त जानकारी कर सकेंगे।

अब हम इस अध्याय के प्रथम भाग की विस्तृत विवेचना करेंगे। प्रारम्भ में यह स्पष्ट कर लेना आवश्यक है कि जन संचार और सामाजिक आन्दोलनस ामाजिकप रिवर्तनल ानेम ेंम हत्वपूर्णभ ूमिका निभातेह ैं। अर्थात् जनसंचार, सामाजिक आन्दोलन और सामाजिक परिवर्तन इन तीनों में अन्तर्सम्बन्ध है। ये तीनों ही एक दूसरे पर निर्भर भी हैं। हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न आयामों की विवेचना में संचार और सामाजिक आन्दोलन का अपना महत्व है।

जनसंचार एक माध्यम है जिसके द्वारा संदेश, सूचना एवं विचार आमल ोगोंत कप हुंचतेह ैं इ सीस ेप्र भावितह ोकरल ोगस ामाजिक आन्दोलन के प्रति जागरूक होते हैं। साथ ही सामाजिक आन्दोलन जब घटित होते हैं तो इनके परिणाम को हम सामाजिक परिवर्तन के रूप में देखते हैं। इसी बात को हम दूसरे शब्दों में भी प्रकट कर सकते हैं।

अर्थात् सामाजिक परिवर्तन लाने के लिये किसी महत्वपूर्ण मुद्दे के बारे में जनसाधारण की भागीदारी आवश्यक होती है। इस भागीदारी के लिए लोगों से सम्पर्क करना आवश्यक हो जाता है। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि सम्पर्क प्रत्यक्ष भी हो सकता है अथवा अप्रत्यक्ष भी, लेकिन बिना सम्पर्क के भागीदारी असंभव हो जाती है।

वर्तमान में तो विद्वान और प्रौद्योगिकी ने जन सम्पर्क एवं जनसंचार के साधनों में क्रान्तिकारी बदलाव करके इनकी गति को बहुत ही तीव्र कर दिया है। जनसंचार की गति अब वैश्विक स्तर की है। कुछ ही क्षणों में सभी प्रकार के संदेश, सूचनाएँ एवं विचारों को सर्वत्र प्रेषित किया जा सकता है। जब जनसंचार की गति इतनी तीव्र हो गई है तो सामाजिक आन्दोलन भी न्यूनतम समय में अपना प्रभाव प्रकट कर देते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि जनसंचार के साधन सामाजिक परिवर्तन के वाहक हैं। अत: जनसंचार, सामाजिक आन्दोलन और सामाजिक परिवर्तन अन्तर्सम्बन्धित प्रघटनाएं हैं।

सबसे पहले हम जनसंचार के अवधारणात्मक पक्ष को समझने का प्रयास करेंगे।

जनसंचार का अवधारणात्मक पक्ष

जब कोई संदेश या समाचार किसी माध्यम से आमजन तक पहुंचाया जाता है, तो इसे जनसंचार कहा जाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से जनसंचार एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सूचनाओं, संदेशों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है।

जार्ज सीमेल ने जनसंचार की अवधारणा की व्याख्या करते हुए लिखा है कि जनसंचार के ये साधन उन लोगों के मूल्यों और मनोवृत्तियों को प्रभावित करते हैं जो इनका प्रयोग करते हैं दूसरी ओर आम लोगों के मूल्य एवं उनकी मनोवृत्तियाँ भी जनसंचार के साधनों को प्रभावित करते हैं। लारसेन ने जनसंचार का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि किसी अवैयक्तिक साधन से अपेक्षाकृत बहुत से जनों को एक ही समय में किसी संदेश का प्रेषण। ये सभी अवैयक्तिक साधन तकनीक (प्रेस, रेडियो,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

टेलीविजन, सिनेमा) से सीधे ही अपने श्रोताओं, पाठकों और दर्शकों को अपना संदेश देते हैं। ये संदेश नियमित भी होते हैं और तात्कालिक भी।

जनसंचार साधनों के लिए तीन बातें महत्वपूर्ण हैं–

(1) दिये जाने वाले संदेश के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट हो (2) अपेक्षा के अनुसार ही लोग संदेश को और (3) लोग उस संदेश के बारे में अपनी प्रतिक्रिया देने में सक्षम हों।

जनसंचार की अवधारणात्मक विवेचना से स्पष्ट है कि जनसंचार एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, इससे आम लोगों को वैचारिक रूप से प्रभावित किया जा सकता है। उनकी मनोवृत्तियों एवं व्यवहारों में भी परिवर्तन की अपेक्षा की जा सकती है।

जनसंचार की संरचना– जनसंचार की क्रिया को हम व्यवस्थित रूप में समझने के लिये इसकी संरचना की चर्चा करेंगे। जनसंचार की भी एक विशिष्ट संरचना होती है। इस संरचना का निर्माण विभिन्न इकाइयों से होता है। जनसंचार की पहली इकाई स्रोत के रूप में होती है। स्रोत से तात्पर्य विचार की उत्पत्ति, घटना का घटित होना अथवा प्रकटीकरण। जैसे किसी धार्मिक उपदेशक द्वारा प्रवचन देना, राजनेता का भाषण, अलगाववादी का भड़काऊ बयान अथवा कोई अवाँछनीय अथवा असामाजिक कृत्य करना। ये सब जनसंचार के स्रोत कहे जाते हैं जो कि किसी विचार संदेश या समाचार का उत्पति स्थल है। यही जनसंचार की प्रथम इकाई है।

जनसंचार संरचना की दूसरी इकाई है संदेश जो कि प्रतीकात्मक हो सकता है अथवा भाषा के रूप में हो सकता है। इसे हम विषय वस्तु कहते हैं। यह किसी कथन के रूप में होता है अथवा प्रत्यक्ष घटित होने वाली घटना हो सकती है। जैसे प्रवचन में सामाजिक मूल्यों की बात करना, प्रेरक प्रसंग सुनना, राजनेता के भाषण में भावी कल्याणकारी योजनाओं का उल्लेख करना हो सकता है। इसी प्रकार किसी समुदाय विशेष के प्रति टिप्पणी करना, हिंसा के लिये भड़काना, किसी के साथ अभद्र व्यवहार एवं मारपीट करना, कानून को हाथ में लेकर अराजकता फैलाना आदि। ये सभी उदाहरण एक संदेश के रूप में हैं। अर्थात् जनसंचार संरचना की दूसरी इकाई है।

अब तीसरी इकाई की चर्चा करें जो कि गंतव्य अर्थात लक्ष्य के रूप में है। गंतव्य अथवा लक्ष्य से तात्पर्य उस जनसमूह से है जिसके लिए संदेश प्रेषित किया तथा जिसके लिए विचार उत्पन्न हुआ। हम इसे यूं समझें कि स्रोत से चलकर संदेश के माध्यम से लक्ष्य की ओर पहुँचना। जनसमूह के विचारों, क्रियाओं, अन्तर्क्रियाओं और व्यवहारों को प्रभावित कर देना, उनमें परिवर्तन लाने के लिए उन तक पहुंचा देना ही जनसंचार है जो कि क्रमश: तीन इकाइयों से निर्मित होता है।

जनसंचार के संरचनात्मक पक्ष को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं–

स्रोत–	संदेश–	लक्ष्य/गंतव्य
विचार, आदेश,	विषयवस्तु	जनसमूह तक पहुंचना
घटनाक्रम	प्रत्यक्ष घटना	पढ़ना/देखना
	अखबार में प्रकाशन	
	टीवी पर प्रसारण	

जनसंचार एवं सामाजिक परिवर्तन

संचार मानव समाज की उत्पत्ति के बाद सामाजिक अन्तर्क्रियाओं एवं सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर विकसित होने वाली एक प्रक्रिया है।

मानवीय अन्तर्सम्बन्धों के विविध स्वरूपों के साथ जनसंचार के साधनों का विकास होता रहा है, लेकिन विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने जनसंचार के साधनों में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर इन्हें अत्यधिक उन्नत कर दिए हैं।

यदि हम संचार के साधनों के विकास का क्रम देखें तो ज्ञात होता है कि सबसे पहले छापाखाने (प्रिन्टिंग प्रेस) का आविष्कार हुआ। इसके द्वारा संदेश, सूचना एवं विचार को पुस्तकों, पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों के माध्यम से आमजन तक पहुंचाने के प्रयास हुए। इसे प्रिन्ट मीडिया कहा जाता है। इसमें भी तकनीकी के विकास के साथ अनेक परिवर्तन हुए। आज तो छापने की तकनीक इतनी विकसित हो चुकी है कि कम से कम समय में अधिकतम सामग्री को प्रकाशित किया जा सकता है।

प्रिन्ट मीडिया के बाद इलेक्ट्रॉनिक मीडिया है। इसके अन्तर्गत सबसे पहले रेडियो ही इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का साधन था, लेकिन विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में भी नई–नई तकनीक से नये–नये साधन विकसित कर दिये। टेलीविजन इनमें एक महत्वपूर्ण साधन था। इसके बाद 21वीं सदी अपने साथ इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर और संचार को और अधिक विकसित एवं व्यापक स्तर पर ले आई। आज हम संचार के जिन साधनों का प्रयोग करते हैं इनमें इन्टरनेट सबसे अधिक सशक्त साधन है।

वैश्विक स्तर पर आर्थिक दृष्टि से कुछ देश विकसित हैं कुछ विकासशील हैं और कुछ विकास की दौड़ में पीछे हैं, लेकिन संचार की दृष्टि से तो अब लगभग सभी देश एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। हम परिवर्तन की चर्चा करेंगे, तो कई क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन की गति में अब इतना अन्तर नहीं रह गया है।

जनसंचार का महत्व– जैसा कह मस पष्टक रचुकेहैं कि सामाजिक परिवर्तन के साथ जनसंचार के साधन भी जुड़े हुए हैं। अत: जनसंचार के साधन सामाजिक परिवर्तन के लिये महत्वपूर्ण हैं। इसी कारण से जनसंचार के साधनों का अध्ययन समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए भी आवश्यक है।

पूर्व के अध्यायों में आपने सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन की अवधारणाओं एवं अन्य पहलुओं को समझा है। इसी क्रम में यह भी समझ में आ गया कि मानवीय क्रियाएँ और अन्तर्क्रियाएँ ही सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन का आधार होती हैं। अर्थात् मानवीय क्रियाओं और

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अन्तर्क्रियाओं को संचार माध्यम प्रभावित कर सकते हैं। इसमें परिवर्तन भी ला सकते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि मानवीय व्यवहारों को संचार के साधन प्रभावित कर रहे हैं।

हमारा देश सांस्कृतिक विविधता वाला देश है। एक स्थान पर घटित होने वाली घटना समूचे देश को प्रभावित कर देती है। इसका कारण केवल संचार माध्यम है। संचार माध्यम भावनाओं को उकसाने में भी अपनी भूमिका निभाते हैं और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिए संदेश और समाचार प्रेषित करते हैं। देश में स्वतंत्रता आन्दोलन चला था उस समय सम्पूर्ण देशवासियों में राष्ट्रभक्ति की भावना को जागृत करने में संचार साधनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। समसामयिक राष्ट्रहित विषयों पर भी कई बार वैचारिक भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। संचार साधनों से आमजन भी अपनी धारणाओं को बदलकर उचित दिशा में परिवर्तन का निर्णय लेते हैं।

संचार साधनों की भूमिका का महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है। एक तरफ नकारात्मक विचार, समाचार या संदेश संचार माध्यमों से प्रसारित होते हैं, तो दूसरी तरफ सकारात्मक विचार, समाचार या संदेश भी प्रसारित होते हैं। सामाजिक परिवर्तन तो दोनों ही स्थितियों में आता है। क्योंकि सामाजिक परिवर्तन अवश्यंभावी है अत: संचार के महत्व को भी देश, काल और परिस्थिति के आधार पर समझा जाता है।

सामाजिक आन्दोलन

सामाजिक परिवर्तन के कारणों और प्रभावों के सन्दर्भ में सामाजिक आन्दोलन एक महत्वपूर्ण प्रघटना है। समाज में जब कई लोग इच्छित परिवर्तन लाने के लिए सामूहिक प्रयास करते हैं तो इसे सामाजिक आन्दोलन कहा जाता है। इस प्रकार के सामूहिक प्रयास से प्रचलित समाज व्यवस्था प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष से प्रभावित होती है।

सामाजिक आन्दोलन के अवधारणात्मक पहलू को अच्छी प्रकार से समझने के लिए हम इसके आवश्यक तत्वों की विवेचना करेंगे। उसके बाद राजस्थान में हुए कुछ उल्लेखनीय सामाजिक आन्दोलन एवं अन्य समाज सुधार आन्दोलन की चर्चा करेंगे।

सामाजिक आन्दोलन के आवश्यक तत्व

सामाजिक आन्दोलन को विस्तार से समझने के लिए इससे सम्बन्धित कुछ आवश्यक तत्वों के बारे में बताने का प्रयास करेंगे। ये सभी तत्व सामाजिक आन्दोलन की उत्पत्ति एवं इसकी प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं।

1. स्रोत– सामाजिक आन्दोलन का जन्म जिन परिस्थितियों अथवा दशाओं से होता है, उसे हम इसका स्रोत कहते हैं। सामान्यतया समाज में प्रचलित व्यवस्था को प्रभावित करने वाली परिस्थिति के प्रति असंतोष तथा उनके प्रति विरोध की भावना से जन आक्रोश उत्पन्न होने लगता है। प्रचलित व्यवस्था को सामूहिक रूप से चुनौती देने का प्रयास किया जाता है। साथ ही उस व्यवस्था को परिवर्तित करने की सामूहिक चेतना जागृत होने लगती है। सामूहिक प्रयास से उस परिस्थिति को बदलने के प्रति विश्वास उत्पन्न होने लगता है। यही सामाजिक आन्दोलन का स्रोत बन जाता है। इसी को हम सामाजिक आन्दोलन का एक आवश्यक तत्व कहते हैं।

2. विचारधारा– सामाजिक आन्दोलन का आधार एक विचारधारा होती है। विचारधारा ही सामाजिक आन्दोलन की परिस्थिति को समझती है, इसकी रूपरेखा प्रस्तुत करती है। विचारधारा के आधार पर सामाजिक आन्दोलन के उद्देश्य एवं उन्हें प्राप्त करने के तरीकों को प्रस्तुत किया जाता है। इसके प्रति विश्वास एवं निष्ठा के कारण लोगों में पारस्परिक समझ विकसित होती है तथा सामूहिक रूप से आन्दोलन हेतु प्रेरित होते हैं।

3. चमत्कारी नेतृत्व– सामाजिक आन्दोलन की विचारधारा को प्रभावी तरीके से आम लोगों तक संप्रेषित करने के लिए चमत्कारी नेतृत्व एक आवश्यक तत्व है। आन्दोलन के उद्देश्य के अनुसार अधिक से अधिक लोगों को साथ लेकर आगे बढ़ना नेतृत्व पर ही निर्भर करता है। आन्दोलन में जो अग्रणी नेता होता है। उसके प्रति लोगों में विश्वास एवं श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। इसी के फलस्वरूप वे उसके नेतृत्व को स्वीकार करते हैं, उससे दिशा–निर्देश प्राप्त कर सक्रिय हो जाते हैं।

4. कटिबद्ध अनुयायी– केवल चमत्कारी नेतृत्व से ही सामाजिक आन्दलोन सफल नहीं होते हैं। नेतृत्व को मान्यता प्रदान करने वाले कटिबद्ध अनुयायी ही सामाजिक आन्दोलन को सफल बनाते हैं। भिन्न–भिन्न कारणों से सामाजकि आन्दोलन का विरोध भी होता है। इसके संचालन में बाधायें आती हैं, लेकिन चमत्कारी नेतृत्व और कटिबद्ध अनुयायियों के कारण सभी प्रकार के अवरोध दूर करने के सामूहिक प्रयास सफल हो जाते हैं।

5. संगठन– विचारधारा, नेतृत्व और अनुयायी अन्त:र्निभर होते हैं। ये सभी तत्व एक साथ मिलकर संगठित हो जाते हैं इसी से सामाजिक आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण तत्व, संगठन के रूप में दिखाई देता है। संगठन को सामाजिक आन्दोलन का केन्द्रीय तत्व कह सकते हैं। संगठन के माध्यम से आन्दोलन के उद्देश्य की ओर व्यूह रचना के अनुसार आगे बढ़ते हैं। नेतृत्व अनुयायी और संगठन के अभाव में आन्दोलन दिशाहीन होकर कमजोर पड़ जाता है।

6. व्यूह रचना– आन्दोलन से जुड़ा प्रत्येक तत्व महत्वपूर्ण होता है। इसी क्रम में सामाजिक आन्दोलन की व्यूह रचना भी अति आवश्यक होती है। व्यूह रचना एक प्रकार से सम्पूर्ण आन्दोलन को चरणबद्ध तरीके से संचालित करने की योजना है। इसमें आन्दोलनकारियों की माँगें, उन मांगों के प्रति अनुकूल निर्णय करवाने की योजना, आन्दोलन का विरोध होने पर निपटने की तैयारी, यदि आन्दोलन के दौरान किसी स्तर पर परिवर्तन करना हो तो उसका ब्यौरा एवं उद्देश्य प्राप्ति तक आन्दोलन की निरन्तरता को बनाये रखने के प्रावधानों को सम्मिलित किया जाता है। संक्षेप में सामाजिक आन्दोलन की व्यूह रचना सामाजिक आन्दोलन की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

धूरी होती है। इसी के इर्द–गिर्द नेतृत्व एवं अनुयायी अपनी योग्यता एवं क्षमताओं का प्रदर्शन करते रहते हैं।

हमने सामाजिक आन्दोलन के जिन तत्वों की विवेचना की है ये सामाजिक आन्दोलन के विभिन्न घटक हैं। इन्हीं के आधार पर हम सामाजिक आन्दोलन के अवधारणात्मक पक्ष को अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं।

अब हम चर्चा करेंगे विभिन्न प्रकार के सामाजिक आन्दोलनों की। आन्दोलन से पूर्व समाज की परिस्थिति, समस्याएं एवं व्यवस्थाएँ कैसी हैं। इन्हीं दशाओं के आधार पर सामाजिक आन्दोलन के उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं तथा सामाजिक आन्दोलनों को सामाजिक परिस्थितियों की प्रकृति के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है। सभी प्रकार के सामाजिक आन्दोलनों का विस्तृत विवेचन किया जा सकता है। फिर भी हम पहले राजस्थान प्रान्त से सम्बन्धित तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण आन्दोलनों –किसान, जनजातीय एवं पर्यावरण के सन्दर्भ में चर्चा करेंगे और अध्याय के अन्तिम भाग में अन्य समाज सुधारक आन्दोलनों पर संक्षिप्त टिप्पणियां प्रस्तुत करेंगे।

1. राजस्थान में बिजौलिया का किसान आन्दोलन– राजस्थान ही नहीं सम्पूर्ण भारत में किसान आन्दोलन एक सामान्य प्रघटना है। हमें ज्ञात है कि हमारा देश कृषि प्रधान देश है। भू स्वामित्व जोत, कृषि कार्य, कृषि मजदूरी एवं कृषि भूमि से सम्बन्धित लगान वसूलने की अलग–अलग व्यवस्थाएँ रही हैं। कृषक सम्बन्धों में संरचनात्मक परिवर्तन भी होते रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में कृषक असन्तोष एक अहम मुद्दा रहा है। हम यहां पर किसान आन्दोलन की चर्चा कर रहे हैं, लेकिन हमारी चर्चा का केन्द्र बिन्दु राजस्थान राज्य से सम्बन्धित बिजौलिया का किसान आन्दोलन है। यह आन्दोलन भारत के आजादी के आन्दोलन से जुड़ा हुआ है। अतः हम इस आन्दोलन को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से समझने का प्रयास करेंगे। हम यह भी समझेंगे कि इस आन्दोलन का स्रोत क्या था, इसके अगुआ कौन थे, प्रमुख मुद्दे क्या थे तथा आन्दोलन का परिणाम क्या रहा?

आन्दोलन का स्रोत– राजस्थान के किसान आन्दोलन की शुरूआत सन् 1899–1900 के समय पड़े महा अकाल के कारण हुई। महा अकाल से राजस्थान में मेवाड़ क्षेत्र के भीलवाड़ा जिले के बिजौलिया के किसानों पर संकट के बादल मंडराने लगे। उस समय ब्रिटिश शासकों के पास सत्ता थी। शासन व्यवस्था का संचालन जागीर प्रथा से हो रहा था। ऐसी स्थिति में किसानों पर दोहरी मार पड़ने लगी। एक तरफ प्राकृतिक प्रकोप अर्थात महा अकाल और दूसरी तरफ ठिकानेदारों द्वारा भारी लगान वसूली और शोषण। प्रभावित क्षेत्र से लोगों का पलायन प्रारम्भ हुआ। बिजौलिया क्षेत्र से पलायन के बाद शेष बचे किसानों ने शोषण और भारी लगान के विरोध में विद्रोह कर दिया। यह विद्रोह पड़ोस की जागीरों में भी फैल गया।

अग्रणी नेतृत्व– किसी भी आन्दोलन को प्रारम्भ करने से लेकर लक्ष्य प्राप्ति तक संचालन हेतु योग्य नेतृत्व की आवश्यकता होती है। आन्दोलन प्रारम्भ करने का विचार एवं रणनीति का सम्बन्ध अग्रणी नेतृत्व से होता है। बिजौलिया किसान आन्दोलन के जनक विजय सिंह पथिक थे। उनका वास्तविक नाम भूपसिंह गुर्जर था। विजय सिंह पथिक से पूर्व बिजौलिया के एक साधु सीताराम दास ने बिजौलिया किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया था। जिस समय सीताराम दास ने यह आन्दोलन प्रारम्भ किया उस समय विजय सिंह पथिक (भूपसिंह गुर्जर) टाटगढ़ के किले में नजरबंद थे। क्योंकि 1915 के लाहौर षड्यन्त्र में सम्मिलित थे। मूलरूप से देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में सक्रिय होने के कारण उन्हें नजरबन्द कर दिया था। इसी दौरान उन्होंने अपना असली नाम भूपसिंह गुर्जर से दूसरा नाम विजयसिंह पथिक रखा। वेश बदल दिया और टाटगढ़ किले से फरार होकर चित्तौड़गढ़ क्षेत्र में आ गए। बिजौलिया में किसान आन्दोलन की शुरूआत करने वाले सीताराम दास ने विजयसिंह पथिक से सम्पर्क किया। पथिक को बिजौलिया आन्दोलन का नेतृत्व सम्भालने के लिए आमंत्रित किया। विजय सिंह पथिक 1916में बिजौलिया पहुंचे और आन्दोलन की कमान संभाली। बिजौलिया के किसानों को एकजुट कर तत्कालीन सामंती व्यवस्था के विरुद्ध जनचेतना जागृत की। माणिक्यलाल वर्मा भी पथिक के सम्पर्क में आएअ ैरि बजौलियाम ेंस ामंतीश ोषणए वंउ त्पीड़नके ि वरोधम ें किसानों को जागरूक किया।

इस प्रकार बिजौलिया किसान आन्दोलन के अग्रणी नेतृत्व में सीताराम दास, विजय सिंह पथिक और माणिक्यलाल वर्मा प्रमुख थे। विजय सिंह पथिक की भूमिका अधिक उल्लेखनीय मानी जाती है।

प्रमुख घटनाक्रम– ब्रिटिश शासनकाल में जागीर प्रथा का प्रचलनअ ैरस ामन्तशाहीच रमप रथ ी।अ ान्दोलनके घ ाटनाक्रमम ें प्राकृतिक प्रकोप के साथ ठेकेदारों द्वारा किसानों का शोषण करना प्रमुख था। किसानों में जागृति उत्पन्न कर उन्हें संगठित करने के प्रयास हुए। वैसे तो तत्कालीन परिस्थितियों से किसानों पर दोहरा संकट आ गया। ऐसी दशा में मालगुजारी की भारी मात्रा में वसूली से किसान परेशान हो रहे थे। विजय सिंह पथिक ने प्रत्येक गांव में किसान पंचायत की शाखाएँ खोली। किसान पंचायतों के माध्यम से भूमिकर अधिभार एवं किसानों को बेगार से मुक्त करवाना आन्दोलन का प्रमुख उद्देश्य था। किसान पंचायतों ने भूमिकर नहीं देने का निर्णय किया। बिजौलिया किसान आन्दोलन अन्य क्षेत्रों के किसानों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बन गया।

ऐसा उल्लेख है कि किसानों से 84 प्रकार के कर वसूले जा रहे थे। साहूकार भी किसानों का शोषण कर रहे थे। क्योंकि साहूकारों को जमींदारों का सहयोग एवं संरक्षण मिल रहा था, लेकिन किसान आन्दोलन निरंतर सशक्त होता रहा। विजय सिंह पथिक के प्रयासों से 1920 में अजमेर में राजस्थान सेवा संघ की स्थापना हुई। इससे आन्दोलन की गति तीव्र हो गयी। आन्दोलन प्रभावी हो गया। ब्रिटिश सरकार किसान आन्दोलन के अग्रणी नेताओं और संगठन से वार्ता को तैयार हो गयी। वार्ता के लिए राजस्थान के ए.जी.जी. हालैण्ड को नियुक्त

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

किया। ब्रिटिश सरकार से प्रतिनिधि ने किसान पंचायत बोर्ड और राजस्थान सेवा संघ से वार्ता की। शीघ्र ही दोनों पक्षों में समझौता हो गया किसानों की अभूतपूर्व विजय हुई।

किसान आन्दोलन का परिणाम– बिजौलिया से प्रारम्भ हुआ किसान आन्दोलन अनेक क्षेत्रों में फैला। पड़ौसी क्षेत्र बेगूं में भी आन्दोलन तीव्र हो गया था। जैसा कि घटनाक्रम में वर्णित है कि किसान आन्दोलन का परिणाम किसानों के लिए अनुकूल रहा। किसानों की अनेक मांगें स्वीकार कर ली गई थी। मुख्य रूप से जो 84 प्रकार के कर किसानों से वसूले जा रहे थे। उनमें से 35 लागतें माफ कर दी गई। शोषण करने वाले अनेक अधिकारियों को भी बर्खास्त कर दिया था। किसानों को जमींदारों के शोषण, दमन तथा लगान के बढ़ते बोझ से काफी राहत मिली, लेकिन आन्दोलन को अन्य क्षेत्रों में भी उग्र होता हुआ देखकर तत्कालीन मेवाड़ सरकार ने विजयसिंह पथिक को गिरफ्तार कर लिया था। पांच वर्ष की सजा के बाद उन्हें 1927 में जेल से रिहा किया।

बिजौलिया का किसान आन्दोलन देश के स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ चलने वाला एक महत्वपूर्ण आन्दोलन हो गया। किसान आन्दोलन के सन्दर्भ में यह एक अत्यन्त प्रभावी एवं सफल आन्दोलन था।

राजस्थान में जनजातीय आन्दोलन : भगत आन्दोलन

सामान्य पृष्ठभूमि– किसान आन्दोलन के समान जनजातीय आन्दोलन भी सामाजिक परिवर्तन के कारक के रूप में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अब तक हमें यह तो ज्ञात हो गया कि कोई भी सामाजिक आन्दोलन किसी विशिष्ट सामाजिक परिस्थिति के कारण उत्पन्न होता है। जनजातीय आन्दोलन की विवेचना करने से हमें यह स्पष्ट हो जायेगा कि वृहद समाज की संरचना में प्रत्येक घटक का उल्लेखनीय स्थान होता है। जनजातीय समुदाय भी वृहद समाज की संरचना का एक अंग है, लेकिन यह समुदाय किन्हीं विशिष्टताओं के कारण अपनी एक पहचान भी रखता है। इसलिए जनजातीय आन्दोलन का नेतृत्व इसके स्रोत आन्दोलन के कारण प्रमुख मुद्दे एवं सम्बन्धित घटनाक्रम भी अपने आप में विशिष्ट हैं।

जब हम सामान्य परिप्रेक्ष्य से जनजातीय आन्दोलन की चर्चा करते हैं तो हमारे देश में ऐतिहासिक घटनाक्रम के आधार पर जनजातीय आन्दोलन को तीन खण्डों में विभक्त किया जा सकता है। के.एस. सिंह एक मानवशास्त्री हैं। उन्होंने कालखण्ड के आधार पर पहला खण्ड 1795 से 1860 तक बताया जो कि जनजातीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार करने वाला था। अर्थात् भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना हुई थी। जनजातीय समुदाय भी प्रभावित होने लगा। के.एस. सिंह के अनुसार दूसरा खण्ड 1860 से 1920 तक का है। इस अवधि में भारत में उपनिवेशवाद की जड़ें बहुत मजबूत हो गई। ब्रिटिश शासन की जनजातीय समुदाय के प्राकृतिक आवास अर्थात् जंगल और जंगल की जमीन के प्रति जो नीतियां थीं, उनसे इस समुदाय में असंतोष उत्पन्न हुआ। आन्दोलन के लिए प्रेरित हुए। तीसरे खण्ड में ब्रिटिश शासन के समय 1920 से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक जो नीतियां क्रियान्वित हुई उनसे जनजातीय समुदाय में शोषण का विरोध हुआ। यह भी उल्लेखनीय है कि विभिन्न कालखण्डों में अन्य समाज सुधार आन्दोलन हुए। इनके साथ ही जनजातीय समुदाय में भी सुधारवादी आन्दोलन हुए।

इस प्रकार जनजातीय समुदाय में हुए आन्दोलनों को देखें तो मोटे रूप से दो प्रकार के आन्दोलन हैं। एक वो आन्दोलन जो या तो जमीन एवं जंगल के मुद्दों पर आधारित हैं और दूसरे वो आन्दोलन जो जनजातीय समाज में प्रचलित सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने के मुद्दों पर आधारित थे। हम चर्चा करेंगे सामाजिक बुराइयों को त्यागने के मुद्दे पर आधारित राजस्थान के भगत आन्दोलन की।

भगत आन्दोलन का स्रोत एवं नेतृत्व– भगत आन्दोलन भी तत्कालीनस ामाजिक–राजनैतिकप रिस्थितियोंके क ारणप्र ारम्भह ुआ था। इस आन्दोलन को भी दो अत्यन्त महत्वपूर्ण स्रोतों के आधार पर समझाया जा सकता है। पहला स्रोत सामाजिक–धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से महत्वपूर्ण है। इसका तात्पर्य है जनजातीय समुदाय के लोगों का उद्धार करना। राजस्थान और गुजरात की सीमा पर जो जनजातीय समुदाय के लोग हैं उनका सामाजिक–धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उद्धार करना। बुरी आदतों की मुक्ति और धार्मिक–सांस्कृतिक उत्थान को बढ़ाना। विशेष रूप से मांसाहार का त्याग, मद्यपान का त्याग, सभी प्रकार के व्यसनों से मुक्ति और केवल शाकाहार अपनाना।

भगत आन्दोलन का दूसरा स्रोत ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियां तथा स्थानीय शासकों द्वारा शोषण। दक्षिण राजस्थान के बांसवाड़ा, डूंगरपुर और कुशलगढ़ क्षेत्र के जनजातीय समुदाय विशेष रूप से भील जनजाति के लोगों में अपने शोषण, दमन और बेगार के विरोध में सामूहिक चेतना की जागृति, विरोध एवं आन्दोलन करना।

कुछ प्रमुख सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक दशाओं का उल्लेख भगत आन्दोलन के स्रोत के सन्दर्भ में किया। अब हम इस आन्दोलन के अग्रणी नेतृत्व अर्थात् इसको प्रारम्भ करवाने में प्रमुख भूमिका का निर्वहन करने वाले, आन्दोलन के अगुआ के बारे में चर्चा करेंगे।

राजस्थान का जनजातीय आन्दोलन जिसे भगत आन्दोलन कहा जाता है। उसको प्रारम्भ कर संचालित करने वाले गोविन्द गुरु थे। गोविन्द गुरु बंजारा समुदाय के थे। दक्षिणी राजस्थान में डूंगरपुर के पास वेदसा नाम के स्थान से थे। इन्हीं गोविन्द गुरु ने 19वीं सदी के अन्त में भगत आन्दोलन चलाया था। आन्दोलन का मुख्य क्षेत्र बांसवाड़ा, पंचमहल एवं डूँगरपुर था।

गोविन्द गुरु जनजातीय समुदाय के लोगों में जागृति उत्पन्न कर उनका धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से उत्थान करना चाहते थे। ऐसा कहा जाता है कि गोविन्द गुरु ने जनजातीय समुदाय के लोगों को हवन करना सिखाया जिसे धूणी कहा जाता था। सन् 1903 में गोविन्द गुरु ने ही

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मानगढ़ की पहाड़ी पर मुख्य धूणी की स्थापना की थी। समुदाय के लोगों में सुसंस्कारों की सीख देने के लिए उन्होंने ने मांसाहार त्यागना, नशामुक्ति, नियमित स्नान करना, हवन करना, पवित्र रहना, शाकाहार अपनाना आदि पर बल दिया।

जनजातीय समुदाय के जिन लोगों ने गोविन्द गुरु को अपना गुरु स्वीकार किया वे सभी उनके कट्टर अनुयायी हो गए। उनकी अलग पहचान बनी। उन्हें भगत के नाम से ही जाना जाने लगा जैसे भगत भील, सामान्य भील (जो भगत नहीं), 'उजला भील' अर्थात् जो नियमित स्नान करता है, हवन करता है, शाकाहारी है। दूसरा जो इसे नहीं अपनाता उसे 'मैला भील' कहा जाता था। गोविन्द गुरु ने अपने प्रेरणादायी उपदेशों से जनजातीय समाज में बहुत बड़ा परिवर्तन लाने का प्रयास किया। इसी को भगत आन्दोलन कहते हैं।

भगत आन्दोलन के प्रमुख उद्देश्य– अब तक के विवेचन से यह तो स्पष्ट हो गया कि भगत आन्दोलन के अग्रणी गोविन्द गुरु थे। यह आन्दोलन राजस्थान के दक्षिण क्षेत्र, विशेष रूप से बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, कुशलगढ़ एवं सीमावर्ती राज्य गुजरात के पंचमहल तक सीमित रहा। आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु जनजातीय समुदाय विशेष रूप से भील जनजाति था। इस आन्दोलन के मोटे रूप से दो उद्देश्य थे। पहला जनजातीय समुदाय का धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्थान एवं दूसरा उद्देश्य ब्रिटिश शासकों एवं स्थानीय शासकों द्वारा किए जा रहे शोषण, दमन एवं बेगार के विरुद्ध आन्दोलन करना। जनजातीय समुदाय के लोगों को राहत पहुंचाना।

भगत आन्दोलन को सशक्त बनाने के लिये गांव के स्तर पर सामाजिक–धार्मिक संगठन की स्थापना करना भी इसका एक उद्देश्य था। इस कार्य के लिए गोविन्द गुरु ने गांव स्तर की इकाई बनायी जिसे सम्प सभा कहा था।

ब्रिटिश शासकों के समक्ष एक 33 सूत्रीय मांगपत्र भी रखा गया। गोविन्द गुरु ने 1910 में इस कार्य हेतु अपने अनुयायियों को प्रेरित किया। न्याय के लिये संघर्ष करना।'बेट बेगार' से मुक्ति दिलाना अर्थात बिना किसी पारिश्रमिक दिये जबरदस्ती करके श्रम करवाने से मुक्ति।

आन्दोलन से सम्बन्धित मुख्य घटनाक्रम– भगत आन्दोलन से सम्बन्धित घटनाक्रम भी मोटे रूप से दो अलग–अलग परिप्रेक्ष्य में देखे जा सकते हैं। जैसा कि आन्दोलन के उद्देश्यों में स्पष्ट किया है कि पहला उद्देश्य धार्मिक–सांस्कृतिक उत्थान से सम्बन्धित है तो इससे जुड़े हुए घटनाक्रम को भी हम इसी सन्दर्भ में समझने का प्रयास करेंगे। इसी प्रकार भगत आन्दोलन का दूसरा प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश शासकों की शोषण एवं दमनकारी नीतियों एवं कृत्यों का विरोध करने के सन्दर्भ में है। इस आधार पर हम दूसरे सन्दर्भ के घटनाक्रम का उल्लेख भी करेंगे। परन्तु यहां पर यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि दोनों ही प्रकार के उद्देश्य के परिप्रेक्ष्य में भिन्नता होते हुए भी इनके घटनाक्रमों में आपस में तालमेल भी दिखाई देता है।

भगत आन्दोलन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण घटना 1890 में घटित हुई। उस समय यह आन्दोलन एक सुधारवादी आन्दोलन के रूप में था। प्रारम्भिक अवस्था में जनजातीय समुदाय के लोगों को समझाकर बुराइयों को त्याग कर अच्छाइयों को अपनाने के प्रयास हुए। धीरे–धीरे सुधारवादी प्रयास आगे बढ़े। गोविन्द गुरु के अनुयायियों की संख्या में बढ़ोतरी होने लगी।

सन् 1903 में मुख्य धूणी की स्थापना भी उल्लेखनीय घटना है। गोविन्द गुरु ने इसी वर्ष मानगढ़ की पहाड़ी पर इस धूणी को स्थापित किया। मानगढ़ का यह स्थान आकर्षण का केन्द्र बन गया। इसी स्थान पर सुधारवादी उपदेश होते थे। इसी के साथ तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की नीतियों की समीक्षा भी होती थी।

ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध भील समुदाय के लोग एक जुट हो गये। गोविन्द गुरु इस समुदाय के मार्गदर्शक एवं प्रेरणा स्रोत हो गए। सन् 1910 में अपने गुरु की प्रेरणा से भील समुदाय के लोगों ने एक 33 सूत्रीय मांग पत्र तैयार किया। इस मांग पत्र में मुख्य रूप से जबरन श्रम करवाने का विरोध, जनजातीय समुदाय पर लादे गये भारी भरकम करों की समाप्ति, लोगों को प्रताड़ित किये जाने का विरोध। गोविन्द गुरु के अनुयायियों के प्रति दमनकारी व्यवहार का विरोध, बेट बेगार (बिना पारिश्रमिक के जबरन श्रम) की समाप्ति, ब्रिटिश शासन से मुक्ति की मांगें प्रमुखता से सम्मिलित की गई।

गोविन्द गुरु के नेतृत्व में न्याय के लिये संघर्ष और गंभीर हो गया। दूसरी तरफ ब्रिटिश शासकों ने तथा स्थानीय क्षेत्रीय शासकों ने जनजातीय समुदाय एवं गोविन्द गुरु के अनुयायियों की मांगों को अस्वीकार कर दिया। ऐसा कहा जाता है कि भगत आन्दोलन को तोड़ने और कुचलने का हर संभव प्रयास ब्रिटिश शासकों ने किया। भील समुदाय के लोगों में आक्रोश बढ़ता गया। ऐसा भी कहा जाता है कि गोविन्द गुरु के आक्रोशित अनुयायियों ने मानगढ़ के पास तत्कालीन सन्तरामपुर राज्य के एक पुलिस स्टेशन पर हमला कर दिया इस हमले में एक पुलिस इन्सपेक्टर की मृत्यु हो गई थी। ब्रिटिश शासक और कठोर हो गये तथा आन्दोलन को दबाने का पूरा प्रयास करने लगे।

भगत आन्दोलन का केन्द्रीय स्थल मानगढ़ ही थी। मानगढ़ की पहाड़ी पर सैकड़ों लोग देशी हथियारों से लैस होकर एकत्रित हो गये। मानगढ़ पहाड़ी पर एकत्र लोगों के साथ ब्रिटिश शासकों ने वार्ता भी की थी। ब्रिटिश शासक मानगढ़ पहाड़ी को खाली करवाना चाहते थे। लेकिन आन्दोलनकारियों ने शासकों की बात को ठुकरा दिया। वार्ता विफल हो गई। आन्दोलन हिंसक हो गया। आन्दोलन कारियों ने मानगढ़ को किले का रूप दे दिया। सभी के हाथों में देशी हथियार, तलवारें और बन्दूकें थीं।

ब्रिटिश पुलिस तथा मेवाड़ भील कोर के सिपाहियों ने मानगढ़ को चारों तरफ से घेर लिया। ऐसा कहा जाता है कि ब्रिटिश शासकों ने आन्दोलनकारियों को कुचलने के लिये भरपूर युद्ध सामग्री का प्रबन्ध किया। मानगढ़ पहाड़ी पर तथा निकट की पहाड़ी चोटियों पर युद्ध सामग्री पहुंचाने के लिए गधों और खच्चरों का उपयोग किया।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आन्दोलनकारियों को डराने, धमकाने और भयभीत करने के लिए ब्रिटिश पुलिस ने हवाई फायर किए। लेकिन आन्दोलनकारी भी मुकाबला करने पर उतारू थे। वो और अधिक उग्र और आक्रमक हो गए। नरसंहार प्रारम्भ हुआ। सैकड़ों की संख्या में आन्दोलनकारी गोलियों के शिकार हुए। निरन्तर गोलीबारी होती रही। लगभग 1500 आन्दोलनकारियों की मृत्यु हो गई। अनेक घायल हो गये। ऐसा भी कहा जाता है कि करीब 900 आन्दोलनकारियों को मानगढ़ से जिन्दा पकड़ लिया। उन्हें मानगढ़ छोड़ कर चले जाने को कहा, लेकिन आन्दलोनकारी डटे रहे अन्त में उन सभी को गोलियों से मार दिया।

मानगढ़ पहाड़ी पर हुआ नरसंहार जलियाँ वाले बाग की घटना की तरह था। कुछ लोगों का मानना है कि नरसंहार से पूर्व आन्दोलनकारियों को चेतावनी दी गई थी कि वे 15 नवम्बर 1913 तक मानगढ़ खाली कर दें। लेकिन आन्दोलनकारियों ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इसलिए आन्दोलन ने खूनी संघर्ष का रूप ले लिया। यह खूनी संघर्ष निरंतर चलता रहा। इसकी समाप्ति के बारे में उल्लेख है कि निरन्तर गोलीबारी हो रही थी, लाशों के ढेर लगने लगे थे, उस दौरान ब्रिटिश अधिकारियों का ध्यान एक महिला की लाश की तरफ गया। एक बालक अपनी मृत माँ की छाती पर लगकर स्तनपान करने का प्रयास कर रहा था। जब ब्रिटिश अधिकारियों ने इस दृश्य को देखा तो कहते हैं कि इसके बाद गोलीबारी बन्द कर दी। आन्दोलन के प्रेरणास्रोत गोविन्द गुरु को भी हिरासत में ले लिया। उन्हें आजीवन कारावास की सजा दी तथा सन 1919 तक वे हैदराबाद जेल में रहे। जेल से रिहा होने के बाद भी उन पर पाबन्दी लगा दी थी कि वे उन स्थानों पर नहीं जायेंगे जहां पर उनके अनुयायी थे। गोविन्द गुरु अपने जीवनकाल के अन्तिम दौर में गुजरात के कम्बोई में लिम्बड़ी के पास रहे और सन 1931 में उनकी मृत्यु हो गई।

भगत आन्दोलन का प्रभाव– अनेक दृष्टि से भगत आन्दोलन एक सफल जनजातीय आन्दोलन था। इस आन्दोलन को सकारात्मक दृष्टि से देखें तो ज्ञात होता है कि सामाजिक-धार्मिक अथवा सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन लाने में उल्लेखनीय योगदान रहा। भगत आन्दोलन के प्रभाव दक्षिण राजस्थान के जनजातीय समुदाय में खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार में आमूलचूल परिवर्तन हुआ। गोविन्द गुरु के जो अनुयायी बने वे अपने आपको सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से समाज में श्रेष्ठ समझते हैं। वृहद समाज और जनजातीय समुदाय के बीच अन्तराल समाप्त करने में भगत आन्दोलन ने ही पहल की थी।

इसी प्रकार जिस समय पूरे देश में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष चल रहा था उस समय जनजातीय समुदाय ने जागृति उत्पन्न कर राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ जोड़ने में भगत आन्दोलन ने अत्यन्त ही सकारात्मक वातावरण उत्पन्न किया। ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों का विरोध जनजातीय समुदाय के शोषण का विरोध, बेगार लेने का विरोध, जंगल और जमीन पर अधिकार से सम्बन्धित नीति का विरोध तथा देश को ब्रिटिश शासन से मुक्त करवाने के लिए आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी, भगत आन्दोलन के सकारात्मक प्रभाव के रूप में देखा जाता है। इन सभी प्रभावों के साथ सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के सम्बन्ध में है। भगत आन्दोलन ने जनजातीय समुदाय को राष्ट्र की मुख्य धारा के साथ जोड़कर राष्ट्रीय एकता तो सुदृढ़ बनाए रखा।

राजस्थान के पर्यावरण आन्दोलन (खेजड़ली)

पर्यावरण संरक्षण एवं पर्यावरण समृद्धि भारतीय परम्पराओं का महत्वपूर्ण पहलू है। प्राचीन काल से ही प्राकृतिक संसाधनों के प्रति आदर भाव का उल्लेख मिलता है। धीरे-धीरे जब जनसंख्या वृद्धि होने लगी औद्योगिक की प्रक्रिया तीव्र होने लगी तो प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव बढ़ता गया। इनका अप्रत्याशित दोहन होने लगा। ऐसी दशा में पर्यावरण को बचाना विकास प्रक्रिया के लिए एक पूर्व आवश्यकता बनी। पूरे विश्व में पर्यावरण आन्दोलन प्रारम्भ हुए। पर्यावरण आन्दोलनों को नए आन्दोलन का नाम दिया। भारत में भी पर्यावरण आन्दोलन होते रहे हैं, जिन्हें पर्यावरणीय आन्दोलन कहा जाता है वे वास्तव में लोगों के प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकारों से सम्बन्धित आन्दोलन थे। समाजशास्त्रीय दृष्टि से इन आन्दोलनों को प्राकृतिक संसाधनों के लिए लोगों के आन्दोलन भी कहा जाता है। अर्थात प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार, उनके दोहन, संरक्षण एवं सुरक्षा से सम्बन्धित आन्दोलनों को ही सामान्य रूप से पर्यावरणीय आन्दोलन कहा जाता है। अब हम चर्चा करेंगे राजस्थान में पर्यावरण आन्दोलन की जिसे खेजड़ली का आन्दोलन कहा जाता है।

खेजड़ली आन्दोलन का स्रोत– हम जिस आन्दोलन की चर्चा कर रहे हैं उसका सम्बन्ध खेजड़ली नाम के एक गांव से है। राजस्थान के जोधपुर शहर के दक्षिण पूर्व में 26किलोमीटर की दूरी पर यह गांव बसा हुआ है। इस गांव का नाम खेजड़ी नाम के वृक्ष पर ही रखा गया था। ऐसा माना जाता है कि इस गांव के आस-पास खेजड़ी के असंख्य वृक्ष थे। खेजड़ी के वृक्ष को बहुत पवित्र माना जाता है इसलिए इस वृक्ष को पुराने समय से ही बहुत आदर भाव से देखा जाता रहा। इस वृक्ष की बहुआयामी उपयोगिता भी रही है।

खेजड़ली का आन्दोलन सन् 1730 में इसी गाँव में हुआ था। इस आन्दोलन को प्रथम चिपको आन्दोलन के नाम से भी जाना जाता है। खेजड़ी के हरे वृक्षों को बचाने के लिए इस आन्दोलन की अग्रणी एक साहसी महिला थी। उसका नाम था अमृता देवी। उनकी तीन बेटियां थीं, आशु, रतनी और भागुबाई। आन्दोलन की अगुआ अमृता देवी थी। इनके नेतृत्व में खेजड़ली क्षेत्र के अनेक लोग, जो विश्नोई समुदाय से थे, साथ जुड़ गये। यह आन्दोलन हरे वृक्षों और जंगली जानवरों की सुरक्षा के लिए मानव के बलिदान की परम्परा का एक उदाहरण है।

अमृतादेवी की दृढ़ता और साहस की घटना से इस आन्दोलन की शुरूआत हुई। खेजड़ी के हरे वृक्ष के लिपट कर स्वयं का सिर कटवाने वाली सशक्त महिला की प्रेरणा से विश्नोई समुदाय के 294 पुरुषों और 69 महिलाओं ने अर्थात विश्नोई समुदाय के कुल 363 सदस्यों ने अपने जीवन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

का बलिदान कर दिया।

प्रमुख घटनाक्रम– खेजड़ली आन्दोलन की सबसे प्रमुख घटना सितम्बर 1730 में घटित हुई। इतिहास के अनुसार भारतीय पंचांग में भाद्रप्रद माह के शुक्ल पक्ष की दसवीं तिथि पर्यावरण सुरक्षा के लिए बलिदान की तिथि मानी जाती है। इस तिथि को मंगलवार था। अमृता देवी खेजड़ली गाँव में अपनी तीनों बेटियों के साथ अपने घर में थी। अचानक अमृता देवी को ज्ञात हुआ कि जोधपुर महाराजा के यहां से अनेक लोग खेजड़ली गांव में आ गये। लोगों का यह एक बहुत बड़ा समूह था जोधपुर महाराजा के मंत्री की आज्ञा से ये लोग वहाँ एक विशेष प्रयोजन से आए थे। प्रयोजन था खेजड़ी के हरे वृक्षों की वृहद स्तर पर कटाई करना। हरे वृक्षों को काटकर उनकी लकड़ियों को चूना बनाने के लिये काम में लेना। यह चूना जोधपुर महाराजा द्वारा एक नया महल निर्मित करने के लिए तैयार करना था। खेजड़ी के वृक्ष सहज रूप से उपलब्ध थे। यद्यपि यह क्षेत्र रेगिस्तान का ही एक भाग था लेकिन खेजड़ी के असंख्य वृक्षों के कारण इस क्षेत्र में बहुत हरियाली थी।

राजदरबारके अ ादेशस`अ ायेल ागख`जड़ीके ह रेव ृक्षोंक ा काटकर ले जाने के प्रयोजन से खेजड़ली गांव में थे। उस समय अभय सिंह जोधपुर के महाराजा थे। अमृता देवी ने हरे वृक्ष काटने का पुरजोर विरोध किया।

विश्नोई समुदाय की धार्मिक मान्यता के अनुसार एक तो खेजड़ी का वृक्ष बहुत पवित्र होता है। दूसरा खेजड़ी के हरे वृक्ष को काटने पर पूर्ण सामाजिक प्रतिबन्ध था। अमृता देवी ने भी धार्मिक मान्यता के आधार पर तर्क के साथ हरे वृक्षों को काटने का विरोध किया। अमृता देवी के तार्किक विरोध को देखकर सामन्ती इरादों से आये समूह ने कुछ देर के लिए पुनर्विचार किया। अमृता देवी के समक्ष एक प्रस्ताव रखा कि यदि हरे वृक्ष काटने से नुकसान होता है तो वे लोग अपना इरादा बदल देंगे। नुकसान नहीं करेंगे यदि उन्हें रिश्वत की राशि मिल जाती है तो अर्थात हरे वृक्षों को बचाने के बदले अमृता देवी को धनराशि चुकानी होगी अन्यथा होने वाले नुकसान के लिये तैयार रहें। अमृता देवी ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। अमृता देवी ने कहा कि इस प्रकार के सौदेबाजी एक कलंक है। धार्मिक आस्था के अनुसार यह कृत्य निंदनीय है।

अमृता देवी ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि किसी भी परिस्थिति में खेजड़ी के एक भी हरे वृक्ष को नहीं कटने देगी। इसके बदले उसे अपना बलिदान भी देना है तो वह तैयार है। अमृता देवी के शब्द कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त किए गए हैं कि–

'सर सांट्ये रूंख रहे तो भी सस्तो जाण' अर्थात् मानव का सिर कट जाये लेकिन उसके बदले में वृक्ष बच जाता है तो भी सस्ता है। हरे वृक्षों की रक्षा के लिए स्वयं के बलिदान का प्रस्ताव जीवन का सर्वोच्च मूल्य है।

अमृता देवी ने अपने जीवन इस सर्वोच्च मूल्य के अनुसार अपना बलिदान देना स्वीकार किया। उसके साथ उसकी तीनों बेटियों ने भी हरे वृक्षों को बचाने के लिए अपने जीवन का त्याग कर देना का निश्चय कर लिया। वे तीनों युवतियाँ अमृता देवी के साथ ही एक-एक वृक्ष को अपनी बाहों में लपेट कर उनसे चिपक गई। महाराजा के वहां से आये उनके सेवकों ने अमृता देवी और उनकी तीनों बेटियों को वृक्षों के साथ ही काट दिया।

अमृता देवी और उसकी बेटियों के बलिदान का समाचार जंगल में आग के समान चारों और फैल गया। विश्नोई समुदाय के लोग एकत्र होने लगे। समुदाय के 83 गांवों में सूचना हो गई। सभी ने एक साथ मिलकर सामूहिक कार्यवाही का निर्णय लिया।

एक वृक्ष पर एक विश्नोई समुदाय का सदस्य लिपट गया। इस प्रकार एक-एक करके वृक्ष कटने लगे उनके साथ मानवीय बलिदान हो रहा था। विश्नोई समुदाय के लोग स्वेच्छा से अपना बलिदान दे रहे थे। बूढ़े, युवा, बालक, महिला, युवतियाँ, नवविवाहित युवक-युवतियाँ भी पीछे नहीं रहीं।

एक इरादतन उपद्रव सा दृश्य था। विश्नोई समुदाय ने हरे वृक्ष काटने वालों के समक्ष बहुत बड़ी चुनौती खड़ी कर दी। वृक्ष काटने वाले समूह अपने कार्य को अधूरा छोड़कर जोधपुर चले गए और महाराजा के समक्ष सम्पूर्ण घटनाक्रम का वर्णन किया। अब तक कुल 294 पुरुष और 69 महिलाएं शहीद हो चुके थे। ये सभी विश्नोई समुदाय के थे। बूढ़े प्रौढ़,य ुवा,य ुवतियाँ,ि ववाहितअ विवाहित,अ मीरग रीबस भीक ा प्रतिनिधित्व हो गया।

आन्दोलन का प्रभाव– हरे वृक्षों को बचाने के लिए किस प्रकार से लोगों ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। इस सम्पूर्ण घटना को सुनकर जोधपुर के तत्कालीन महाराज अभय सिंह ने अपने ही अधिकारियों द्वारा किये गये कृत्य के प्रति अफसोस प्रकट किया। अपनी गलती को स्वीकारा, खेद प्रकट करते हुए ताम्र पत्र पर एक आदेश जारी किया। इस आदेश का कथ्य निम्न प्रकार था–

- विश्नोई गांवों की राजस्व सीमाओं के अन्दर सभी प्रकार के हरे वृक्षों की कटाई एवं जानवरों के शिकार को कठोरता से प्रतिबन्धित किया जाता है।
- यह भी आदेशित किया गया कि यदि भूल से कोई व्यक्ति उपर्युक्त आदेश का उल्लंघन करता है तो उसे राज्य द्वारा गंभीर रूप से दंडित किया जाएगा।
- इस प्रकार के घटनाक्रम के प्रभाव से शासक परिवार के किसी भी सदस्य ने विश्नोई गांवों में एवं उनके आस-पास के गांवों में कभी कोई शिकार नहीं किया।
- खेजड़ली आन्दोलन प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण-सुरक्षा के सम्बन्ध में एक उच्च आदर्श स्थापित करने वाली असाधारण घटना थी।

अन्य समाज सुधारक आन्दोलन

समाज में जब सामाजिक बुराइयों को समाज व्यवस्था के लिये

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

व्यवधान समझा जाता है तो सुधार की आवश्यकता होती है। यूं भी कह सकतेह ैंि कज ब–जबभ ीस माज० यवस्थाम ेंि वकृतियाँउ त्पन्नह ोने लगती, तथा समाज का ढांचा विरोधाभासी व्यवहारों से प्रभावित होने लगता है तब सुधारवादी आन्दोलनों का जन्म होता है।

भारतीय समाज में भी समय-समय पर सुधारवादी आन्दोलन हुए हैं। समाज में सामाजिक कुरीतियाँ, सामाजिक बुराइयां, सामाजिक असमानताएँ, सामाजिक भेदभाव, अन्याय, शोषण आदि सामाजिक समस्याओं के विरुद्ध जनचेतना जागृत करने के जो आन्दोलन किए जाते रहे हैं उन आन्दोलनों को सुधारवादी आन्दोलन कहा गया। इन्हीं आन्दलनों के द्वारा तत्कालीन सामाजिक दशाओं, कुप्रथाओं, परम्पराओं तथा अंधविश्वासों को समाप्त कर नई व्यवस्था की स्थापना के लिये प्रयास होते रहे। यहाँ पर हम कुछ विशिष्ट सुधारवादी आन्दोलनों का संक्षिप्त ब्योरा प्रस्तुत करेंगे।

ब्रह्म समाज– यह आन्दोलन भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद प्रारम्भ हुआ। राजा राम मोहन राय ने 20 अगस्त 1828को ब्रह्म समाज की स्थापना की थी। राजाराम मोहनराय के दर्शन में रंगभेद, धर्म, सम्प्रदाय और जाति को कोई स्थान नहीं था। ये ही तत्व आन्दोलन के आधारभूत वैचारिक तत्व थे।

आन्दोलन की विशेषताएँ–

- मूर्ति पूजा और कर्मकाण्डों का विरोध।
- वेदान्त, उपनिषद और भगवद् गीता के सिद्धान्तों के अनुसार एकेश्वरवाद की स्थापना।
- जाति व्यवस्था की बुराइयों की समाप्ति करना।
- नारी के उद्धार को प्राथमिकता। सती प्रथा की समाप्ति
- बाल विवाह का विरोध एवं विधवा पुनर्विवाह का समर्थन।
- बहुविवाह का विरोध।
- देवेन्द्र नाथ टैगोर, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, अक्षय कुमार दत्त, केशवचन्द्र सेन आदि की भूमिका उल्लेखनीय थी।
- आन्दोलन की सक्रियता लगभग 30 वर्ष तक रही।

प्रार्थना समाज– इस आन्दोलन को भी राजा राम मोहन राय की विचारधारा के आधार पर प्रारम्भ किया गया था। सन् 1857 में मुम्बई में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। इस आन्दोलन का नेतृत्व केशवचन्द्र सेन ने किया। इनके साथ महादेव गोविन्द रानाडे ने भी इस आन्दोलन को आगे बढ़ाया।

प्रमुख विशेषताएँ–

- जाति प्रथा एवं बाल विवाह का विरोध करना।
- विधवा विवाह का समर्थन एवं नारी शिक्षा का प्रचार करना।
- जन साधारण के अधिक समीप होना।
- हिन्दूवादी कट्टरता एवं सामाजिक बुराइयों को समाप्त करना।

आर्य समाज– स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 10 अप्रेल 1875 को मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना की थी। उनका ध्येय वाक्य था 'वेदों की ओर लौट चलो'। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में वेदों की व्याख्या एवं अपने वैचारिक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया।

आर्य समाज आन्दोलन की विशेषताएँ–

- मानव-मानव के बीच बन्धुत्व की भावना को विकसित करना।
- स्त्री-पुरुष के बीच असमानता को दूर करना।
- समाज में सामाजिक न्याय की स्थापना के साथ प्रत्येक व्यक्ति को अपने गुणों और कर्म के आधार पर योग्यता अर्जित करने के अवसर उपलब्ध करवाना। सभी के प्रति प्रेम और स्नेह की भावना का विकास
- बहुदेववाद एवं मूर्ति पूजा का विरोध।
- बाल विवाह एवं जाति प्रथा का विरोध
- अन्तर्जातीय विवाह एवं विधवा विवाह को प्रोत्साहन
- स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करना।
- 'शुद्धि आन्दोलन' धर्म परिवर्तित कर लेने वाले हिन्दुओं को पुन: हिन्दू धर्म में लाना।
- सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय एकता स्थापित करना।

रामकृष्ण मिशन– रामकृष्ण मिशन की स्थापना स्वामी विवेकानन्द ने 1897 में की थी।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस की स्मृति में बंगाल राज्य के बेलूर में इस मिशन को स्थापित किया था। रामकृष्ण मिशन का दर्शन तथा गतिविधियाँ पूर्व एवं पश्चिमी संस्कृति के समन्वय को दर्शाता है। आध्यात्मिक मूल्य ही जीवन का मार्गदर्शन करते हैं ऐसी मान्यता थी।

रामकृष्ण मिशन आन्दोलन की विशेषताएँ–

- सबका स्वामी एक ईश्वर है। सभी धर्म अलग-अलग मार्ग उसे प्राप्त करने की बात करते हैं।
- जाति प्रथा का विरोध करना तथा ब्राह्मणों के अधिकारवाद का विरोध।
- मानवतावादी विचारों से जनकल्याण के कार्यक्रमों का संचालन
- छूआ-छूत का विरोध।
- जन सामान्य के जीवन में यूरोप और अमेरिका के अन्धे अनुकरण का विरोध।
- 'बहुजन हिताय: बहुजन सुखाय:' के आदर्श पर आधारित मानव सेवा के कार्य करना।

भारत के समाज सुधार के उद्देश्य से और भी अनेक आन्दोलन हुए हैं। जैसे-थियोसोफिकल सोसायटी के माध्यम से श्रीमती एनीबीसेन्ट ने नव जागरण, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीयता एवं विश्व बन्धुत्व की भावना को बढ़ाने के लिए आन्दोलन किया।

गोपाल कृष्ण गोखले ने 1905 में 'भारत सेवक समाज' के माध्यम से गरीब, निरक्षर लोगों के लिए स्त्री पाठशालाएं, विद्यालय,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कानूनी सहायता केन्द्र प्रारम्भ किए।

इसी प्रकार सन 1873 में महात्मा ज्योतिबा फुले ने महिलाओं की मुक्ति और शिक्षा पर ध्यान देने के लिए सत्यशोधक समाज की स्थापना की।

अल्पसंख्यक समुदायों में समाज सुधार आन्दोलन

भारत में मुसलमानों में आधुनिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने तथा विश्व बन्धुत्व की भावना को उजागर करने के लिए आन्दोलन हुए। इनमें अहमदिया आन्दोलन, अलीगढ़ आन्दोलन, सर महमूद इकबाल द्वारा शुरू किया गया आन्दोलन और शेख अब्दुल हामिल शाह का आन्दोलन प्रमुख है।

भारत में पारसी समुदाय के निर्धन लोगों तथा महिलाओं को शिक्षित करने में सहायता के लिए चलाए गए कार्यक्रम आन्दोलन के रूप मेंह ाथे` ाइ ममें' पारसीप ंचायत'प्र मुखह` ाइ सकेम ाध्यमस`प ारसी समुदाय के जटिल सामाजिक रीति-रिवाजों में सुधार लाने के प्रयत्न होते रहे हैं।

सिक्ख समुदाय में गुरुद्वारे के माध्यम से सामाजिक-धार्मिक सुधार के अनेक कार्यक्रम संचालित हुए जो समाज सुधार आन्दोलन के रूप में ही थे।

इस प्रकार भारत में सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार जागृति उत्पन्न होती रही है। समाज में कुरीतियों, सामाजिक बुराइयों को समाप्त कर समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना और उनकी रक्षा के लिए आन्दोलन होते रहें। इन सभी आन्दोलनों के प्रभाव से हमारे देश में भी युगानुकूल परिवर्तन होते रहें। इसी के प्रभाव से भारतीय समाज की एक विशिष्ट वैश्विक पहचान सुदृढ़ होती रही।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- जनसंचार और सामाजिक आन्दोलन की भूमिका सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण होती है।
- जनसंचार एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा सूचनाएँ एवं संदेश एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाये जाते है।
- स्रोत, संदेश तथा लक्ष्य जनसंचार के संरचनात्मक पक्ष हैं।
- इच्छित परिवर्तन लाने के लिए अथवा होने वाले परिवर्तन का विरोध करने के लिए सामूहिक प्रयास सामाजिक आन्दोलन है।
- बिजौलिया किसान आन्दोलन के जनक विजय सिंह पथिक (भूपसिंह गुर्जर) थे।
- किसान आन्दोलन के प्रभाव से किसानों को जमींदोरों के शोषण, दमन तथा लगान के बढ़ते बोझ से राहत मिली थी।
- भगत आन्दोलन जनजातीय समुदाय के धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के साथ ब्रिटिश शासकों और स्थानीय शासकों द्वारा किए गए शोषण, दमन एवं बेगार के कारण गोविन्द गुरु द्वारा चलाया गया था।
- खेजड़ली का आन्दोलन प्राकृतिक संसाधनों अर्थात् खेजड़ी के वृक्षों एवं जंगली जानवरों के संरक्षण के लिए हुआ।
- खेजड़ली आन्दोलन की अगुआ अमृता देवी थी।
- भारतम`ेंअ न्यस माजस ुधारअ ान्दोलनम ुख्यरू पस`ेस ामाजिक कुरीतियों, सामाजिक भेदभाव, अन्याय और शोषण के विरुद्ध हुए।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. निम्न में कौन सी इकाई जनसंचार से सम्बन्धित है–
   (अ) समय (ब) संदेश
   (स) संस्था (द) समुदाय
2. निम्न में से कौन सा तत्व सामाजिक आन्दोलन से सम्बन्धित नहीं है–
   (अ) विचारधारा (ब) चमत्कारी नेतृत्व
   (स) संरचना (द) संगठन
3. सीताराम दास कौन से आन्दोलन से जुड़े थे?
   (अ) बिजौलिया (ब) भगत
   (स) खेजड़ली (द) आर्य समाज
4. भगत आन्दोलन का केन्द्र क्या था?
   (अ) टाटगढ़ (ब) मानगढ़
   (स) खेजड़ली (द) बिजौलिया

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. जन संचार का अर्थ क्या है?
2. जन संचार की प्रमुख इकाइयों के नाम लिखिए?
3. संदेश का अर्थ बताइए।
4. सामाजिक आन्दोलन का अर्थ बताइए।
5. सामाजिक आन्दोलन के किन्हीं दो तत्वों को बताइए।
6. बिजौलिया किसान आन्दोलन कब प्रारम्भ हुआ?
7. भगत आन्दोलन का संचालन किसने किया था?
8. खेजड़ली आन्दोलन का प्रमुख कारण क्या था?
9. ब्रह्म समाज की स्थापना किसने की थी?
10. स्वामी विवेकानन्द ने किस संस्था की स्थापना की?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. जनसंचार एवं सामाजिक परिवर्तन को समझाइए।
2. जनसंचार का महत्व बताइए।
3. जनसंचार के संरचनात्मक पक्ष को समझाइए।
4. बिजौलिया आन्दोलन का स्रोत क्या था, समझाइए।
5. बिजौलिया किसान आन्दोलन के परिणाम पर टिप्पणी लिखिए।
6. भगत आन्दोलन की पृष्ठभूमि बताइए।
7. भगत आनदोलन के प्रमुख उद्देश्य बताइए।
8. खेजड़ली आन्दोलन क्यों हुआ, कारण समझाइए?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

9. खेजड़ली आन्दोलन का क्या प्रभाव पड़ा?
10. आर्य समाज की प्रमुख विशेषताएं बताइए।
11. रामकृष्ण मिशन की स्थापना के उद्देश्य समझाइए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. जनसंचार के अवधारणात्मक पक्ष को समझाते हुए इसकी संरचना की विवेचना कीजिए।
2. सामाजिक आन्दोलन के प्रमुख तत्वों का वर्णन करिए।
3. बिजौलिया किसान आन्दोलन के घटनाक्रम की विवेचना कीजिए
4. खेजड़ली आन्दोलन की घटना का वर्णन कीजिए। इससे क्या संदेश मिला समझाइए।

उत्तरमाला

1. (ब) 2. (स) 3. (अ) 4. (ब)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com